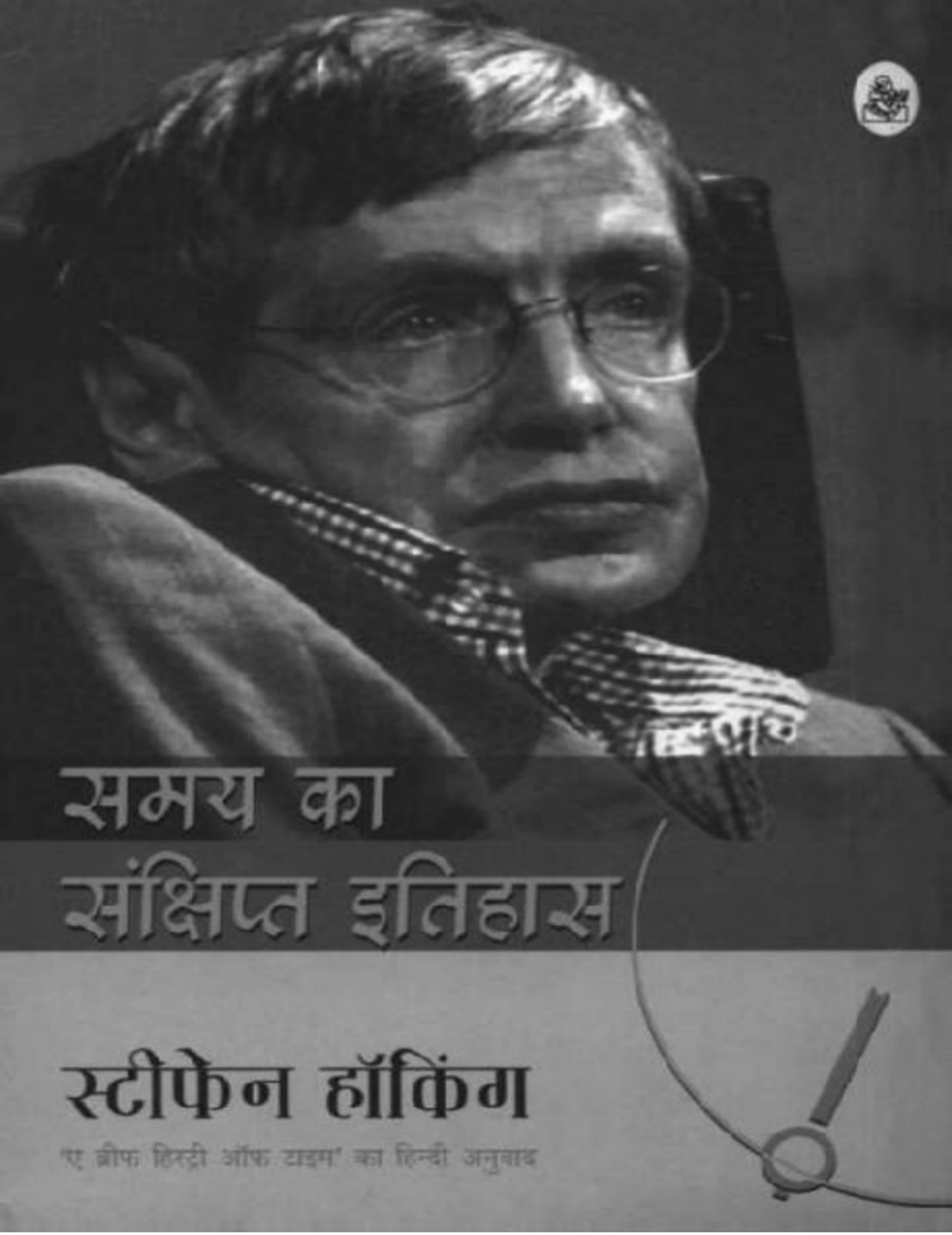

समय का
संक्षिप्त इतिहास
स्टीफेन हॉकिंग
'ए ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ टाइम' का हिन्दी अनुवाद

समय का संक्षिप्त इतिहास

‘ए ब्रीफ़ हिस्ट्री ऑफ टाइम’ का यह अनुवाद पुस्तक के नवीन, परिवर्धित दसवें जयन्ती संस्करण से किया गया है।

समय का संक्षिप्त इतिहास

स्टीफेन हॉकिंग

अनुवाद
अश्वपति सक्सेना

पुनरीक्षण
डॉ. प्रदीप कुमार मुखर्जी

राजकमल पेपरबैक्स

मूल अंग्रेजी में यह पुस्तक 'ए ब्रीफ़ हिस्ट्री ऑफ टाइम' *(A Brief History of Time)* शीर्षक से बैंटम बुक्स, अमेरिका, द्वारा प्रकाशित की गई।

पहला पुस्तकालय संस्करण
राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड द्वारा
2001 में प्रकाशित

राजकमल पेपरबैक्स में

पहला संस्करण : 2015
चौथा संस्करण : 2018

राजकमल पेपरबैक्स : उत्कृष्ट साहित्य के जनसुलभ संस्करण

राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज
नई दिल्ली-110 002
द्वारा प्रकाशित

शाखाएँ : अशोक राजपथ, साइंस कॉलेज के सामने, पटना-800 006
पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-211 001
36 ए, शेक्सपियर सरणी, कोलकाता-700 017

वेबसाइट : www.rajkamalprakashan.com
ई-मेल : info@rajkamalprakashan.com

चित्रांकन : रॉन मिलर

SAMAY KA SANKSHIPT ITIHAS
A Brief History of Time by Stephen Hawking

ISBN : 978-81-267-2788-9

अनुवादक की ओर से

सृष्टि की रचना के प्रयोजन को जानने की उत्कण्ठा अति प्राचीनकाल से मानव-चिन्तन को झकझोरती रही है। इस रहस्य को जानने की जिज्ञासा ने सभ्यता के शैशवकाल से ही बौद्धिक विकास के साथ-साथ समस्त दार्शनिक चिन्तन को दिशा-निर्देशित किया है। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति किस प्रकार हुई, यह कहाँ से आया, क्या यह सदैव से अस्तित्व में था या इसका कोई रचयिता है, क्या विश्व-पटल पर बुद्धिजीवी मनुष्य का प्रादुर्भाव मात्र एक सांयोगिक घटना है अथवा मनुष्य के लिए ब्रह्माण्ड की रचना की गई, आदि अनेक ऐसे गूढ़ प्रश्न हैं जिनके विवेचन के लिए शास्त्रों की रचना की गई। ऐसा लगता है, अति प्राचीनकाल में भारत के (मन्त्रद्रष्टा) ऋषि अपनी आध्यात्मिक क्षमताओं को विकसित करके ऐसे निष्कर्षों पर पहुँचे जो आधुनिक समय में प्रस्तावित ब्रह्माण्ड के विभिन्न मॉडेलों के काफी अनुरूप हैं। यह निश्चय ही एक सुखद आश्चर्य है। भारतीय वाङ्मय में अनेक ऐसे प्रसंग बिखरे पड़े हैं जिनमें एक दोलनकारी ब्रह्माण्ड की कल्पना की गई है।

विज्ञान के विकास के साथ ही ब्रह्माण्ड के विकास की परतें खुलती जा रही हैं। अब हम ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति से जुड़े कुछ नए गम्भीर प्रश्नों के समाधान ढूँढ़ते हुए सृष्टि की रचना के प्रारम्भिक पलों तक जा पहुँचे हैं जिससे आगे बढ़ने पर विज्ञान के नियम विफल हो जाते हैं तथा हमारी समझ की सीमा निर्धारित हो जाती है।

'ए ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ टाइम' ब्रह्माण्डिकी के विकास का एक संक्षिप्त दस्तावेज है। यह प्रारम्भिक भू-केन्द्रिक ब्रह्माण्डिकियों से प्रारम्भ करके बाद की सूर्य-केन्द्रिक ब्रह्माण्डिकियों से होते हुए एक अनन्त ब्रह्माण्ड अथवा अनन्त रूप से विस्तृत अनेक ब्रह्माण्डों तथा कृमि-छिद्रों की परिकल्पनाओं तक की हमारी विकास-यात्रा का एक संक्षिप्त वर्णन है। ब्रह्माण्ड विलक्षणता की स्थिति से प्रारम्भ हुआ या दिक्-काल की कोई सीमा है अथवा नहीं, या पूरी तरह से स्वयंपूर्ण (self-contained) है तथा अपने से बाहर किसी भी वस्तु के द्वारा प्रभावित नहीं होता तथा इस प्रकार यह पूर्णतः शाश्वत है, आदि ऐसे अनेक विचार हैं जो अपने पक्ष में ठोस प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। परन्तु चाहे यह किसी भी प्रकार से प्रारम्भ हुआ हो, ऐसा क्यों है कि यह उन नियमों तथा सिद्धान्तों से नियन्त्रित है जिन्हें हम समझ सकते हैं?

जब घटनाएँ किन्हीं नियम-सूत्रों से नियन्त्रित तथा प्रभावित होती हैं तो यादृच्छिकता का कोई स्थान नहीं रह जाता। लगता है, कोई निश्चित अन्तर्निहित व्यवस्था है जो इस पूरे तन्त्र को सम्बल प्रदान करती है। ईश्वर ने कुछ निश्चित नियमों के अनुसार इस पूरे तन्त्र को विकसित होने दिया तथा वह इन नियमों को तोड़ने के लिए फिर इस प्रक्रिया में हस्तक्षेप नहीं करता। परन्तु श्री स्टीफेन हॉकिंग का यह प्रश्न अनुत्तरित रहता है कि यदि यह ब्रह्माण्ड शाश्वत है, इसका न आदि है, न अन्त, तब फिर रचयिता का क्या स्थान?

परन्तु हमारे प्राचीन ग्रन्थों में यह मीमांसा कुछ इस प्रकार की गई है—'अहं ब्रह्मस्वरूपिणी। मत्तः प्रकृति-पुरुषात्मकं जगत्। शून्यं चाशून्यं च।...अहं विज्ञानाविज्ञाने। अहं ब्रह्माब्रह्मणी वेदितव्ये। अहं पंचभूतान्यपंचभूतानि। अहमखिलं जगत्।' (मैं ब्रह्म-स्वरूप हूँ। मुझसे प्रकृति-पुरुषात्मक सद्रूप और असद्रूप जगत् उत्पन्न हुआ है। मैं विज्ञान और अविज्ञानरूपा हूँ। अवश्य जानने योग्य ब्रह्म और अब्रह्म भी मैं ही हूँ। पंचीकृत और अपंचीकृत महाभूत भी मैं ही हूँ। यह सारा दृश्य-जगत् मैं ही हूँ —श्री देव्यथर्वशीर्षम्)

यह पुस्तक ब्रह्माण्डिकी व खगोलशास्त्र के जिज्ञासु विद्यार्थियों के लिए निश्चित रूप से एक अनमोल निधि है।

इस पुस्तक के हिन्दी रूपान्तर के लिए मैं अपने गुरुजी श्री वीरेश कुमार त्यागी जी

(सेवानिवृत्त गणित-प्रवक्ता) का आभारी हूँ, जिन्होंने निरन्तर मुझे दिशा प्रदान की और मेरे उत्साह को बढ़ाया। इस कार्य को सम्पन्न करने में मेरे मित्र एवं सहयोगी श्री शैलेन्द्र पुष्कर तथा शिष्य श्री पंकज पुष्कर से भरपूर सहयोग मिला। मैं श्री बी.डी. शर्मा जी का विशेष रूप से ऋणी हूँ जिनके अपार स्नेह एवं आशीर्वाद के बिना यह कार्य सम्भव नहीं था।

—अश्वपति सक्सेना

प्राक्कथन

'ए ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ टाइम' के मूल संस्करण के लिए मैंने प्राक्कथन नहीं लिखा था। यह कार्य कार्ल सागां द्वारा किया गया था। इसके स्थान पर मैंने 'आभार प्रदर्शन' शीर्षक से एक छोटा सा लेख लिखा था जिसमें मुझे प्रत्येक के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने का परामर्श दिया गया था। बहरहाल, कुछ प्रतिष्ठान जिन्होंने मुझे अवलम्ब दिया था, अपना उल्लेख किए जाने पर बहुत अधिक प्रसन्न नहीं थे, क्योंकि इससे प्रार्थियों में बहुत वृद्धि हो गई थी।

मैं नहीं समझता कि कोई भी, मेरे प्रकाशक, मेरे अभिकर्ता अथवा मैं स्वयं यह अपेक्षा करते थे कि यह पुस्तक इतना अधिक प्रभावशाली प्रदर्शन कर पाएगी जितना कि इसने वास्तव में किया। यह लन्दन के 'सन्डे टाइम्स' के 237 सप्ताहों की सर्वोच्च बिक्रीवाली पुस्तकों की सूची में अंकित थी—किसी भी दूसरी पुस्तक की अपेक्षा अधिक बिक्रीवाली (स्पष्टतः बाइबिल व शेक्सपीयर की कृतियों की गणना इसमें सम्मिलित नहीं है)। इस पुस्तक का लगभग 40 भाषाओं में अनुवाद हो चुका है तथा विश्व के हर 750 स्त्री-पुरुषों तथा बच्चों के लिए लगभग एक प्रति के हिसाब से यह बिक चुकी है। जैसा कि माइक्रोसॉफ्ट (मेरे एक पूर्ववर्ती पोस्ट-डॉक) के नाथन मिहिरवोल्ड ने टिप्पणी की थी : मैडोना ने कामुकता (सेक्स) पर जितनी पुस्तकों की बिक्री की है, मैंने भौतिकी पर उसकी अपेक्षा कहीं अधिक पुस्तकों की बिक्री की है।

'ए ब्रीफ़ हिस्ट्री...' की सफलता यह सकारात्मक संकेत देती है कि इन महत्त्वपूर्ण प्रश्नों में लोगों को व्यापक अभिरुचि है कि : हम कहाँ से आए? और ब्रह्मांड का स्वरूप ऐसा ही क्यों है?

मैंने इस सुअवसर का उपयोग इस पुस्तक को परिष्कृत बनाने के लिए तथा इसके प्रथम प्रकाशन (अप्रैल फूल दिवस 1988) से अब तक प्राप्त सैद्धान्तिक और प्रेक्षणात्मक निष्कर्षों को इस नए संस्करण में सम्मिलित करने के लिए किया है। मैंने वर्म होल तथा काल यात्रा पर एक नया अध्याय जोड़ा है। आइंस्टाइन का आपेक्षिकता का सामान्य सिद्धान्त यह सम्भावना प्रस्तुत करता हुआ प्रतीत होता है कि हम दिक्-काल के विभिन्न क्षेत्रों को जोड़नेवाली छोटी-छोटी नलिकाओं जैसे कृमि-छिद्रों या वर्म होलों का सृजन भी कर सकते हैं व उनका अनुरक्षण भी कर सकते हैं। यदि ऐसा हो सका, तब हम मन्दाकिनी के चारों ओर तीव्र गति से यात्रा करने के लिए या काल की विपरीत दिशा में यात्रा करने के लिए शायद उनका उपयोग करने में समर्थ हो सकेंगे। निस्सन्देह हमने भविष्य में से किसी को नहीं देखा है (या क्या हमने देखा है?) परन्तु मैंने इसके एक सम्भावित स्पष्टीकरण का विवेचन किया है।

मैंने उस प्रगति का भी वर्णन किया है जो भौतिकी के स्पष्टतः विभिन्न सिद्धान्तों के मध्य अनुरूपता या 'द्वैतता' को खोजने में हाल ही के समय में की गई है। ये अनुरूपताएँ इस तथ्य का एक प्रबल संकेत हैं कि भौतिकी का एक पूर्ण एकीकृत सिद्धान्त है, परन्तु वे यह भी सुझाती हैं कि किसी एक ही आधारभूत सूत्र में इस सिद्धान्त को मूर्त रूप देना शायद सम्भव नहीं हो सकता। इसके स्थान पर हमें भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में अन्तर्निहित सिद्धान्त के भिन्न-भिन्न प्रतिबिम्बों का प्रयोग करना पड़ सकता है। यह सम्भवतः कुछ इस प्रकार हो सकता है जैसा कि हम किसी एक ही मानचित्र पर पृथ्वी के सम्पूर्ण पृष्ठतल का चित्रण करने में असमर्थ रहें तथा हमें विभिन्न क्षेत्रों के लिए विभिन्न मानचित्रों को प्रयोग करने के लिए विवश होना पड़े। यह विज्ञान के नियमों के एकीकरण सम्बन्धी हमारे विचारों में एक आमूल परिवर्तन होगा, परन्तु यह इस सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बिन्दु में कोई परिवर्तन नहीं कर पाएगा कि ब्रह्मांड ऐसे तर्कसंगत नियमों के समुच्चय से नियंत्रित होता है जिन्हें हम खोज भी सकते हैं तथा समझ भी सकते हैं।

प्रेक्षणात्मक पक्ष में, अब तक अन्तरिक्ष पृष्ठभूमि अन्वेषक उपग्रह (COBE) तथा दूसरे अन्य

सहयोगियों द्वारा ब्रह्माण्डीय सूक्ष्म तरंग पृष्ठभूमि विकिरण में असमानताओं (फ्लक्चुएशन) का मापन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रगति रही है। ये असमानताएँ सृष्टि की अंगुलिछाप (फिंगर प्रिंट्स) जैसे हैं, एक निर्बाध एवं एक समान प्रारम्भिक ब्रह्मांड में बहुत छोटी सी अनियमितताएँ जो बाद में मन्दाकिनियों, तारों तथा उन सारी संरचनाओं में विकसित हो गईं जिन्हें हम अपने चारों ओर देखते हैं। उनका स्वरूप इस प्रस्ताव के पूर्वानुमानों के अनुरूप है कि काल्पनिक समय दिशा में ब्रह्मांड की कोई सीमा या किनारा नहीं है; परन्तु पृष्ठभूमि में विकिरण-असमानताओं के अन्य सम्भावित स्पष्टीकरणों से इस प्रस्ताव का विभेद करने के लिए अभी और प्रेक्षण करने आवश्यक होंगे। बहरहाल थोड़े से ही वर्षों में, हम सम्भवतः यह जान लेंगे कि क्या यह तथ्य विश्वसनीय है कि हम एक ऐसे ब्रह्मांड में रहते हैं जो पूरी तरह से स्वयंपूर्ण है तथा जिसका न आदि है, न अन्त।

—स्टीफेन हॉकिंग

आभार

इस पुस्तक को लिखने में कई लोगों ने मेरी सहायता की है। मेरे वैज्ञानिक सहकर्मी बिना किसी अपवाद के मेरे प्रेरणास्रोत रहे हैं। वर्षों तक रोजर पैनरोज, रॉबर्ट जीरॉख, ब्रैन्डन कार्टर, जॉर्ज इलिस, गैरी गिब्बन्स, डॉन पेज तथा जिम हार्टल मेरे प्रमुख सहायक तथा सहयोगी थे। मैं उनका तथा अपने शोध-छात्रों का बहुत ऋणी हूँ, जिन्होंने आवश्यकता पड़ने पर सदैव मुझे सहायता प्रदान की।

मेरे एक विद्यार्थी, ब्रायन ह्विट ने इस पुस्तक का प्रथम संस्करण लिखने में मेरी बहुत सहायता की। 'बैन्टम बुक्स' में मेरे सम्पादक, पीटर गज्जार्डी ने अनेक टिप्पणियाँ कीं जिनसे यह पुस्तक काफी सुधर गई। इसके अतिरिक्त, इस संस्करण के लिए, मैं एन्ड्रयू ड्यून को धन्यवाद देना चाहूँगा जिन्होंने इस पुस्तक का पुनरीक्षण करने में मेरी सहायता की।

मैं इस पुस्तक को अपनी सम्प्रेषण प्रणाली के बिना नहीं लिख सकता था। यह सॉफ्टवेयर जो समकारक (ईक्क्लाइजर) कहा जाता है मुझे वर्ड्स प्लस इनकारपोरेशन, लैंकास्टर, कैलिफोर्निया के वाल्ट वाल्टोज द्वारा उपहार में दिया गया था। मेरा वाणी-संश्लेषक सनीवेल, कैलिफोर्निया के स्पीच-प्लस द्वारा भेंट में दिया गया था। वाणी-संश्लेषक तथा लैप-टॉप कम्प्यूटर कैम्ब्रिज एडेप्टिव कम्यूनिकेशन लिमिटेड के डेविड मैसन द्वारा मेरी व्हील-चेयर पर लगा दिए गए। अपनी आवाज खो देने से पहले की अपेक्षा अब इस प्रणाली की सहायता से मैं बेहतर तरीके से बातचीत कर सकता हूँ।

इस पुस्तक के लेखन व पुनरीक्षण के वर्षों में मेरे अनेक सचिव व सहायक रहे हैं। जहाँ तक सचिवों का सम्बन्ध है, मैं जूडी फैला, एन. रैल्फ, लौरा जेन्ट्री, चैरिल विलिंगटन तथा सू मैसी का बहुत कृतज्ञ हूँ। कोलिन विलियम्स, डेविड थॉमस और रेमण्ड लाफ्लेम, निक फिलिप्स, एन्ड्रयू. डयून, स्टुअर्ट जेमीसन, जोनाथन ब्रैंचले, टिम हंट, साइमन गिल, जॉन रॉजर्स, और टॉम केन्डॉल मेरे सहायक रहे हैं। उन्होंने तथा मेरी परिचारिकाओं, मेरे सहकर्मियों, मित्रों व परिवार के सदस्यों ने मेरी अपंगता के बावजूद मेरे शोध-कार्य को जारी रखने तथा अपना जीवन प्रफुल्लतापूर्वक जीने के लिए मुझे सामर्थ्य प्रदान की है।

—स्टीफेन हॉकिंग

अनुक्रम

समय
का
संक्षिप्त
इतिहास

अध्याय 1

ब्रह्माण्ड सम्बन्धी हमारी तस्वीर

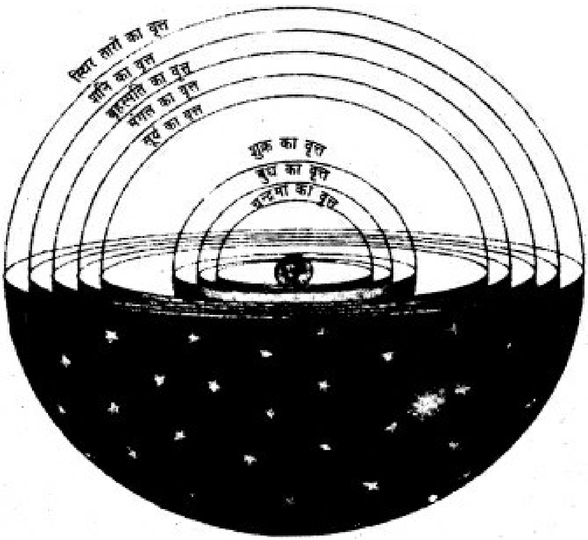
एक सुविख्यात वैज्ञानिक ने (कुछ लोगों का कहना है कि वह बर्ट्रेंड रसेल थे) एक बार खगोल विज्ञान पर एक सार्वजनिक व्याख्यान दिया। उन्होंने बताया कि किस प्रकार पृथ्वी सूर्य के चारों ओर अपनी कक्षा में घूमती है तथा उसी क्रम में, किस प्रकार सूर्य एक विशाल तारा समूह; जिसे हमारी आकाश गंगा कहा जाता है, के केन्द्र की परिक्रमा करता है। व्याख्यान की समाप्ति पर, एक छोटे कद की वृद्ध महिला कक्ष में पीछे से उठी और बोली, "आपने जो कुछ भी हमें बताया है सब बकवास है। विश्व वास्तव में एक विशालकाय कछुए की पीठ पर टिकी हुई समतल तश्तरी है।" उत्तर देने से पूर्व वह वैज्ञानिक विशिष्ट अन्दाज से मुस्कुराए, फिर बोले, "कछुआ किस चीज पर खड़ा है?" "तुम बहुत समझदार हो नवयुवक, बहुत ही समझदार," वह वृद्ध महिला बोली, "परन्तु नीचे तक हैं कछुए ही!"

अधिकांश लोग कछुओं की असीम मीनार के रूप में हमारे ब्रह्माण्ड की इस तस्वीर को जरा हास्यास्पद पाएँगे, परन्तु हम ये क्यों सोचते हैं कि हम ही बेहतर जानते हैं? हम ब्रह्माण्ड के बारे में क्या जानते हैं और इसे कैसे जानते हैं? ब्रह्माण्ड कहाँ से आया और ये कहाँ जा रहा है? क्या ब्रह्माण्ड का आदि था, और यदि ऐसा था तो उससे पहले क्या घटित हुआ? काल की प्रकृति क्या है? क्या इसका कभी अन्त होगा? अद्भुत नवीन तकनीकों द्वारा क्रमबद्ध रूप से सम्भव बनाई गईं भौतिक विज्ञान की हाल ही की कुछ प्रमुख उपलब्धियाँ इन चिरस्थायी प्रश्नों में से कुछ के सम्भावित उत्तर प्रस्तावित करती हैं। किसी दिन ये उत्तर हमें या तो इतने सुस्पष्ट प्रतीत हो सकते हैं जितनी कि सूर्य की परिक्रमा करती हुई पृथ्वी—या फिर इतने उपहासपूर्ण जितनी कि कछुओं की मीनार! केवल समय ही बताएगा (चाहे वह कुछ भी हो)।

लगभग 340 ई.पू., यूनानी दार्शनिक अरस्तू ने अपनी पुस्तक 'ऑन दि हैवन्स' में लोगों के समक्ष यह विश्वास दिलाने के लिए दो अच्छी दलीलें प्रस्तुत की थीं कि पृथ्वी एक समतल तश्तरी नहीं बल्कि एक गोल पिण्ड है। सबसे पहले, उन्होंने यह जानकारी हासिल की कि चन्द्रग्रहण पृथ्वी के सूर्य व चन्द्रमा के बीच में आने के कारण होते हैं। चन्द्रमा पर पृथ्वी की छाया सदैव गोल होती है, जो केवल तभी सच होगी जबकि पृथ्वी गोलाकार हो। यदि पृथ्वी एक समतल तश्तरी होती, तो इसकी छाया लम्बी फैली हुई तथा दीर्घवृत्तीय होती, सिवाय उस समय के जबकि ग्रहण सदैव ऐसे समय घटित हो जब सूर्य तश्तरी के ठीक पीछे हो। दूसरे, यूनानी अपनी यात्राओं के अनुभव से जानते थे कि अधिक उत्तरी क्षेत्रों की अपेक्षा जब दक्षिण से देखा जाए तो ध्रुव तारा आकाश में अपेक्षाकृत झुका हुआ दिखाई देता है। (चूँकि ध्रुव तारा उत्तरी ध्रुव पर स्थित है, इसलिए उत्तरी ध्रुव पर यह किसी प्रेक्षक के ठीक ऊपर दिखाई पड़ता है, परन्तु भूमध्य रेखा से किसी देखनेवाले के लिए ठीक क्षितिज पर स्थित दिखाई पड़ता है।) मिस्र और यूनान में ध्रुव तारे की स्थिति में अन्तर से, अरस्तू ने यह अनुमान भी लगाया कि पृथ्वी के चारों ओर की दूरी 4,00,000 स्टेडिया है। यह ठीक-ठीक नहीं मालूम कि एक स्टेडियम की लम्बाई क्या थी, परन्तु यह लगभग दो सौ गज रही होगी जो अरस्तू के अनुमान को वर्तमान स्वीकृत संख्या का लगभग दोगुना बना देगी। पृथ्वी गोल ही होनी चाहिए, इस सम्बन्ध में यूनानियों के पास एक तीसरी दलील भी थी—कि क्षितिज से आते हुए जलयान का पाल ही फिर क्यों किसी को पहले दिखाई देता है, तथा जहाज का ढाँचा क्यों बाद में दिखाई देता है।

अरस्तू का विचार यह था कि पृथ्वी स्थिर है तथा सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह और तारे वृत्ताकार

कक्षाओं में पृथ्वी के चारों ओर घूमते हैं। वे यह विश्वास इसलिए करते थे क्योंकि किन्हीं रहस्यपूर्ण कारणों के वशीभूत वे यह अनुभव करते थे कि पृथ्वी ब्रह्माण्ड का केन्द्र है और यह कि वृत्तीय गति सर्वाधिक शुद्ध एवं त्रुटिहीन है। दूसरी शताब्दी में इसी विचार को एक सम्पूर्ण ब्रह्माण्डीय मॉडल में टॉलेमी द्वारा विस्तार से वर्णित किया गया है। इस मॉडल में पृथ्वी केन्द्र में स्थित थी तथा यह चारों ओर आठ गोलों से घिरी हुई थी, जिनमें चन्द्रमा, सूर्य, तारे तथा उस समय ज्ञात पाँच ग्रह—बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति तथा शनि स्थित थे (चित्र 1.1)। आकाश में अवलोकित अपने कुछ जटिल मार्गों को स्पष्ट करने के लिए ग्रह अपने-अपने क्षेत्रों से सम्बद्ध छोटे वृत्तों में स्वयं गति करते थे। सबसे बाहरी क्षेत्र में तथाकथित स्थिर तारे शामिल थे जो एक-दूसरे के सापेक्ष सदैव एक-सी स्थितियों में स्थिर रहते हैं, परन्तु जो आकाश के आर-पार साथ-साथ घूमते हैं। अन्तिम क्षेत्र से परे क्या है, यह कभी भी बहुत स्पष्ट नहीं किया गया, परन्तु यह निश्चित रूप से मानवजाति के प्रेक्षण करने योग्य ब्रह्माण्ड का भाग नहीं था।



आकृति 1.1

आकाश में खगोलीय पिण्डों की स्थितियों की भविष्यवाणी करने के लिए टॉलेमी के मॉडल ने एक तार्किक रूप से सही प्रणाली प्रस्तुत की। परन्तु इन स्थितियों के सही पूर्वानुमान के लिए टॉलेमी को यह धारणा परिकल्पित करनी पड़ी कि चन्द्रमा एक ऐसे पथ का अनुसरण करता है जो इसे कभी-कभी किसी दूसरे समय की अपेक्षा पृथ्वी के दोगुना समीप ले आता है। इसका अर्थ यह हुआ कि चन्द्रमा को कभी-कभी किसी दूसरे समय की अपेक्षा दोगुना बड़ा दिखाई देना चाहिए। टॉलेमी ने इस दोष को पहचान लिया, लेकिन फिर भी उसका मॉडल, हालाँकि व्यापक रूप से तो नहीं, तथापि सामान्यतया स्वीकार कर लिया गया। इसे ईसाई चर्च द्वारा ब्रह्माण्ड की उस तस्वीर के रूप में स्वीकार कर लिया गया जो बाइबिल की धारणा के अनुरूप थी, क्योंकि इसमें सबसे बड़ा लाभ यह था कि इसमें स्थिर तारों के क्षेत्र से परे स्वर्ग और नरक की काफी गुंजाइश थी।

बहरहाल, एक अपेक्षाकृत आसान मॉडल सन् 1514 में पोलैण्ड के एक पादरी निकोलस कॉपर्निकस द्वारा प्रस्तुत किया गया (शायद अपने चर्च द्वारा एक अपधर्मी के रूप में कलंकित किए जाने के भय से, पहले कॉपर्निकस ने अपने मॉडल को गुमनाम प्रसारित किया)। उनका विचार यह था कि सूर्य केन्द्र में स्थिर है तथा पृथ्वी एवं दूसरे ग्रह सूर्य के चारों ओर वृत्ताकार कक्षाओं में घूमते हैं। इस विचार को गम्भीरतापूर्वक ग्रहण करने तक लगभग एक शताब्दी व्यतीत हो गई। तब जर्मनी के जोहान्स कैपलर और इटली के गैलीलियो गैलिली—इन दो खगोलविदों ने कॉपर्निकस

के सिद्धान्त का, इस तथ्य के बावजूद, सार्वजनिक रूप से समर्थन करना प्रारम्भ कर दिया कि इसमें पूर्वानुमानित कक्षाएँ, प्रेक्षित की गई कक्षाओं से बिल्कुल भी मेल नहीं खाती थीं। अरस्तू व टॉलेमी के सिद्धान्तों पर एक घातक प्रहार सन् 1609 में हुआ। उस वर्ष गैलीलियो ने रात्रि के आकाश का एक दूरबीन से प्रेक्षण करना प्रारम्भ कर दिया था। इस दूरबीन का आविष्कार कुछ ही समय पहले हुआ था। जब गैलीलियो ने बृहस्पति ग्रह का प्रेक्षण किया, तो उसने पाया कि इसके कई छोटे उपग्रह या चन्द्रमा हैं, जो इसकी परिक्रमा करते हैं। इससे यह बात सामने आई कि हर पिण्ड का पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लगाना आवश्यक नहीं था, जैसाकि अरस्तू और टॉलेमी सोचते थे। (निःसन्देह यह विश्वास करना अब भी सम्भव था कि पृथ्वी ब्रह्माण्ड के केन्द्र में स्थिर है तथा बृहस्पति के चन्द्रमा, यह 'आभास' देते हुए कि वे बृहस्पति की परिक्रमा करते हैं, वस्तुतः पृथ्वी के चारों ओर ही अत्यन्त जटिल मार्गों का अनुसरण करते हैं। फिर भी कॉपर्निकस का सिद्धान्त अपेक्षाकृत अधिक सरल था)। उसी समय जोहान्स कैपलर ने कॉपर्निकस के सिद्धान्त में यह सुझाते हुए किंचित संशोधन कर दिया था कि ग्रह पूर्णवृत्त में नहीं दीर्घवृत्त में विचरण करते हैं। (दीर्घ-वृत्त एक लम्बाई में विस्तृत वृत्त होता है)। अब पूर्वानुमान अन्ततः प्रेक्षणों से मेल खाने लगे।

जहाँ तक कैपलर का सम्बन्ध है, दीर्घवृत्तीय कक्षाएँ मात्र एक तदर्थ परिकल्पना थी, बल्कि अरुचिकर भी, क्योंकि दीर्घवृत्त पूर्णवृत्तों की अपेक्षा स्पष्ट रूप से कम परिशुद्ध थे। लगभग संयोगवश यह खोज लेने के पश्चात् कि दीर्घवृत्तीय कक्षाएँ प्रेक्षणों के अनुरूप हैं, वह अपने इस विचार से लोगों को सन्तुष्ट नहीं कर सके कि चुम्बकीय शक्ति के कारण ग्रह सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाते हैं। काफी बाद में, सन् 1687 में, एक स्पष्टीकरण उस समय प्रस्तुत किया गया जब सर आइज़क न्यूटन ने भौतिकी में कभी भी प्रकाशित शायद एकमात्र सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कृति—अपनी पुस्तक 'फिलोसॉफी नेचूरालिस प्रिंसिपिया मैथेमैटिका' प्रकाशित की। इसमें न्यूटन ने न केवल यह सिद्धान्त विचारार्थ प्रस्तुत किया कि खगोलीय पिण्ड आकाश और काल में किस प्रकार विचरण करते हैं, बल्कि इन गतियों का विश्लेषण करने के लिए आवश्यक जटिल गणित का भी विकास किया। इसके अतिरिक्त न्यूटन ने एक सर्वव्यापी गुरुत्वाकर्षण के नियम को एक तार्किक आधार के रूप में स्वीकार कर लिया, जिसके अनुसार ब्रह्माण्ड में प्रत्येक पिंड दूसरे पिंड की तरफ एक ऐसे बल से आकर्षित होता है, जो उतना ही अधिक प्रबल होता है, जितना अधिक वे पिण्ड स्थूल (massive) तथा एक-दूसरे के समीप होते हैं। यही वह बल था जो वस्तुओं के धरातल पर गिरने का कारण था। (यह कहानी कि न्यूटन अपने सिर पर एक सेब के गिरने से प्रेरित हुआ था, लगभग निश्चित रूप से एक सन्दिग्ध वृत्तान्त है। न्यूटन ने स्वयं जो कुछ कभी कहा वह यह था कि गुरुत्वाकर्षण का विचार उन्हें उस समय आया जब वह 'एक चिन्तनशील मुद्रा में' बैठे हुए थे और 'एक सेब के गिरने से यह विचार उत्पन्न हआ था।') न्यूटन ने आगे यह सिद्ध किया कि उनके नियम के अनुसार चन्द्रमा को पृथ्वी के चारों ओर एक दीर्घवृत्तीय कक्षा में परिभ्रमण कराने तथा पृथ्वी एवं ग्रहों को सूर्य के चारों ओर दीर्घवृत्तीय पथों का अनुसरण कराने में गुरुत्वाकर्षण ही जिम्मेदार होता है।

कॉपर्निकस के मॉडल ने टॉलेमी के खगोलीय क्षेत्रों, और उनके साथ, इस विचार से कि ब्रह्माण्ड की एक प्राकृतिक सीमा है, मुक्ति पा ली। चूँकि 'स्थिर तारे' पृथ्वी के अपने अक्ष पर प्रचक्रण करने के कारण आकाश के आर-पार परिभ्रमण करने के अतिरिक्त अपनी स्थितियों में परिवर्तन करते हुए नहीं दिखाई पड़ते थे, अतः यह मान लेना स्वाभाविक हो गया कि स्थिर तारे हमारे सूर्य के समान ही पिण्ड हैं, लेकिन अपेक्षाकृत बहुत दूर स्थित हैं।

न्यूटन ने यह वस्तुस्थिति समझ ली थी कि उनके गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त के अनुसार तारों को एक-दूसरे को आकर्षित करना चाहिए, अतः यह प्रतीत होने लगा कि वे आवश्यक रूप से गतिहीन नहीं रह सकते थे। क्या वे सभी किसी एक बिन्दु पर गिर नहीं पड़ेंगे? सन् 1691 में अपने युग के एक अन्य अग्रणी चिन्तक रिचर्ड बैन्टले के नाम एक पत्र में न्यूटन ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि यदि आकाश में एक सीमित क्षेत्र के अन्दर तारे केवल एक सीमित मात्रा में ही वितरित होते तो ऐसा अवश्य ही घटित हो जाता। परन्तु दूसरी ओर उन्होंने यह तर्क दिया कि यदि अनन्त

आकाश में तारों की एक असीमित मात्रा न्यूनाधिक समान रूप से वितरित हो तो ऐसा घटित नहीं होगा, क्योंकि उनके गिरने के लिए वहाँ कोई केन्द्रीय बिन्दु नहीं होगा।

यह तर्क उन गहरे खतरों का उदाहरण है, जिनका सामना हमें अनन्त के बारे में बात करते समय करना पड़ सकता है। एक अनन्त ब्रह्माण्ड में प्रत्येक बिन्दु को केन्द्र के रूप में माना जा सकता है, क्योंकि प्रत्येक बिन्दु अपने चारों तरफ तारों की असीमित संख्या रखता है। काफी बाद में ही यह बात समझी गई कि सही रास्ता सीमित स्थिति पर विचार करने का है जिसमें समस्त तारे एक-दूसरे के ऊपर गिर पड़ते हैं, और फिर यह प्रश्न पूछने का है कि वस्तुस्थिति उस समय किस प्रकार बदलेगी, यदि कोई इस क्षेत्र के बाहर की तरफ लगभग समान रूप से वितरित और अधिक तारे जोड़ दे। न्यूटन के नियम के अनुसार अतिरिक्त तारों से मूल तारों पर सामान्यतः कोई अन्तर नहीं पड़ेगा, अतः तारे ठीक उतनी ही तीव्रता से गिर पड़ेंगे। हम जितने चाहें उतने तारे और बढ़ा सकते हैं, लेकिन फिर भी वे सदैव अपने ऊपर गिरते रहेंगे। अब हम जानते हैं कि उस ब्रह्माण्ड का एक अनन्त स्थिर मॉडल बनाना असम्भव है जिसमें गुरुत्वाकर्षण सदैव आकर्षी किस्म का हो।

बीसवीं शताब्दी से पूर्व विचारधारा के सामान्य स्वरूप पर यह एक रोचक चिन्तन है कि किसी ने भी यह सुझाव नहीं दिया कि ब्रह्माण्ड फैल रहा है अथवा सिकुड़ रहा है। साधारणतया यह स्वीकार किया जाता था कि या तो ब्रह्माण्ड सदैव से एक अपरिवर्तनीय स्थिति में था या फिर यह कि अतीत में किसी सीमाबद्ध समय पर इसे न्यूनाधिक वैसा ही उत्पन्न किया गया जैसाकि हम आज इसे देखते हैं। आंशिक रूप से ऐसा शायद लोगों की शाश्वत शक्तियों में विश्वास करने की प्रवृत्ति के कारण रहा होगा और साथ ही साथ उस सन्तोष के कारण भी जो उन्हें इस विचार में प्राप्त होता था कि चाहे वे बूढ़े होकर मर जाएँ, लेकिन ब्रह्माण्ड शाश्वत एवं अपरिवर्तनीय ही रहेगा।

वे लोग भी जो यह समझते थे कि न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त यह सिद्ध करता है कि ब्रह्माण्ड स्थिर नहीं हो सकता, यह नहीं सोचते थे कि इसका विस्तार हो रहा होगा। इसके स्थान पर उन्होंने बहुत लम्बी दूरियों पर गुरुत्वाकर्षण शक्ति को प्रतिकर्षी बनाकर इस सिद्धान्त में संशोधन करने का प्रयास किया। इसने ग्रहों की गतियों के सम्बन्ध में उनकी भविष्यवाणियों को किसी विशेष अर्थपूर्ण तरीके से प्रभावित नहीं किया, लेकिन इसने नजदीकी तारों के मध्य आकर्षण-शक्तियों को उन तारों, जोकि बहुत दूर थे, की प्रतिकर्षी शक्तियों से संतुलित कराकर तारों के असीमित वितरण का साम्यावस्था में रहना स्वीकार कर लिया। बहरहाल, अब हम यह विश्वास करते हैं कि ऐसी साम्यावस्था अस्थिर होगी : यदि किसी क्षेत्र में तारे एक-दूसरे के थोड़ा-सा भी समीप आ गए तो उनके मध्य आकर्षण शक्तियाँ और अधिक शक्तिशाली हो जाएँगी तथा प्रतिकर्षी शक्तियों के ऊपर अपना प्रभुत्व कायम कर लेंगी, जिससे कि तारे एक-दूसरे की ओर गिरना जारी रखेंगे। दूसरी ओर, यदि तारे एक-दूसरे से थोड़ा-सा भी अपेक्षाकृत अधिक दूर हो गए तो प्रतिकर्षी शक्तियाँ प्रभुत्व स्थापित कर लेंगी तथा उन्हें और अधिक दूर खदेड़ देंगी।

अनन्त स्थिर ब्रह्माण्ड (infinite static universe) पर एक अन्य आपत्ति सामान्यतया एक जर्मन दार्शनिक हैनरिख़ ऑलबर्स द्वारा दी जाती है, जिसने सन् 1823 में यह सिद्धान्त सामने रखा था। वास्तव में न्यूटन के विभिन्न समकालीन वैज्ञानिकों ने इस समस्या को उठाया था तथा ऑलबर्स का शोधपत्र भी इसके विरुद्ध युक्तिसंगत विश्वसनीय तर्क समाविष्ट करनेवाला कोई प्रथम लेख नहीं था, फिर भी यह ऐसा पहला लेख जरूर था जिस पर सबसे ज्यादा ध्यान गया। कठिनाई यह है कि एक अनन्त स्थिर ब्रह्माण्ड में लगभग प्रत्येक दृष्टि-रेखा किसी तारे के धरातल पर जाकर समाप्त होगी। इस प्रकार कोई यह अपेक्षा कर सकता है कि सारा आकाश रात्रि में उतना ही प्रकाशमान होगा जितना कि सूर्य। ऑलबर्स की जवाबी दलील यह थी कि दूरस्थ तारों से आनेवाला प्रकाश बीच में हस्तक्षेप करनेवाले पदार्थ के अवशोषण से धुँधला हो जाएगा। फिर भी, यदि ऐसा हुआ तो बीच में हस्तक्षेप करनेवाला पदार्थ अन्ततः उस समय तक गर्म होता रहेगा जब तक कि यह उतनी दीप्ति से न चमकने लगे जितनी दीप्ति से नक्षत्र चमकते हैं। सम्पूर्ण रात्रि

आकाश उतना ही उद्दीप्त होना चाहिए जितना कि सूर्य का धरातल, इस निष्कर्ष से बचने का एक ही मार्ग यह कल्पना कर लेना होगा कि तारे सदैव से नहीं चमकते रहे थे, बल्कि अतीत में किसी सीमाबद्ध समय पर उनकी उत्पत्ति हुई थी। उस स्थिति में अवशोषी पदार्थ अभी तक गर्म नहीं हुआ होगा या दूरस्थ तारों का प्रकाश हम तक अभी नहीं पहुँचा होगा। और, यह बात हमें इस प्रश्न के सम्मुख लाकर खड़ा कर देती है कि किस कारणवश तारे पहली बार अस्तित्व में आए होंगे।

निस्सन्देह इससे काफी पहले ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के सम्बन्ध में वाद-विवाद हो चुका था। अनेक प्रारम्भिक ब्रह्माण्डविदों एवं यहूदी, ईसाई तथा इस्लामी परम्पराओं के अनुसार ब्रह्माण्ड अतीत काल में, बहुत ज्यादा दूर नहीं, एक सीमाबद्ध समय पर आरम्भ हुआ था। ऐसी शुरुआत के लिए एक तर्क यह भावना ही थी कि ब्रह्माण्ड के अस्तित्व को समझाने के लिए 'प्रथम कारण' होना आवश्यक है। (ब्रह्माण्ड के अन्दर आप किसी घटना को किसी पूर्ववर्ती घटना के कारण घटित हुई बताकर स्पष्ट करते हैं, परन्तु स्वयं ब्रह्माण्ड का अस्तित्व इस तरीके से केवल तभी समझाया जा सकता था जबकि इसका कोई प्रारम्भ रहा हो) एक अन्य तर्क सन्त ऑगस्टाइन द्वारा अपनी पुस्तक 'दि सिटी ऑफ गॉड' में विचारार्थ प्रस्तुत किया गया। उन्होंने बताया कि सभ्यता प्रगति कर रही है और हम यह याद रखते हैं कि किसने यह कार्य सम्पन्न किया अथवा वह तकनीक किसने विकसित की। इस प्रकार मनुष्य और इसीलिए शायद ब्रह्माण्ड भी इतने दीर्घ काल से अस्तित्व में नहीं रह सकता था। सन्त ऑगस्टाइन ने 'बुक ऑफ जेनेसिस' (book of Genesis) के अनुसार ब्रह्माण्ड की रचना के लिए लगभग 5,000 ई.पू. वर्ष की तारीख स्वीकार की (रोचक तथ्य यह है कि यह तिथि 10,000 ई.पू. पिछले हिमयुग के अन्त के समय से अधिक दूर नहीं है, जिसके बारे में पुरातत्त्वविद हमें यह बताते हैं कि यही वह समय था जब सभ्यता वास्तव में प्रारम्भ हुई)।

दूसरी ओर, अरस्तू और अधिकतर दूसरे यूनानी दार्शनिकों को ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का विचार इसलिए पसन्द नहीं आया क्योंकि इसमें दैवीय हस्तक्षेप की गन्ध आवश्यकता से अधिक थी। इसी कारणवश वह यह विश्वास करते थे कि मानव जाति और इसके चारों ओर का यह संसार सदैव से अस्तित्व में था तथा सदैव अस्तित्व में रहेगा। यहाँ ऊपर वर्णित प्रगति के बारे में प्राचीन विद्वान पहले से ही इस तर्क पर चिन्तन-मनन करते रहे हैं, और यह कहकर उन्होंने इसका उत्तर दिया कि समय-समय पर हुई प्रलय और दूसरी प्राकृतिक विपत्तियों ने ही बारम्बार मानव जाति को सभ्यता की शुरुआत के ठीक पीछे लाकर खड़ा कर दिया।

ब्रह्माण्ड क्या किसी समय-सीमा में प्रारम्भ हुआ या क्या यह आकाश में सीमित है, इन प्रश्नों का परीक्षण प्रसिद्ध दार्शनिक इमानुएल कान्ट द्वारा सन् 1781 में प्रकाशित अपनी स्मरणीय (और बहुत अज्ञात) कृति 'क्रिटीक ऑफ प्योर रीज़न' में बाद में विस्तृत रूप से किया गया। उन्होंने इन प्रश्नों को शुद्ध तर्क का विप्रतिषेध कहा क्योंकि वे यह अनुभव करते थे कि इस अभिधारणा (थीसिस) में विश्वास करने के लिए कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई तथा इस प्रतिस्थापना (एन्टिथीसिस) में विश्वास करने के लिए कि वह सदैव से अस्तित्व में था, समान रूप से विवश कर देनेवाले ठोस तर्क थे। अभिधारणा के पक्ष में उनका तर्क यह था कि यदि ब्रह्माण्ड की कोई शुरुआत न होती तो किसी भी घटना से पूर्व काल अनन्त होता, जिसे वह बेतुका मानते थे। प्रतिस्थापना के पक्ष में उनका तर्क यह था कि यदि ब्रह्माण्ड की कोई शुरुआत थी तो इससे पूर्व का काल अनन्त होता। तो ब्रह्माण्ड को किसी विशिष्ट काल पर ही क्यों आरम्भ होना चाहिए? अभिधारणा तथा प्रतिस्थापना दोनों ही प्रकरणों में उनके तर्क वस्तुतः एक-से हैं, और वे दोनों उनके इस अव्यक्त पूर्वानुमान पर आधारित हैं कि चाहे ब्रह्माण्ड सदैव से अस्तित्व में था या नहीं, काल-चक्र सदैव विपरीत दिशा में बहता रहता है। जैसाकि हम देखेंगे, ब्रह्माण्ड की शुरुआत से पहले काल की संकल्पना का कोई अर्थ नहीं है। इस ओर सर्वप्रथम सन्त ऑगस्टाइन द्वारा ध्यान दिलाया गया था। जब उनसे पूछा गया : ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करने से पूर्व ईश्वर ने क्या किया? बजाय इसके कि ऑगस्टाइन इसका यह उत्तर देते कि ईश्वर ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति से पहले ऐसे

प्रश्न पूछनेवालों के लिए नरक बना रहा था, ऑगस्टाइन ने कहा कि काल ईश्वर द्वारा रचित ब्रह्माण्ड का गुण-धर्म है और ब्रह्माण्ड की रचना से पहले काल का कोई अस्तित्व नहीं था।

जब अधिकांश लोग एक अपरिवर्तनीय और आवश्यक रूप से स्थिर ब्रह्माण्ड में विश्वास करते थे तो यह प्रश्न कि इसकी कोई शुरुआत थी या नहीं, वास्तव में धर्मशास्त्र या तत्त्व-मीमांसा से सम्बन्धित रह गया था। इस सिद्धान्त पर कि ब्रह्माण्ड पहले से अस्तित्व में था या फिर इस सिद्धान्त पर कि यह किसी सीमाबद्ध समय पर इस प्रकार से गतिमान किया गया कि ऐसा दिखाई दे जैसे कि मानो यह सदैव से अस्तित्व में हो—जो कुछ भी समान रूप से देखा गया उसका स्पष्टीकरण दिया जा सकता था। परन्तु सन् 1929 में एडविन हब्बल ने यह महत्त्वपूर्ण प्रेक्षण किया कि आकाश में जहाँ कहीं भी हम देखें, दूरस्थ आकाशगंगाएँ बहुत तीव्र गति से हमसे दूर भाग रही हैं। दूसरे शब्दों में, ब्रह्माण्ड का विस्तार हो रहा है। इसका अर्थ यह हुआ कि पूर्ववर्ती समय में सभी पिण्ड परस्पर बहुत समीप रहे होंगे। वस्तुतः ऐसा लगा कि लगभग 10 या 20 अरब वर्ष पूर्व एक ऐसा समय था जब ब्रह्माण्ड का सारा पदार्थ ठीक एक ही स्थान पर था और इसीलिए उस समय ब्रह्माण्ड का घनत्व असीमित था। अन्ततः यह खोज ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के प्रश्न को विज्ञान की परिधि में ले आई।

हब्बल के प्रेक्षणों ने यह सुझाया कि महाविस्फोट या महानाद (big bang) के नाम से ज्ञात एक समय था जब ब्रह्माण्ड अति सूक्ष्म तथा अत्यंत सघन था। ऐसी परिस्थितियों में विज्ञान के सारे नियम भंग हो जाते हैं और इसी के साथ ही भविष्य के बारे में पूर्वानुमान लगाने की सारी क्षमता भी समाप्त हो जाती है। यदि इस समय से पूर्व कोई घटनाक्रम होता तो यह जो कुछ वर्तमान समय में घटित हो रहा है उसे प्रभावित नहीं कर सकता था। उस घटनाक्रम के अस्तित्व की उपेक्षा की जा सकती है क्योंकि इसका कोई भी प्रेक्षणात्मक परिणाम नहीं होगा। यह कहा जा सकता है कि महाविस्फोट के साथ ही काल की उत्पत्ति इस अर्थ में हुई कि इससे पहले के काल को परिभाषित नहीं किया जा सकता। यहाँ इस तथ्य पर जोर दिया जाना चाहिए कि काल की यह उत्पत्ति काल से सम्बद्ध उन अवधारणाओं से भिन्न है, जिन पर पहले विचार किया गया था। एक अपरिवर्तनीय ब्रह्माण्ड में काल की उत्पत्ति कुछ ऐसी वस्तु होती है जिसे ब्रह्माण्ड से बाहर की किसी शक्ति द्वारा आरोपित किया गया हो; काल की उत्पत्ति के लिए कोई भौतिक आवश्यकता नहीं होती है। यह कल्पना की जा सकती है कि ईश्वर ने ब्रह्माण्ड को अतीत में किसी निश्चित काल पर उत्पन्न किया। दूसरी ओर, यदि ब्रह्माण्ड का विस्तार हो रहा है, तो इस तथ्य के भौतिक कारण हो सकते हैं कि उत्पत्ति हुई ही क्यों! अब भी यह कल्पना की जा सकती थी कि ईश्वर ने ब्रह्माण्ड को बिग बैंग के क्षण पर या इसके बाद ठीक इस तरीके से उत्पन्न किया कि यह ऐसा दिखाई दे मानो कोई महाविस्फोट हुआ था, परन्तु यह मानना निरर्थक होगा कि इसे बिग बैंग से पहले उत्पन्न किया गया था। एक निरन्तर विस्तृत होता हुआ ब्रह्माण्ड सृष्टिकर्ता का निषेध नहीं करता परन्तु इस बात पर सीमा-बन्धन अवश्य लगाता है कि आखिर उसने अपना कार्य कब पूरा किया होगा!

ब्रह्माण्ड की प्रकृति के बारे में बात करने के लिए तथा ऐसे प्रश्नों पर विचार-विमर्श करने के लिए कि क्या ब्रह्माण्ड का कोई आदि या अन्त है, आपको इस सम्बन्ध में स्पष्ट होना पड़ेगा कि एक वैज्ञानिक सिद्धान्त होता क्या है। मैं तो यह साधारण विचार स्वीकार करूँगा कि एक सिद्धान्त ब्रह्माण्ड का या इसके सीमित अंश का बस एक मॉडल तथा एक नियम-समूह होता है जो उस मॉडल में दिए गए परिणामों का हमारे द्वारा किए गए प्रेक्षणों से सम्बन्ध स्थापित करता है। इसका अस्तित्व केवल हमारे मस्तिष्क में होता है तथा इसकी कोई अन्य वास्तविकता नहीं होती (चाहे उसका अर्थ कुछ भी हो)। वही सिद्धान्त एक अच्छा सिद्धान्त माना जाता है जो दो आवश्यकताओं की पूर्ति करता हो : एक तो यह कि वह उन बहुत सारी श्रेणी के प्रेक्षणों का सही-सही आकलन करे जो उस मॉडल के आधार पर किए गए हों तथा जिसमें नियम-बन्धन से मुक्त स्वेच्छाचारी तत्त्व बहुत ही थोड़े से हों। दूसरे, वह भविष्य के प्रेक्षणों के परिणामों का निश्चित पूर्वानुमान प्रस्तुत करे। उदाहरण के लिए, अरस्तू एम्पीडोक्लीज़ (Empedocles) के इस सिद्धान्त में विश्वास

करते थे कि प्रत्येक वस्तु पृथ्वी, वायु, अग्नि एवं जल—इन चार तत्त्वों से बनी है। यह काफी साधारण सिद्धान्त था, परन्तु इसने कोई निश्चित भविष्यवाणियाँ नहीं कीं। दूसरी ओर, न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त और भी अधिक सादे मॉडल पर आधारित था, जिसमें पिण्ड एक-दूसरे को ऐसे बल से आकृष्ट करते थे जो उनके द्रव्यमान के गुणनफल का समानुपाती तथा उनके बीच की दूरी के वर्ग का व्युत्क्रमानुपाती था। तब भी यह सिद्धान्त सूर्य, चन्द्रमा एवं ग्रहों की गतियों की भविष्यवाणी परिशुद्धता की एक बहुत बड़ी सीमा तक करता है।

कोई भी भौतिक सिद्धान्त, इस अर्थ में सदैव अस्थायी होता है कि यह मात्र एक परिकल्पना होती है : आप इसे कभी सिद्ध नहीं कर सकते। इस बात का कोई महत्त्व नहीं होता कि परीक्षणों के परिणाम कितनी बार किसी सिद्धान्त के अनुकूल होते हैं। आप कभी भी इस बात से आश्वस्त नहीं हो सकते कि अगली बार परिणाम सिद्धान्त का खण्डन नहीं करेंगे। दूसरी ओर सिद्धान्त के पूर्वानुमानों से भिन्न एवं प्रतिकूल किसी भी एक अभिमत या प्रेक्षण के आधार पर आप उस सिद्धान्त को गलत सिद्ध कर सकते हैं। जैसाकि विज्ञान के तत्त्व-ज्ञानी कार्ल पॉपर ने जोर देकर कहा है कि एक अच्छे सिद्धान्त के चरित्र का गुण-दोष इस तथ्य से बताया जा सकता है कि यह कई ऐसे पूर्वानुमान प्रस्तुत करता है, जिन्हें प्रेक्षण द्वारा सैद्धान्तिक रूप से गलत सिद्ध किया जा सकता है। हर बार यदि नए परीक्षणों के परिणाम पूर्वानुमानों के अनुकूल होते हैं तो सिद्धान्त जीवित रहता है और इसमें हमारा विश्वास बढ़ जाता है; परन्तु यदि कभी भी कोई नया प्रेक्षण प्रतिकूल पाया जाता है, तो हमें या तो सिद्धान्त को त्यागना पड़ता है या उसमें संशोधन करना पड़ता है। कम-से-कम यही बात होने की कल्पना की जाती है, परन्तु आप प्रेक्षण करनेवाले व्यक्ति की क्षमता पर सदैव प्रश्न उठा सकते हैं।

व्यवहार में प्राय: यह होता है कि एक नया सिद्धान्त अभिकल्पित किया जाता है जोकि वास्तव में किसी पूर्ववर्ती सिद्धान्त का ही विस्तार होता है। उदाहरण के लिए, बुध ग्रह के अति शुद्ध प्रेक्षणों से इसकी गति एवं न्यूटन के गुरुत्व के सिद्धान्तों के पूर्वानुमानों के मध्य बहुत ही सूक्ष्म अन्तर देखने को मिला। यह तथ्य कि जो कुछ देखा गया वह आइंस्टाइन के पूर्वानुमानों से तो मेल खा गया जबकि न्यूटन के पूर्वानुमानों से नहीं, नए सिद्धान्त की निर्णायक पुष्टियों में से एक था। फिर भी, समस्त व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए हम अब भी न्यूटन के सिद्धान्त का उपयोग करते हैं क्योंकि जिन स्थितियों में हम सामान्यत: कार्य करते हैं उनमें न्यूटन के पूर्वानुमानों में तथा आपेक्षिकता के सामान्य सिद्धांत के पूर्वानुमानों में बहुत कम अन्तर है। (न्यूटन के सिद्धान्त का बड़ा लाभ यह है कि आइंस्टाइन के सिद्धान्त की अपेक्षा उसका उपयोग करना अपेक्षाकृत काफी सरल है।)

विज्ञान का सम्भावित अन्तिम लक्ष्य एक ऐसा सिद्धान्त प्रस्तुत करना है जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की व्याख्या करता हो। बहरहाल, अधिकांश वैज्ञानिक वस्तुत: समस्या को दो अलग भागों में बाँटने के मार्ग का अनुसरण करते हैं। प्रथम, वे नियम हैं जो हमें यह बताते हैं कि ब्रह्माण्ड किस प्रकार समय के साथ परिवर्तित होता है। (यदि हम यह जानते हैं कि किसी विशिष्ट समय पर ब्रह्माण्ड किस प्रकार का है, तो ये भौतिक नियम हमें यह बताते हैं कि किसी बाद वाले समय पर यह कैसा दिखाई देगा।) दूसरे, ब्रह्माण्ड की प्रारम्भिक अवस्था का प्रश्न है। कुछ लोग यह अनुभव करते हैं कि विज्ञान का सम्बन्ध केवल प्रथम भाग से ही होना चाहिए; वे इसकी आद्य स्थिति के प्रश्न को धर्म या तत्त्व-मीमांसा का मामला मानते हैं। वे कहते हैं कि सर्वशक्तिमान होने के कारण ईश्वर ही, जिस तरह से वह चाहता था उस तरह से, ब्रह्माण्ड को प्रारम्भ कर सकता था। ऐसा हो सकता है, परन्तु उस स्थिति में वह इसे पूर्णतया मनमाने तरीके से भी विकसित कर सकता था। तब भी यह लगता है कि उसने निश्चित नियमों के अनुसार एक बहुत ही नियमित ढंग से इसे विकसित करने का मार्ग चुना। अत: यह मानना समान रूप से तर्कसंगत लगता है कि आद्य-स्थिति को नियन्त्रित करनेवाले भी कुछ नियम हैं।

एक ही प्रयास में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का वर्णन करनेवाले किसी सिद्धान्त को बनाना बहुत ही कठिन है। इसके स्थान पर हम समस्या को छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजित कर लेते हैं और फिर

बहुत सारे आंशिक सिद्धान्तों का आविष्कार करते हैं। इन आंशिक सिद्धान्तों में से प्रत्येक अन्य राशियों के प्रभावों की उपेक्षा करते हुए या उन्हें साधारण संख्या के समुच्चयों द्वारा व्यक्त करते हुए प्रेक्षणों की एक निश्चित सीमित श्रेणी की ही भविष्यवाणी एवं उनका वर्णन करता है। हो सकता है कि यह तरीका एकदम गलत हो। यदि ब्रह्माण्ड में प्रत्येक वस्तु मूलभूत रूप से किसी अन्य वस्तु पर निर्भर करती है तो अलगाव में समस्या के टुकड़ों की जाँच-पड़ताल करके किसी पूर्ण समाधान के समीप पहुँचना लगभग असम्भव होगा। फिर भी निश्चित रूप से इसी प्रकार से हमने अतीत में प्रगति की है। न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त ही पुनः वह सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है जो हमें यह बताता है कि दो पिण्डों के बीच गुरुत्व-बल प्रत्येक पिण्ड से सम्बद्ध उसके मात्र एक गुण—उसके द्रव्यमान—पर निर्भर करता है, नहीं तो वह इस बात से पूर्णतया मुक्त है कि वह पिण्ड किस पदार्थ से निर्मित है। इस प्रकार सूर्य एवं ग्रहों के कक्षा-पथों का हिसाब लगाने के लिए उनकी संरचना एवं गठन के सिद्धान्त को जानने की आवश्यकता नहीं है।

आज आपेक्षिकता के सामान्य सिद्धान्त एवं क्वाण्टम यान्त्रिकी इन दो आधारभूत आंशिक सिद्धान्तों के रूप में वैज्ञानिक ब्रह्माण्ड की व्याख्या करते हैं। ये सिद्धान्त इस शताब्दी के प्रथम 50 वर्षों की महान बौद्धिक उपलब्धियाँ हैं। आपेक्षिकता का सामान्य सिद्धान्त गुरुत्व-बल एवं ब्रह्माण्ड की विशाल संरचना की व्याख्या करता है अर्थात कुछ मील से लेकर 10^{24} (1 के बाद 24 शून्य) मील जितनी विशाल संरचना जो प्रेक्षणीय ब्रह्माण्ड के आकार का द्योतक है। दूसरी ओर, क्वाण्टम यान्त्रिकी एक इंच के 10 लाखवें हिस्से के 10 लाखवें हिस्से जितनी अति सूक्ष्म स्तरीय परिघटनाओं की व्याख्या से जुड़ी होती है। फिर भी, दुर्भाग्यवश, ये दोनों सिद्धान्त एक-दूसरे से असंगतता रखते हैं—ये दोनों सही नहीं हो सकते। एक ऐसे नए सिद्धान्त की खोज जो इन दोनों सिद्धान्तों को समाविष्ट कर ले—गुरुत्व का क्वाण्टम सिद्धान्त—इस पुस्तक की प्रमुख विषय-वस्तु और आज भौतिक विज्ञान के प्रमुख प्रयासों में से एक है। हमारे पास अभी तक ऐसा कोई सिद्धान्त नहीं है, और ऐसा एक सिद्धान्त पाने के मार्ग पर हम अभी भी बहुत पीछे हो सकते हैं, परन्तु ऐसे सिद्धान्त में जो गुण-धर्म अवश्य ही होने चाहिए, उनमें से कई को हम पहले से ही जानते हैं। और बाद के अध्यायों में हम यह देखेंगे कि गुरुत्वाकर्षण के क्वांटम सिद्धान्त द्वारा लगाए जानेवाले पूर्वानुमानों के बारे में हम बहुत कुछ पहले से ही जानते हैं।

अब, यदि आप यह विश्वास करते हैं कि ब्रह्माण्ड नियम-बन्धन से मुक्त नहीं है, बल्कि यह निश्चित नियमों द्वारा नियन्त्रित किया जाता है, तो आपको अन्ततः आंशिक सिद्धान्तों को एक पूर्ण एकीकृत सिद्धान्त में समाविष्ट करना पड़ेगा जो ब्रह्माण्ड में प्रत्येक वस्तु की व्याख्या करेगा। परन्तु ऐसे एक पूर्ण एकीकृत सिद्धान्त की खोज में एक आधारभूत विरोधाभास है। उपर्युक्त वर्णित वैज्ञानिक सिद्धान्तों के बारे में विचार इस धारणा से युक्त हैं कि हम विवेकपूर्ण प्राणी हैं जो ब्रह्माण्ड का अपनी इच्छानुसार प्रेक्षण करने के लिए तथा जो कुछ हम देखते हैं उससे तर्कसंगत निष्कर्ष निकालने के लिए स्वतन्त्र हैं। ऐसी योजना में यह मानना तर्कसंगत है कि हम अपने ब्रह्माण्ड को नियन्त्रित करनेवाले नियमों की ओर तेजी से प्रगति करते रहेंगे। फिर भी यदि वास्तव में एक पूर्ण एकीकृत सिद्धान्त है तो यह सम्भवतः हमारे कार्यों को सुनिश्चित करेगा। और इस प्रकार से सिद्धान्त हमारी खोज के परिणाम को स्वयं नियत करेगा! और यह ऐसा सुनिश्चित क्यों करे कि हम साक्ष्यों से सही निष्कर्षों पर ही जाएँ? क्या यह इसी प्रकार से यह सुनिश्चित नहीं कर सकता कि हम गलत निष्कर्ष निकालें या कोई भी निष्कर्ष नहीं निकाल पाएँ।

इस समस्या का एकमात्र उत्तर जो मैं दे सकता हूँ, वह डार्विन के प्राकृतिक चयन के सिद्धान्त पर आधारित है। विचार यह है कि स्वयं प्रजनन करनेवाले जीवों की किसी भी आबादी में, विभिन्न जीवों के पालन-पोषण और आनुवंशिक सामग्री में विभिन्नताएँ होंगी। इन विभिन्नताओं का अर्थ यह होगा कि अपने चारों ओर के संसार के बारे में सही निष्कर्ष निकालने के लिए तथा फिर उसी निष्कर्ष के अनुसार कार्य करने के लिए कुछ व्यक्ति दूसरों की अपेक्षा अधिक योग्य होते हैं। इन व्यक्तियों में जीवित रहने की तथा अपनी आबादी बढ़ाने की सम्भावना अपेक्षाकृत अधिक होगी और इसलिए उनके व्यवहार और विचार का तरीका अपना प्रभुत्व

रखेगा। अतीत में यह बात निश्चित रूप से सच रही है कि जिसे हम बौद्धिकता और वैज्ञानिक खोज कहते हैं, उसे उत्तरजीविता का लाभ रहा है। यह बहुत स्पष्ट नहीं है कि क्या अभी भी यही स्थिति है; हमारी वैज्ञानिक खोजें हम सभी को पूर्णतया नष्ट कर सकती हैं, और यदि वे नहीं भी करती हैं, तो भी पूर्ण एकीकृत सिद्धान्त हमारे भविष्य में जीवित रहने के अवसरों में कोई विशेष अन्तर नहीं डाल पाएगा। बहरहाल, यदि ब्रह्माण्ड एक नियमित ढंग से विकसित हुआ हो, तो हम शायद यह अपेक्षा कर सकते हैं कि जो विवेचन क्षमताएँ प्राकृतिक चयन ने हमें दी हैं, वे एक पूर्ण एकीकृत सिद्धान्त की हमारी खोज में भी युक्तिसंगत रहेंगी। और इसलिए हमें त्रुटिपूर्ण निष्कर्षों की ओर नहीं ले जाएँगी।

क्योंकि हमारे पास पहले से ही जो आंशिक सिद्धान्त हैं वे, किन्हीं चरम स्थितियों के सिवाय, सही पूर्वानुमान प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त हैं इसलिए ब्रह्माण्ड के किसी अन्तिम सिद्धान्त की खोज को व्यावहारिक स्तर पर न्यायसंगत ठहराना कठिन प्रतीत होता है। (फिर भी यह बात ध्यान देने योग्य है कि इसी प्रकार के तर्क आपेक्षिकता सिद्धान्त एवं क्वाण्टम यान्त्रिकी, दोनों के विरुद्ध प्रयोग किए जा सकते थे, और इन्हीं सिद्धान्तों ने हमें परमाणु ऊर्जा तथा माइक्रो इलेक्ट्रॉनिकी के क्षेत्र में क्रान्ति, दोनों ही दिए हैं!) अतः एक पूर्णतः एकीकृत सिद्धान्त की खोज हमारी प्रजातियों की उत्तरजीविता में सहायक नहीं हो सकती। यह हमारी जीवन-शैली को भी प्रभावित नहीं कर सकती। लेकिन सभ्यता के प्रारम्भ से ही लोग घटनाओं को असम्बद्ध और अबोधगम्य की भाँति देखने में सन्तुष्ट नहीं रहे हैं। विश्व की अन्तर्निहित व्यवस्था को समझने की सभी में एक उत्कट इच्छा रही है। आज भी हम यह जानने की प्रबल इच्छा रखते हैं कि हम यहाँ क्यों हैं और हम कहाँ से आए। ज्ञान के लिए मानव जाति की गहनतम जिज्ञासा ही हमारी अविरत खोज का पर्याप्त कारण है। और हमारा लक्ष्य, जिस ब्रह्माण्ड में हम रहते हैं, उसके पूर्ण वर्णन से कतई कम नहीं है।

अध्याय 2

दिक् एवं काल

पिण्डों की गति के बारे में हमारे वर्तमान विचार गैलीलियो और न्यूटन के समय से चले आ रहे हैं। उनसे पहले लोग अरस्तू के इस कथन में विश्वास करते थे कि किसी भी पिण्ड की प्राकृतिक अवस्था विरामावस्था होती है तथा यह केवल तभी गति करता है जब इस पर किसी बाह्य बल या आवेग (impulse) का प्रयोग किया जाता है। इसके पश्चात् यह धारणा बनी कि हल्के की अपेक्षा एक भारी पिण्ड को अधिक तेजी से गिरना चाहिए, क्योंकि पृथ्वी की ओर इसका आकर्षण या खिंचाव अपेक्षाकृत अधिक होगा।

अरस्तू की परम्परा इस धारणा का निर्वहन भी करती थी कि शुद्ध चिन्तन मात्र से ब्रह्माण्ड को नियन्त्रित करनेवाले सभी नियमों को समझा जा सकता है : इन्हें प्रेक्षणों द्वारा जाँचने की आवश्यकता नहीं है। इसलिए गैलीलियो तक किसी ने भी यह देखने की चिन्ता नहीं की कि भिन्न-भिन्न भारवाले पिण्ड क्या वास्तव में भिन्न-भिन्न गतियों से गिरते हैं। कहा जाता है कि पीसा की झुकी हुई मीनार से विभिन्न भार की वस्तुओं को गिराकर गैलीलियो ने यह प्रदर्शित किया था कि अरस्तू का विश्वास असत्य था। वह कहानी तो निश्चित रूप से असत्य है, परन्तु गैलीलियो ने कुछ-न-कुछ इसके समकक्ष अवश्य ही किया था : उसने एक चिकने ढाल पर विभिन्न भारवाले गोलों को नीचे लुढ़काया था। यह स्थिति भारी पिण्डों के ऊर्ध्वाधर नीचे गिरने के समान थी, परन्तु उनका प्रेक्षण करना अपेक्षाकृत आसान था क्योंकि उनकी गतियाँ अपेक्षाकृत मन्द होती थीं। गैलीलियो के मापनों ने यह स्पष्ट कर दिया कि प्रत्येक पिण्ड के वेग में समान गति से वृद्धि हुई, चाहे उसका भार कुछ भी हो। उदाहरण के लिए, यदि आप एक गेंद को एक ऐसे ढाल, जिसका झुकाव हर दस मीटर पर एक मीटर के हिसाब से हो, पर लुढ़काएँ तो गेंद उस ढाल पर एक सेकिण्ड बाद एक मीटर प्रति सेकिण्ड के वेग से, दो सेकिण्ड बाद दो मीटर प्रति सेकिण्ड के वेग से, और इसी प्रकार से आगे भी लुढ़केगी, चाहे गेंद कितनी ही भारी हो। निस्सन्देह सीसे का एक वजनी पिण्ड पक्षी के एक पंख की अपेक्षा अधिक तीव्र वेग से गिरेगा, परन्तु ऐसा केवल इसलिए होता है क्योंकि पंख का वेग वायु प्रतिरोध द्वारा धीमा कर दिया जाता है। यदि कोई ऐसे दो पिण्ड लुढ़काता है जिनमें वायु-प्रतिरोध अधिक न हो, जैसे सीसे के दो भिन्न वजनों वाले पिण्ड, तो वे समान दर से ही गिरते हैं। डेविड आर. स्कॉट नामक अंतरिक्ष यात्री ने चन्द्रमा, जहाँ वस्तुओं में गतिरोध उत्पन्न करने के लिए वायु ही मौजूद नहीं है, पर पंख तथा सीसे के वजनवाले प्रयोग को दोहराकर पाया कि दोनों धरती पर एक ही समय पर आकर गिरते हैं।

गैलीलियो के मापनों का प्रयोग न्यूटन द्वारा गति के अपने नियमों को आधार प्रदान करने के लिए किया गया था। गैलीलियो के परीक्षणों में, जैसे ही कोई पिण्ड ढाल पर लुढ़कता था, उस पर सदैव वही बल (उसका भार) कार्य करता था जिसका प्रभाव उसके वेग में सतत वृद्धि के रूप में देखने को मिलता था। इससे यह स्पष्ट हो गया कि किसी भी बल का वास्तविक प्रभाव सदैव किसी पिण्ड की गति में परिवर्तन करना होता है, बजाय उसे केवल गतिमान रखने के, जैसाकि पहले सोचा गया था। इसका अर्थ यह भी हुआ कि जब भी किसी पिण्ड पर बाह्य बल कार्य नहीं करता है तो वह एक सीधी रेखा में एक समान गति से चलता रहता है। सन् 1687 में प्रकाशित,

न्यूटन की **प्रिंसिपिया मैथेमैटिका** में यह विचार सबसे पहले स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया था और इसे न्यूटन के प्रथम नियम के रूप में जाना जाता है। जब किसी पिण्ड पर कोई बल कार्य करता है तो क्या होता है, यह न्यूटन के दूसरे नियम द्वारा स्पष्ट किया गया है। यह नियम स्पष्ट करता है कि किसी बल द्वारा किसी पिण्ड में उत्पन्न किया गया त्वरण बल के समानुपाती होता है। (उदाहरण के लिए, यदि बल दोगुना है तो त्वरण भी दोगुना होता है।) पिण्ड का द्रव्यमान (पदार्थ की मात्रा) जितना अधिक होगा, त्वरण उतना ही कम होगा। (दोगुने द्रव्यमानवाले पिण्ड पर लगनेवाला वही बल केवल आधा त्वरण ही उत्पन्न करेगा।) एक सुपरिचित उदाहरण कार का दिया जाता है : जितना अधिक शक्तिशाली इंजन, उतना ही अधिक त्वरण, परन्तु जितनी भारी कार, उसी इंजन के लिए उतना ही कम त्वरण। गति के अपने नियमों के अतिरिक्त, न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण बल की व्याख्या करने के लिए एक नियम खोजा, जो यह स्पष्ट करता है कि प्रत्येक पिण्ड प्रत्येक दूसरे पिण्ड को उस बल से आकर्षित करता है जो उनके द्रव्यमान के गुणनफल के समानुपाती होता है। इस प्रकार से दो पिण्डों के बीच में लगनेवाला बल दो गुना हो जाएगा यदि उन पिण्डों में से एक (मान लीजिए पिण्ड A) का द्रव्यमान दो गुना हो जाए। शायद आप यही अपेक्षा करेंगे क्योंकि कोई भी नए पिण्ड A को मूल द्रव्यमानवाले दो पिण्डों का बना हुआ सोच सकता है। हर एक पिण्ड B को मूल बल से ही आकर्षित करेगा। इस प्रकार से पिण्ड A एवं B के मध्य लगनेवाला सम्पूर्ण बल मूल बल का दो गुना हो जाएगा। और यदि उन पिण्डों में से एक का द्रव्यमान दो गुना हो जाए, तथा दूसरे का तीन गुना, तो उनके बीच का बल छः गुना अधिक प्रबल हो जाएगा। अब कोई भी समझ सकता है कि सारे पिण्ड एक-सी गति से ही क्यों गिरते हैं : दो गुने भारवाले पिण्ड पर लगनेवाला गुरुत्वाकर्षण बल दो गुना होगा, परन्तु इसमें द्रव्यमान भी दो गुना होगा। न्यूटन के दूसरे नियम के अनुसार, ये दोनों प्रभाव एक-दूसरे को पूरी तरह से निरस्त कर देंगे, इसीलिए सारी स्थितियों में त्वरण एक-सा ही होगा।

न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण का नियम हमें यह भी बताता है कि पिण्ड जितनी अधिक दूरी पर होंगे, बल उतना ही कम होगा। न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण का नियम कहता है कि एक तारे का गुरुत्वाकर्षण आधी दूरी पर स्थित उस जैसे ही दूसरे तारे का ठीक एक-चौथाई होता है। यह नियम पृथ्वी, चन्द्रमा व अन्य ग्रहों की कक्षाओं का पूर्वानुमान बड़ी सूक्ष्मता से प्रस्तुत करता है। यदि नियम यह होता कि एक तारे का गुरुत्वाकर्षण दूरी के साथ तेजी से क्षीण होता जाता है तो ग्रहों के कक्षा-पथ दीर्घवृत्ताकार नहीं होते, वे या तो उत्तरोत्तर घटते हुए सर्पिल गति से सूर्य के अन्दर की ओर जाते या फिर सूर्य के परिक्षेत्र से बाहर निकल जाते।

अरस्तू एवं गैलीलियो तथा न्यूटन के विचारों में एक बड़ा अन्तर यह है कि अरस्तू एक वांछनीय विरामावस्था में विश्वास करते थे जो एक सामान्य अनुभव है कि यदि कोई पिण्ड विराम अवस्था में है और उस पर किसी बल अथवा आवेग का प्रयोग न किया जाए तो वह विराम अवस्था में ही बना रहता है। उन्होंने, विशेष रूप से यह सोचा कि पृथ्वी विराम अवस्था में है। परन्तु न्यूटन के नियमों से यह निष्कर्ष निकलता है कि विराम अवस्था का कोई विशिष्ट मानक नहीं है। कोई इसी प्रकार से यह भी कह सकता था कि पिण्ड A विराम अवस्था में था तथा पिण्ड B पिण्ड A के सापेक्ष सतत वेग से गतिमान था या फिर पिण्ड B विराम अवस्था में था तथा पिण्ड A गतिमान था। उदाहरण के लिए, यदि एक क्षण के लिए पृथ्वी के घूर्णन तथा सूर्य के चारों ओर उसकी परिक्रमा की उपेक्षा कर दी जाए, तो कोई भी यह कह सकता है कि पृथ्वी विराम अवस्था में है और एक ट्रेन इस पर नब्बे मील प्रति घंटा की गति से उत्तर की ओर जा रही है या यह कह सकता है कि ट्रेन तो विराम अवस्था में है तथा पृथ्वी नब्बे मील प्रति घंटा की गति से दक्षिण की ओर जा रही है। यदि कोई चलती ट्रेन में गतिशील पिण्डों के साथ परीक्षण करे तो न्यूटन के सारे नियम तब भी सही ठहरेंगे। उदाहरण के लिए, ट्रेन में पिंग-पाँग खेलते हुए कोई भी यह पाएगा कि गेंद न्यूटन के नियमों का पालन रेल की पटरी के समीप रखी मेज की गेंद की तरह ही करती है। इसलिए यह बताने का कोई तरीका नहीं है कि ट्रेन गति कर रही है या पृथ्वी।

विराम अवस्था के निरपेक्ष मानक (absolute standard) के अभाव का यह अर्थ हुआ

कि कोई भी यह सुनिश्चित नहीं कर सकता कि भिन्न-भिन्न समयों पर होनेवाली दो घटनाएँ क्या आकाश (space) में एक-सी स्थिति में ही घटित हुई थीं। उदाहरण के लिए, मान लीजिए, ट्रेन में हमारी पिंग-पाँग गेंद सीधे ऊपर-नीचे उछाल खाती है और एक सेकिण्ड के अन्तराल से मेज के उसी स्थान पर दो बार टप्पा खाती है। पटरी पर खड़े होकर देख रहे व्यक्ति के लिए दोनों उछाल चालीस मीटर के अन्तर से घटित होते हुए प्रतीत होंगे, क्योंकि दोनों उछालों के बीच ट्रेन पटरी पर इतनी दूरी तय कर चुकी होगी। अतः परम विराम अवस्था की अस्तित्वहीनता का यह अर्थ हुआ कि कोई भी आकाश (space) में किसी घटना की निरपेक्ष स्थिति (absolute position) नहीं बता सकता था, जैसाकि अरस्तू विश्वास करते थे। घटनाओं की स्थितियाँ और उनके बीच की दूरियाँ पटरी पर खड़े व्यक्ति के लिए तथा ट्रेन पर सवार व्यक्ति के लिए भिन्न-भिन्न होंगी, और दूसरे व्यक्ति की स्थितियों की अपेक्षा पहले व्यक्ति की स्थितियों को अपेक्षाकृत अधिक वरीयता देने में कोई भी समझदारी नहीं होगी।

निरपेक्ष स्थिति अथवा निरपेक्ष आकाश, जैसाकि इसे कहा जाता था, के इस अभाव से न्यूटन बहुत चिन्तित थे, क्योंकि यह निरपेक्ष ईश्वर या परमब्रह्म (absolute God) के उनके विचार के अनुरूप नहीं था। वस्तुतः उन्होंने निरपेक्ष आकाश के अभाव को स्वीकार करने से इनकार कर दिया था। भले ही यह उनके नियमों में अन्तर्निहित था। इस विवेकहीन विश्वास के लिए कई लोगों, खासकर बिशप बर्कले नामक दार्शनिक, जो यह विश्वास करते थे कि समस्त भौतिक पदार्थ तथा दिक् और आकाश माया (illusion) मात्र हैं, द्वारा उनकी कटु आलोचना की गई। जब प्रसिद्ध विद्वान डॉ. जॉनसन को बर्कले की राय के बारे में बताया गया, तो उन्होंने एक बड़े पत्थर पर ठोकर मारी और जोर से चिल्लाए, "मैं इस धारणा का इस तरह से खण्डन करता हूँ!"

अरस्तू और न्यूटन दोनों निरपेक्ष काल (absolute time) में विश्वास करते थे। अर्थात् वे यह विश्वास करते थे कि दो घटनाओं के बीच के काल के अन्तराल को असन्दिग्ध रूप से मापा जा सकता है, और यह अनुमापित काल एक-सा ही होगा चाहे कोई भी इसका मापन करे, बशर्ते वे एक अच्छी घड़ी का प्रयोग करें। काल, दिक् से पूर्णतः मुक्त एवं पृथक् था। इस विचार को अधिकांश लोग सामान्य बुद्धि धारणा (common sense view) की तरह से लेंगे। बहरहाल, दिक् और काल के सम्बन्ध में हमें अपने विचारों में परिवर्तन करना पड़ा है। यद्यपि हमारी स्पष्टतः अत्यन्त साधारण धारणाएँ उस समय ठीक कार्य करती हैं, जब हम सेब या अपेक्षाकृत धीमी गति से चलनेवाले ग्रहों जैसी वस्तुओं को अपने निष्कर्षों के लिए प्रयोग में लाते हैं, परन्तु वे उन वस्तुओं के लिए बिलकुल भी कार्य नहीं करतीं जो प्रकाश के वेग या इसके लगभग बराबर के वेग से गतिमान होती हैं।

यह तथ्य कि प्रकाश एक सीमित, परन्तु बहुत तीव्र वेग से यात्रा करता है, सबसे पहले सन् 1676 में डेनमार्क के खगोलविद ओल क्राइस्टेनसेन रोमर द्वारा खोजा गया था। उन्होंने यह पाया कि बृहस्पति ग्रह के पीछे की ओर से गुजरते हुए बृहस्पति ग्रह के चन्द्रमाओं के समय-अन्तराल एक-समान नहीं थे, जैसाकि कोई भी अपेक्षा करता यदि बृहस्पति के चन्द्रमा उसके चारों ओर एक नियत गति से परिक्रमा करते। जैसाकि पृथ्वी एवं बृहस्पति ग्रह सूर्य के चारों ओर अपनी कक्षाओं में घूमते हैं, उनके बीच की दूरी परिवर्तित होती रहती है। रोमर ने यह पाया कि हम बृहस्पति ग्रह से जितना अधिक दूर होते हैं, बृहस्पति ग्रह के चन्द्रमाओं के ग्रहण अपेक्षाकृत उतनी ही अधिक देर से दिखाई पड़ते हैं। उनका तर्क था कि ऐसा इसीलिए होता है क्योंकि हम बृहस्पति से जितना अधिक दूर होते हैं, उसके चन्द्रमाओं से आनेवाला प्रकाश हम तक पहुँचने में उतना ही अधिक समय लेता है। बृहस्पति से पृथ्वी की दूरी में परिवर्तनों का उनका मापन, बहरहाल, बहुत सही नहीं था, और इसीलिए प्रकाश के वेग के लिए 1,86,000 मील प्रति सेकिण्ड के आधुनिक मान की तुलना में उनका मान 1,40,000 मील प्रति सेकिण्ड था। तथापि, न केवल यह सिद्ध करने में कि प्रकाश एक सीमित वेग से यात्रा करता है, बल्कि उस वेग का मापन करने में भी, रोमर की उपलब्धियाँ विलक्षण थीं, तथा वे न्यूटन की 'प्रिंसिपिया मैथेमैटिका' के प्रकाशन से

ग्यारह वर्ष पूर्व ही प्राप्त हो गई थीं।

प्रकाश संचरण का एक उचित सिद्धान्त सन् 1865 तक अस्तित्व में नहीं आया था। उसी समय एक ब्रिटिश भौतिक विज्ञानी जेम्स क्लार्क मैक्सवैल विद्युत और चुम्बकीय बलों की व्याख्या करने के लिए उस समय तक प्रयुक्त आंशिक सिद्धान्तों को एकीकृत करने में सफल हो गए। मैक्सवैल के समीकरणों ने यह पूर्वानुमान प्रस्तुत किया कि संयुक्त विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र में तरंग सदृश विक्षोभ उत्पन्न हो सकता है, और यह एक निश्चित वेग से पोखर की ऊर्मिकाओं (ripples) की तरह यात्रा करेगा। यदि इन तरंगों का तरंग-दैर्घ्य (दो क्रमिक शीर्षों के बीच की दूरी) एक मीटर या उससे अधिक होता है तो वे रेडियो तरंगें कहलाती हैं। इनसे छोटी तरंग दैर्घ्य (कुछ सेंटीमीटर) वाली तरंगें सूक्ष्म तरंगों अथवा अवरक्त तरंगों (तरंग-दैर्घ्य एक सेंटीमीटर के दस हजारवें भाग से अधिक) के रूप में जानी जाती हैं। दृश्य प्रकाश का तरंग-दैर्घ्य केवल एक सेंटीमीटर के चार करोड़वें भाग से लेकर आठ करोड़वें भाग के बीच होता है। इनसे भी कम तरंग-दैर्घ्योंवाली तरंगों को पराबैंगनी किरणें, एक्स किरणें और गामा किरणें कहते हैं।

मैक्सवैल के सिद्धान्त ने यह पूर्वानुमान प्रस्तुत किया कि रेडियो अथवा प्रकाश तरंगों को एक सुनिश्चित वेग से यात्रा करनी चाहिए। परन्तु न्यूटन का सिद्धान्त परम विराम अवस्था के विचार से मुक्ति पा चुका था, इसलिए यदि प्रकाश एक निश्चित गति से यात्रा करे तो कोई यह कहेगा कि उस निश्चित वेग का मापन किस वस्तु के सापेक्ष किया गया। इसलिए यह सुझाया गया कि 'ईथर' नाम का एक पदार्थ होता है जो रिक्त आकाश में भी हर जगह मौजूद है। प्रकाश तरंगें ईथर के माध्यम से आगे बढ़नी चाहिए जैसाकि ध्वनि तरंगें वायु के माध्यम से यात्रा करती हैं, और उनका वेग ईथर के सापेक्ष होना चाहिए। ईथर के सापेक्ष गति करते हुए विभिन्न प्रेक्षक प्रकाश को अपनी ओर विभिन्न वेगों पर आते हुए देखेंगे, परन्तु ईथर के सापेक्ष प्रकाश का वेग निश्चित रहेगा। विशेष रूप से, जैसाकि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर अपनी कक्षा में ईथर से होकर परिक्रमा कर रही है, ईथर से गुजरती हुई पृथ्वी की गति की दिशा में अनुमापित प्रकाश का वेग (जब हम प्रकाश के स्रोत की ओर बढ़ रहे हों), गति की लम्बवत् दिशा में प्रकाश के वेग (जब हम प्रकाश के स्रोत की ओर नहीं बढ़ रहे हों) की अपेक्षा अधिक होना चाहिए। सन् 1887 में अल्बर्ट माइकेल्सन (जो बाद में भौतिक विज्ञान के लिए नोबेल पुरस्कार प्राप्त करनेवाले प्रथम अमरीकी बने) तथा एडवर्ड मोरले ने क्लीवलैण्ड में केस स्कूल ऑफ एप्लाइड साइंस में अति सावधानीपूर्वक एक प्रयोग किया। उन्होंने पृथ्वी की गति की लम्बवत् दिशा में प्रकाश के वेग की तुलना पृथ्वी की गति की दिशा में प्रकाश के वेग से की। उनके आश्चर्य का उस समय ठिकाना नहीं रहा, जब उन्होंने पाया कि दोनों स्थितियों में प्रकाश का वेग समान था।

सन् 1887 और 1905 के मध्य, सर्वाधिक उल्लेखनीय रूप से हालैण्ड के भौतिकी विज्ञानी हैंडरिक लोरेंज द्वारा ईथर से होकर गुजरते समय घड़ियों के धीमा पड़ने और वस्तुओं के संकुचन करने के सम्बन्ध में माइकेल्सन-मोरले के परीक्षण के परिणाम की व्याख्या करने के कई सारे प्रयत्न हुए। बहरहाल, सन् 1905 में एक प्रसिद्ध लेख में स्विटजरलैण्ड के पेटेंट कार्यालय में उस समय तक अज्ञात एक लिपिक अल्बर्ट आइंस्टाइन ने यह बताया कि ईथर का सम्पूर्ण विचार ही अनावश्यक है, बशर्ते निरपेक्ष काल (absolute time) के विचार को कोई त्यागने का इच्छुक हो। एक मिलता-जुलता तर्क कुछ सप्ताह उपरान्त एक अग्रणी फ्रांसीसी गणितज्ञ हेनरी पॉइनकेअर द्वारा प्रस्तुत किया गया। पॉइनकेअर के तर्कों की अपेक्षा आइंस्टाइन के तर्क भौतिक विज्ञान के अधिक नजदीक थे। पॉइनकेअर इस समस्या को गणित से सम्बन्धित मानते थे। सामान्यतः आइंस्टाइन को इस नए सिद्धान्त का श्रेय दिया जाता है, परन्तु उसके एक महत्त्वपूर्ण अंश से अपना नाम सम्बद्ध रखने के लिए पॉइनकेअर को याद किया जाता है।

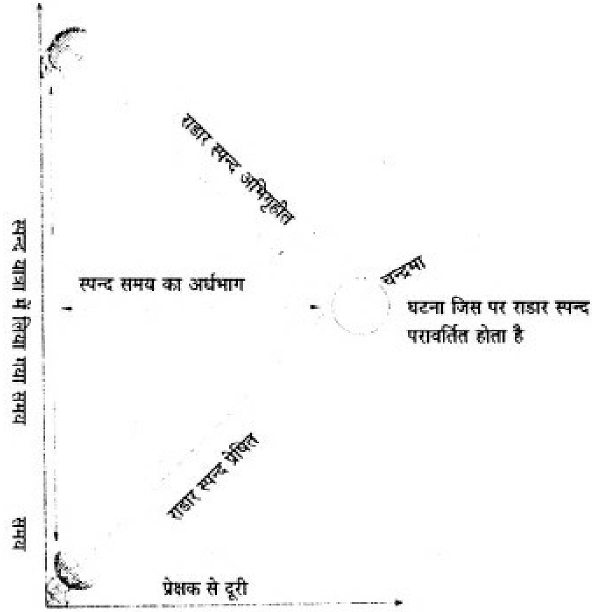
आपेक्षिकता के सिद्धान्त, जैसाकि इसे कहा जाता था, का आधारभूत तत्त्व यह था कि सभी स्वतंत्र रूप से गतिमान प्रेक्षकों के लिए, इस बात का कोई महत्त्व नहीं कि उनका वेग क्या है, विज्ञान के नियम एक-से होने चाहिए। न्यूटन के गति के नियमों के लिए यह बात सही थी, परन्तु अब मैक्सवैल के सिद्धान्त व प्रकाश के वेग को सम्मिलित करने के लिए इस विचार को

विस्तृत किया गया : सभी प्रेक्षकों को प्रकाश का वेग एक-सा मापना चाहिए, इस बात का कोई महत्त्व नहीं कि वे कितनी तेज चल रहे हैं। यह सहज विचार अपने में कुछ विलक्षण परिणाम समाहित रखता है। शायद सबसे प्रसिद्ध द्रव्यमान और ऊर्जा की तुल्यता है जिसे आइंस्टाइन के इस प्रसिद्ध समीकरण में सारांश रूप में व्यक्त किया गया कि $E=mc^2$ (यहाँ E ऊर्जा है, m द्रव्यमान है तथा c प्रकाश वेग है) तथा यह नियम है कि प्रकाश के वेग से अधिक तेज कुछ नहीं चल सकता। ऊर्जा एवं द्रव्यमान की तुल्यता के कारण, किसी गतिशील वस्तु की ऊर्जा उसके द्रव्यमान को बढ़ा देगी। दूसरे शब्दों में यह उसके वेग में वृद्धि को और कठिन कर देगी। यह प्रभाव वस्तुतः मात्र प्रकाश के वेग के आसपास किसी वेग पर गतिशील वस्तुओं के लिए ही बहुत महत्त्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए, प्रकाश के वेग के दस प्रतिशत पर किसी वस्तु का द्रव्यमान उसके सामान्य द्रव्यमान से केवल 0.5 प्रतिशत ही अधिक होता है, जबकि प्रकाश के वेग के 90 प्रतिशत पर यह उसके सामान्य द्रव्यमान के दो गुने से भी अधिक होगा। ज्यों-ज्यों कोई वस्तु प्रकाश के वेग के समीप पहुँचती जाती है, उसका द्रव्यमान और अधिक तीव्रता से बढ़ता जाता है, अतः अपने वेग को और अधिक बढ़ाने के लिए यह और अधिकाधिक ऊर्जा लेता है। वास्तव में यह प्रकाश के वेग तक कभी नहीं पहुँच सकता, क्योंकि तब तक इसका द्रव्यमान अनंत हो जाएगा तथा द्रव्यमान तथा ऊर्जा की तुल्यता के द्वारा वहाँ पहुँचने के लिए यह अनंत ऊर्जा ले चुका होगा। इसी कारणवश, प्रकाश वेग की अपेक्षा धीमे वेग पर चलने के लिए कोई भी सामान्य वस्तु आपेक्षिकता द्वारा सदैव परिसीमित रहती है। केवल प्रकाश अथवा दूसरी तरंगें जिनका कोई स्वाभाविक द्रव्यमान नहीं होता, प्रकाश के वेग से चल सकती हैं।

जिस प्रकार आपेक्षिकता ने दिक् और काल के सम्बन्ध में हमारे विचारों में आमूल परिवर्तन किया है वह इसका एक उल्लेखनीय परिणाम है। न्यूटन के सिद्धान्त में, यदि प्रकाश का एक स्पन्द एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजा जाता है तो विभिन्न प्रेक्षक इस यात्रा में लगनेवाले समय पर तो सहमत होंगे (क्योंकि काल निरपेक्ष है) परन्तु वे इस निष्कर्ष पर सदैव सहमत नहीं होंगे कि प्रकाश कितनी दूर तक गया। (क्योंकि दिक् निरपेक्ष नहीं है)। चूँकि प्रकाश का वेग इसके द्वारा तय की गई दूरी को लिए गए समय से भाग देने पर प्राप्त होता है, विभिन्न प्रेक्षक प्रकाश के लिए विभिन्न वेगों का मापन करेंगे। आपेक्षिकता में, दूसरी ओर सभी प्रेक्षक इस बात पर सदैव सहमत होंगे कि प्रकाश कितना तेज चलता है। हालाँकि वे अभी भी प्रकाश द्वारा तय दूरी पर सहमति नहीं जताते हैं, अतः उन्हें इसके द्वारा लिए गए समय पर भी अब इसीलिए असहमत होना चाहिए। (लिया गया समय ही वह दूरी है जो प्रकाश द्वारा तय की गई है—जिस पर प्रेक्षक सहमत नहीं होते—प्रकाश के वेग से भाग देने पर—वे इस पर सहमत हो जाते हैं।) दूसरे शब्दों में, आपेक्षिकता के सिद्धान्त ने निरपेक्ष काल (absolute time) के विचार को समाप्त कर दिया! ऐसा लगा कि प्रत्येक प्रेक्षक द्वारा अपने साथ लाई गई घड़ी द्वारा अंकित समय ही उसका अपना माप होना चाहिए और विभिन्न प्रेक्षकों द्वारा लाई गई एक समान घड़ियाँ अनिवार्यतः आपस में मेल नहीं खाएँगी।

हर प्रेक्षक प्रकाश या रेडियो तरंगों का स्पन्द भेजकर राडार द्वारा यह पता लगा सकता है कि अमुक घटना कब और कहाँ घटित हुई। स्पन्द के कुछ हिस्से का परावर्तन उस घटना पर हो जाता है और प्रेक्षक उस समय का मापन कर लेता है जिस पर वह प्रतिध्वनि को ग्रहण करता है। स्पन्द के प्रेषित किए जाने के समय तथा परावर्तित स्पन्द को वापस ग्रहण करने के समय के मध्य का समयान्तराल का अर्धभाग ही घटना का काल कहलाता है : घटना की दूरी इस पूरी स्पन्द यात्रा में लिए गए समय का आधा तथा प्रकाश के वेग का गुणनफल होती है। (इस अर्थ में, एक घटना कुछ ऐसा संयोग है जो आकाश में किसी एक बिन्दु पर एक विशिष्ट समय पर होती है।) यह विचार चित्र 2.1 में दिखाया गया है, जो दिक्-काल आरेख का एक उदाहरण है। इस प्रक्रिया का प्रयोग करते हुए, वे प्रेक्षक जो एक-दूसरे के सापेक्ष गतिमान हैं, एक ही घटना के लिए भिन्न-भिन्न काल एवं स्थितियों का उल्लेख करेंगे, किसी भी विशिष्ट प्रेक्षक के माप किसी दूसरे प्रेक्षक के मापों की अपेक्षा अधिक सही नहीं होते हैं, परन्तु सभी माप सम्बन्धित हैं। कोई भी प्रेक्षक

परिशुद्धता से यह पता लगा सकता है कि कोई दूसरा प्रेक्षक किसी घटना के लिए किस काल एवं स्थिति का उल्लेख करेगा, बशर्ते वह दूसरे प्रेक्षक का सापेक्ष वेग जानता हो।



चित्र 2.1 : समय का मापन ऊर्ध्वाधर रूप में किया गया है तथा प्रेक्षक से दूरी क्षैतिज रूप में मापित की गई है। दिक्-काल में प्रेक्षक का मार्ग बाईं ओर ऊर्ध्वाधर रेखा से प्रदर्शित किया गया है। घटना की ओर जाता तथा वहाँ से लौटता प्रकाश-पथ विकर्ण रेखा के रूप में है।

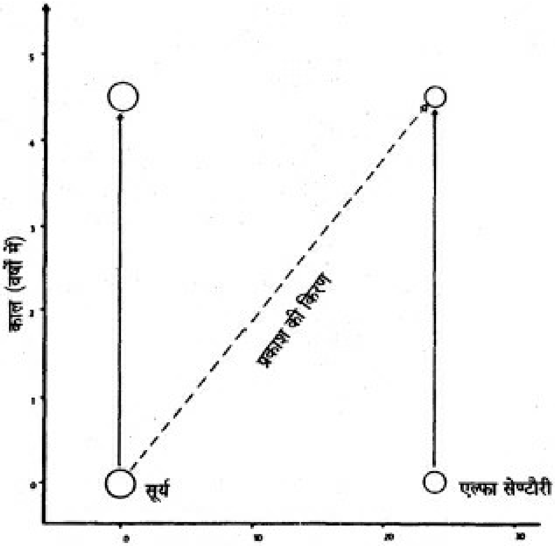
आजकल दूरियों का बिल्कुल सही मापन करने के लिए हम ठीक यही तरीका प्रयोग में लाते हैं, क्योंकि हम लम्बाई की अपेक्षा काल को अधिक सही ढंग से माप सकते हैं। वस्तुतः मीटर को 0.000000003335640952 सेकिण्ड में प्रकाश द्वारा तय दूरी के रूप में परिभाषित किया जाता है जैसाकि सीज़ियम घड़ी के द्वारा मापा गया है। (इस विशिष्ट संख्या का कारण यह है कि यह मीटर की ऐतिहासिक परिभाषा से मेल खाती है—जिसे पेरिस में रखी हुई एक खास प्लेटिनम की छड़ पर दो चिह्नों द्वारा दर्शाया गया है।) इस प्रकार से, हम एक और सुविधाजनक, लम्बाई की नई इकाई एक प्रकाश-सेकिण्ड का प्रयोग कर सकते हैं। इसकी साधारण-सी परिभाषा उस दूरी के रूप में की जाती है जिसे प्रकाश एक सेकिण्ड में तय करता है। आपेक्षिकता के सिद्धान्त में, हम अब दूरी की परिभाषा काल तथा प्रकाश के वेग के सम्बन्ध में करते हैं, अतः इसका एक स्वाभाविक निष्कर्ष यह निकलता है कि प्रत्येक प्रेक्षक प्रकाश के वेग का एक-सा मापन करेगा (परिभाषा के द्वारा, 1 मीटर प्रति 0.000000003335640952 सेकिण्ड)। ईथर, जिसकी उपस्थिति का पता नहीं लगाया जा सकता जैसाकि माइकेल्सन-मोरले प्रयोग दर्शाता है, की अवधारणा को शुरू करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। हालाँकि, आपेक्षिकता का सिद्धान्त दिक् और काल के बारे में हमारे विचारों को आधारभूत रूप से परिवर्तित करने के लिए हमें विवश कर देता है। हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि काल दिक् से पूर्णतः पृथक् एवं स्वतन्त्र इकाई नहीं है, अपितु दोनों मिलकर संयुक्त रूप से दिक्-काल (space-time) बनाते हैं।

यह एक सामान्य अनुभव की बात है कि आकाश में किसी बिन्दु की स्थिति तीन संख्याओं या निर्देशांकों से वर्णित की जा सकती है। उदाहरण के लिए, कोई कह सकता है कि एक कमरे में एक बिन्दु एक दीवार से सात फीट दूर है, दूसरी दीवार से तीन फीट दूर और फर्श से पाँच फीट ऊपर है। या फिर कोई स्पष्ट रूप से यह निर्दिष्ट कर सकता है कि अमुक बिन्दु एक निश्चित अक्षांश

और देशान्तर पर तथा समुद्र तल से एक निश्चित ऊँचाई पर है। किन्हीं भी तीन उपयुक्त निर्देशांकों को प्रयोग करने की स्वतन्त्रता है, हालाँकि उनकी मान्यता का दायरा बहुत ही सीमित है। कोई भी चन्द्रमा की स्थिति को इस रूप में निर्दिष्ट नहीं करेगा कि यह पिक्काडिली सर्कस से इतने मील उत्तर, इतने मील दक्षिण तथा समुद्र तल से इतने फीट ऊपर है। इसके स्थान पर, वह इसका वर्णन सूर्य से इसकी दूरी के रूप में करेगा या ग्रहों के कक्षीय समतलों से इसकी दूरी के रूप में करेगा तथा चन्द्रमा से सूर्य को जोड़नेवाली रेखा तथा सूर्य से किसी पड़ोसी तारे, जैसे एल्फा सेण्टौरी को, जोड़नेवाली रेखा के बीच के कोण के रूप में करेगा। अपनी आकाशगंगा में सूर्य की स्थिति को स्पष्ट करने के लिए या गैलेक्सियों के स्थानीय समूह में अपनी गैलेक्सी (आकाशगंगा) की स्थिति स्पष्ट करने के लिए ये निर्देशांक भी अधिक उपयोगी नहीं होंगे। वस्तुतः सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का वर्णन एक-दूसरे को ढँकनेवाले मन्दाकिनियों के धब्बों के समूह के रूप में किया जा सकता है। प्रत्येक धब्बे में, किसी बिन्दु की स्थिति को स्पष्ट रूप से बताने के लिए तीन निर्देशांकों के किसी भिन्न समुच्चय को प्रयोग में लाया जा सकता है।

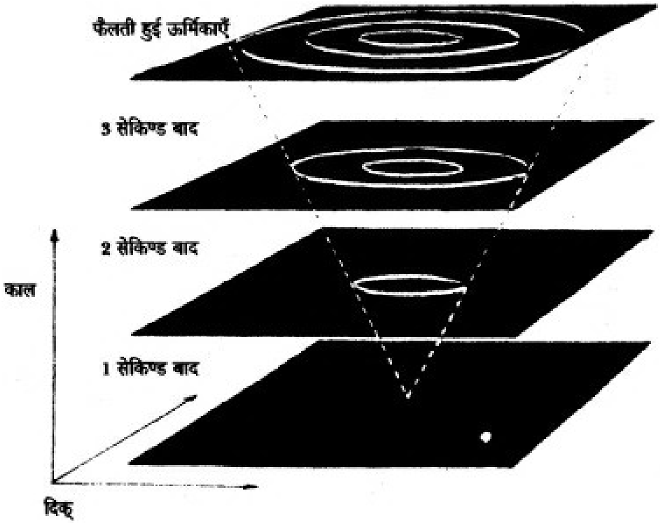
कोई भी घटना एक संयोग है जो आकाश में किसी विशेष बिन्दु पर और किसी विशेष काल पर घटित होती है। अतः चार संख्याओं अथवा निर्देशांकों से कोई भी इसकी स्थिति को सुनिश्चित कर सकता है। पुनः निर्देशांकों का चयन भी नियमबद्ध नहीं है। कोई भी किन्हीं तीन सुनिश्चित स्थान निर्देशांकों तथा काल के किसी भी माप का प्रयोग कर सकता है। आपेक्षिकता में, दिक् और काल के निर्देशांकों में कोई वास्तविक अन्तर नहीं है, ठीक वैसे ही जैसे किन्हीं दो दिक्-निर्देशांकों (space coordinates) में कोई वास्तविक अन्तर नहीं है। कोई भी निर्देशांकों का एक नया समुच्चय चुन सकता था, जिसमें, यूँ कहिए, पहला दिक्-निर्देशांक पुरानेवाले पहले एवं दूसरे दिक्-निर्देशांकों का संयोजन था। उदाहरण के लिए पृथ्वी पर किसी बिन्दु की स्थिति को पिक्काडिली के इतने मील उत्तर में तथा पिक्काडिली के इतने मील पश्चिम में मापने के स्थान पर, कोई पिक्काडिली के इतने मील उत्तर-पूर्व व पिक्काडिली के इतने मील उत्तर-पश्चिम का प्रयोग कर सकता था। इसी प्रकार से, आपेक्षिकता में एक नए काल निर्देशांक का प्रयोग किया जा सकता था जो पिक्काडिली के उत्तर में पुराने समय (सेकिण्ड में) तथा दूरी (प्रकाश सेकिण्ड में) का योग था।

एक चार विमाओंवाले दिक्-काल में स्थिति को स्पष्ट रूप से बताने के लिए किसी भी घटना के चार निर्देशांकों के बारे में सोचना प्रायः सहायक होता है। चार विमाओंवाले दिक् की कल्पना करना असम्भव है। मैं तो तीन विमाओंवाले दिक् को ही कल्पना में देखना व्यक्तिगत रूप से काफी मुश्किल पाता हूँ। तथापि, दो विमाओंवाले दिक् का आरेख खींचना आसान है जैसे पृथ्वी का पृष्ठ तल। (पृथ्वी का पृष्ठ तल दो विमाओंवाला है क्योंकि किसी भी बिन्दु की स्थिति अक्षांश और देशान्तर, दो निर्देशांकों के द्वारा स्पष्ट की जा सकती है।) मैं सामान्यतः वे आरेख प्रयोग करूँगा, जिनमें काल ऊपर की ओर बढ़ता जाता है और आकाशीय विमाओं में से एक को क्षैतिज रूप में प्रदर्शित किया गया है। दूसरी दो आकाशीय विमाएँ या तो नजरअन्दाज कर दी जाती हैं या कभी-कभी उनमें से एक को सन्दर्श परिप्रेक्ष्य (पर्सपैक्टिव) द्वारा इंगित किया जाता है। (चित्र 2.1 के समान इन्हें दिक्-काल आरेख कहा जाता है।) उदाहरण के लिए, चित्र 2.2 में काल का मापन ऊपर की ओर वर्षों में किया गया है और सूर्य से एल्फा सेण्टौरी की दूरी का मापन क्षैतिज रूप में मीलों में किया गया है। दिक्-काल में सूर्य और एल्फा सेण्टौरी के मार्ग, आरेख के दाईं एवं बाईं ओर, ऊर्ध्वाधर रेखाओं से प्रदर्शित किए गए हैं। सूर्य से प्रकाश की किरण विकर्ण रेखा का अनुसरण करती है तथा सूर्य से एल्फा सेण्टौरी तक पहुँचने में चार वर्ष का समय लेती है।



चित्र 2.2 : सूर्य से दूरी (1,000,000,000,000 मीलों में)

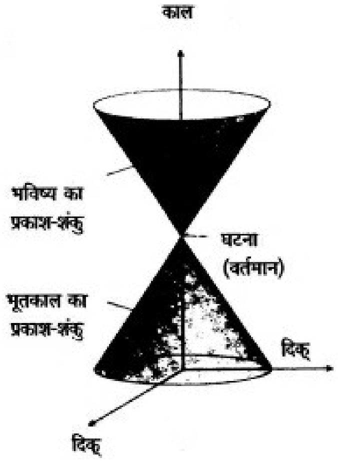
जैसाकि हम देख चुके हैं, मैक्सवैल के समीकरणों ने यह पूर्वानुमान लगाया था कि स्रोत का वेग चाहे कुछ भी हो, प्रकाश का वेग एक-सा ही रहना चाहिए और इस तथ्य की पुष्टि परिशुद्ध मापन द्वारा हो चुकी है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि दिक् में किसी एक विशेष बिन्दु से किसी एक विशेष समय पर यदि प्रकाश के स्पन्द का उत्सर्जन किया जाता है, तो ज्यों-ज्यों समय बीतता जाएगा यह प्रकाश के ऐसे गोले (sphere) के रूप में फैलता जाएगा जिसका आकार एवं स्थिति प्रकाश के स्रोत के वेग से मुक्त होंगे। एक सेकिण्ड के दस लाखवें भाग के पश्चात् प्रकाश एक तीन सौ मीटर की त्रिज्यावाले गोले का निर्माण करने के लिए फैल चुका होगा; एक सेकिण्ड के बीस लाखवें हिस्से के बाद यह त्रिज्या 600 मीटर हो जाएगी; और यह क्रम इसी प्रकार से जारी रहेगा। पोखर में पत्थर का टुकड़ा फेंकने पर बाहर की ओर फैलती हुई ऊर्मिकाओं (ripples) की भाँति ही यह होगा। ऊमिकाएँ बनती हैं और वृत्तों की तरह फैलती हैं तथा ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है, वह और बड़ी होती जाती हैं। यदि कोई विभिन्न समयों पर खींचे गए ऊर्मिकाओं के आशुचित्रों को एक के ऊपर एक बिठाता है, तो बाहर की ओर फैलती हुई ऊर्मिकाओं का वृत्त एक शंकु का निर्माण करता है जिसका शीर्ष उस स्थान व समय पर होगा, जहाँ पानी पर पत्थर फेंका गया था (चित्र 2.3)। इसी प्रकार किसी घटना से फैलनेवाला प्रकाश (चार विमाओंवाले) दिक्-काल में एक (तीन विमाओंवाला) शंकु बना लेता है। यह शंकु उस घटना का भविष्य का प्रकाश शंकु कहलाता है। ठीक इसी प्रकार से हम एक दूसरा शंकु खींच सकते हैं जिसे अतीत का प्रकाश शंकु कहा जाता है और जो उन घटनाओं का समुच्चय है जिनमें से प्रकाश का स्पन्द दी हुई घटना तक पहुँचने में समर्थ है। (चित्र 2.4)।



चित्र 2.3 : पत्थर जल की सतह से टकराता है

यदि एक घटना P दी हुई है, तो ब्रह्मांड में दूसरी घटनाओं को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है। जिन घटनाओं तक घटना P से प्रकाश के वेग अथवा उससे कम वेग पर यात्रा कर रहे किसी कण या तरंग के द्वारा पहुँचा जा सकता है वे घटना P के भविष्य में स्थित कही जाती हैं। वे घटना P से उत्सर्जित प्रकाश के विस्तृत होते हुए क्षेत्र पर या उसके अन्दर निहित होंगी। अतः दिक्-काल आरेख में वे P के भविष्य के प्रकाश शंकु पर अथवा उसके अन्दर स्थित होंगी। जो कुछ भी P पर घटित होता है, उससे केवल P के भविष्य में स्थित घटनाएँ ही प्रभावित हो सकती हैं क्योंकि कोई भी वस्तु प्रकाश से तेज नहीं चल सकती।

इसी प्रकार से P के भूतकाल को उन समस्त घटनाओं के समुच्चय के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिनसे प्रकाश के वेग अथवा उससे कम वेग पर यात्रा करते हुए घटना P तक पहुँचना सम्भव है। अतः यह घटनाओं का वह समुच्चय है जो P की घटनाओं को प्रभावित कर सकता है। जो घटनाएँ P के भूतकाल अथवा भविष्यकाल में स्थित नहीं होती हैं, उन्हें P के अन्यत्र क्षेत्र में स्थित कहा जाता है (चित्र 2.5)। ऐसी घटनाओं पर जो कुछ भी घटित होता है वह P पर घटित होनेवाली किसी घटना को न तो प्रभावित कर सकती है और न ही उससे प्रभावित हो सकती है। उदाहरण के लिए, यदि सूर्य इसी क्षण चमकना बन्द कर दे, तो पृथ्वी पर हालात तुरन्त उसी समय प्रभावित नहीं होंगे क्योंकि जिस समय सूर्य बन्द हुआ, वे घटना के अन्यत्र क्षेत्र में होंगे (चित्र 2.6)। हमें इसके बारे में केवल आठ मिनट बाद ही पता चलेगा, यह वह समय है जो प्रकाश को सूर्य से हम तक पहुँचने में लगता है। केवल तब ही पृथ्वी की घटनाएँ उस घटना के भविष्यकाल के प्रकाश शंकु में होंगी, जिस पर सूर्य चमकना बन्द हुआ। इसी प्रकार से हम यह नहीं जानते कि सुदूर ब्रह्माण्ड में इस क्षण क्या घटित हो रहा है : दूरस्थ मन्दाकिनियों से उत्सर्जित जिस प्रकाश को हम देखते हैं वह उनसे करोड़ों वर्ष पहले चला था, और सबसे दूर की उस वस्तु के मामले में जिसे हमने देख लिया है, प्रकाश उससे लगभग आठ अरब वर्ष पहले चला था। इस तरह से जब हम ब्रह्माण्ड की ओर देखते हैं, तो हम उसे वैसा देख रहे होते हैं जैसाकि वह भूतकाल में था।



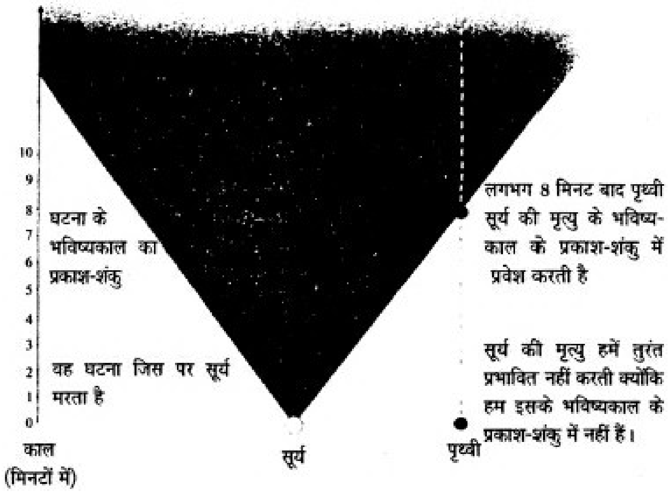
चित्र 2.4



चित्र 2.5

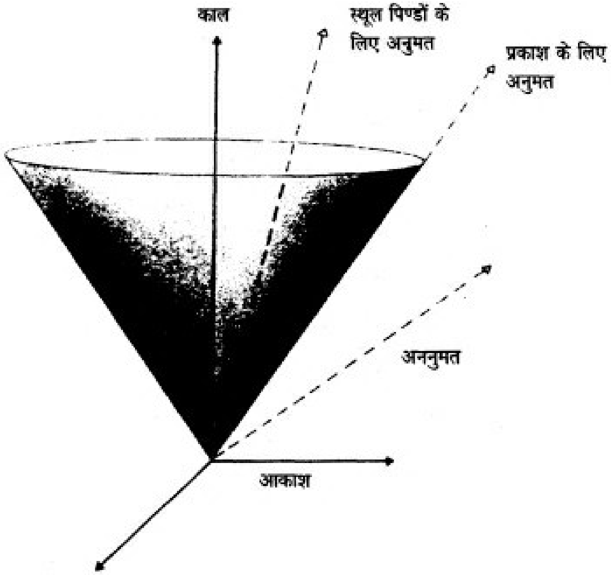
यदि कोई गुरुत्वीय प्रभावों की उपेक्षा कर देता है जैसाकि आइंस्टाइन और पॉइनकेअर ने 1905 में किया था, तो उसे आपेक्षिकता का विशिष्ट सिद्धान्त प्राप्त हो जाता है। दिक्-काल में प्रत्येक घटना के लिए हम एक प्रकाश शंकु बना सकते हैं। (दिक्-काल में उस घटना के समय उत्सर्जित प्रकाश के सभी सम्भावित मार्गों का समुच्चय) और चूँकि प्रकाश का वेग प्रत्येक दिशा में और प्रत्येक घटना पर एक-सा रहता है इसीलिए सभी प्रकाश शंकु एक-रूप होंगे तथा सभी उसी दिशा की ओर इंगित करेंगे। यह सिद्धान्त हमें यह भी बताता है कि प्रकाश के वेग से तेज कुछ नहीं चल सकता। इसका अर्थ यह हुआ कि दिक् और काल में किसी भी वस्तु का मार्ग एक ऐसी रेखा से निर्दिष्ट करना चाहिए जो इस पर घटित होनेवाली प्रत्येक घटना के प्रकाश शंकु के अन्दर हो (चित्र 2.7)। आपेक्षिकता का विशिष्ट सिद्धान्त यह स्पष्ट करने में बहुत सफल हुआ कि प्रकाश का वेग सभी प्रेक्षकों को एक-सा ही दिखाई देता है (जैसा कि माइकेल्सन-मोरले के परीक्षण से पता लगा) तथा यह बताने में भी बहुत कामयाब रहा कि उस समय क्या होता है जब वस्तुएँ प्रकाश के वेग के आसपास के वेग से चलती हैं। हालाँकि यह बात न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त के साथ मेल नहीं खाती जो यह कहता है कि वस्तुएँ एक-दूसरे को उस बल से आकर्षित करती हैं जो उनके बीच की दूरी पर निर्भर करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि कोई किसी एक पिण्ड का स्थान बदल दे तो दूसरे पिण्ड पर लगनेवाला बल तत्क्षण परिवर्तित हो जाएगा। या दूसरे शब्दों में, गुरुत्वीय प्रभाव असीमित वेग से चलने चाहिए, बजाय प्रकाश के वेग के समकक्ष या उससे कम वेग पर चलने के, जैसाकि आपेक्षिकता के विशिष्ट सिद्धान्त के लिए

आवश्यक था। आइंस्टाइन ने ऐसे गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त को खोजने के लिए जो विशिष्ट आपेक्षिकता से मेल खाता हो, 1908 से 1914 के बीच कई सारे असफल प्रयास किए। अन्ततः सन् 1915 में उन्होंने वह सिद्धान्त प्रस्तावित किया जिसे हम आज सामान्य आपेक्षिकता का सिद्धान्त कहते हैं।



चित्र 2.6

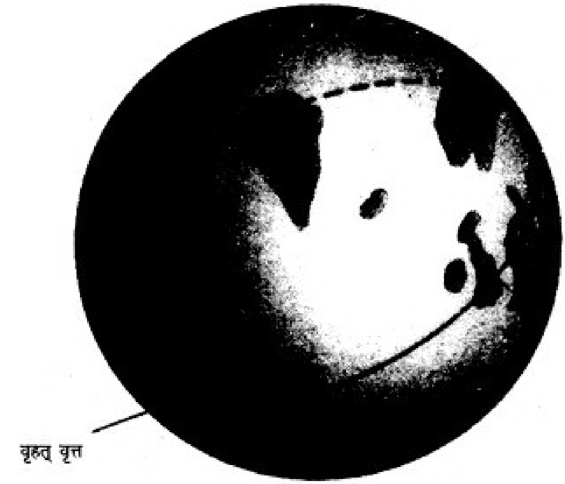
आइंस्टाइन ने यह क्रान्तिकारी सुझाव दिया कि गुरुत्व दूसरे बलों के समान कोई बल नहीं है, बल्कि यह इस तथ्य का परिणाम है कि दिक्-काल सपाट (flat) नहीं है जैसाकि पहले मान लिया गया था : इसके अनुसार पदार्थ एवं उसमें निहित ऊर्जा की उपस्थिति में दिक्-काल की ज्यामिति वक्र या विकृत हो जाती है। पृथ्वी जैसे पिण्ड गुरुत्वाकर्षण शक्ति द्वारा वक्र कक्षाओं पर चलने के लिए नहीं बने हैं, इसके स्थान पर, वे एक वक्र आकाश में जिसे ज्यॉडेसिक (geodesic) कहा जाता है, एक सीधे मार्ग के किसी निकटतम पथ का अनुसरण करते हैं। ज्यॉडेसिक किसी वक्र सतह पर दो बिन्दुओं को जोड़नेवाली सबसे छोटी (या सबसे बड़ी) रेखा होती है। उदाहरण के लिए, पृथ्वी की सतह एक दो विमाओंवाला वक्र आकाश है। पृथ्वी पर एक ज्यॉडेसिक एक बड़ा वृत्त कहलाता है और यह दो बिन्दुओं के मध्य सबसे छोटा मार्ग होता है (चित्र 2.8)। क्योंकि ज्यॉडेसिक किन्हीं दो हवाई अड्डों के बीच सबसे छोटा मार्ग होता है, इसी मार्ग पर कोई वायुसेवा का मार्ग निर्देशक (airline navigator) पायलट से उड़ने के लिए कहेगा। सामान्य आपेक्षिकता में, पिण्ड चार विमाओंवाले दिक्-काल में सदैव सीधी रेखाओं का अनुसरण करते हैं, परन्तु फिर भी वे हमारे तीन विमाओंवाले आकाश में हमें वक्र मार्गों पर चलते हुए दिखाई देते हैं। (यह किसी पर्वतीय धरातल के ऊपर उड़ते हुए वायुयान को देखने जैसा है। यद्यपि यह तीन विमाओंवाले आकाश में एक सीधी रेखा पर चलता है, इसकी छाया दो विमाओंवाले धरातल पर वक्र मार्ग पर चलती है।)



चित्र 2.7

सूर्य का द्रव्यमान दिक्-काल को इस प्रकार से वक्र कर देता है कि, हालाँकि पृथ्वी चार विमाओंवाले दिक्-काल में बिल्कुल सीधे मार्ग का अनुसरण करती है, तब भी तीन विमाओंवाले आकाश में यह हमको एक वृत्तीय कक्षा में चलती हुई दिखाई पड़ती है। वास्तव में, सामान्य आपेक्षिकता द्वारा बताए गए ग्रहों की कक्षाएँ लगभग ठीक वही हैं जैसाकि न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त ने बताया था। फिर भी, बुध ग्रह के मामले में, जो सूर्य का निकटतम ग्रह होने के कारण सबसे अधिक सशक्त गुरुत्वाकर्षण बल से प्रभावित होता है और जिसकी कक्षा दीर्घित (elongated) या लम्बोतरे आकार की होती है, सामान्य आपेक्षिकता यह पूर्वानुमान प्रस्तुत करती है कि दीर्घवृत्त का लम्बा अक्ष सूर्य के चारों ओर दस हजार वर्षों में एक अंश के हिसाब से घूमना चाहिए। यद्यपि यह प्रभाव बहुत छोटा है तथापि सन् 1915 से पहले इसको देख लिया गया था और इसने आइंस्टाइन के सिद्धान्त की प्रथम बार पुष्टि की। हाल ही के वर्षों में, न्यूटन के पूर्वानुमानों से दूसरे ग्रहों की कक्षाओं में बहुत छोटा सा विचलन भी राडार द्वारा माप लिया गया है तथा उन्हें सामान्य आपेक्षिकता के पूर्वानुमान के अनुरूप पाया गया है।

प्रकाश किरणों को भी दिक्-काल में ज्यॉडेसिक्स का पालन करना चाहिए। पुनः आकाश की ज्यामिति के वक्र होने का यह अर्थ निकलता है कि प्रकाश भी आकाश में सीधी रेखाओं में नहीं चलता। अतः सामान्य आपेक्षिकता ने यह पूर्वानुमान प्रस्तुत किया कि गुरुत्वीय क्षेत्रों द्वारा प्रकाश मुड़ जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, सिद्धान्त यह बताता है कि सूर्य के समीप के बिन्दुओं के प्रकाश शंकु सूर्य के द्रव्यमान के कारण थोड़ा सा अन्दर की ओर मुड़ जाएँगे। इसका अर्थ हुआ कि किसी दूरस्थ तारे का प्रकाश यदि सूर्य के पास से होकर गुजरे तो यह एक छोटे से कोण पर मुड़ जाएगा और पृथ्वी पर किसी प्रेक्षक को वह तारा भिन्न स्थिति में दिखाई देगा। (चित्र 2.9)। निस्सन्देह, यदि तारे का प्रकाश सदैव सूर्य के बहुत निकट से गुजरता तो हम यह नहीं बता सकते थे कि प्रकाश मुड़ रहा है या इसकी जगह तारा वास्तव में उसी स्थान पर है, जहाँ हम इसको देख रहे हैं। बहरहाल, चूँकि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है, इसलिए विभिन्न तारे सूर्य के पीछे से गुजरते हुए दिखाई पड़ते हैं और उनका प्रकाश मुड़ जाता है। इस प्रकार से वे दूसरे तारों के सापेक्ष अपनी आभासी स्थिति को बदलते रहते हैं।



चित्र 2.8

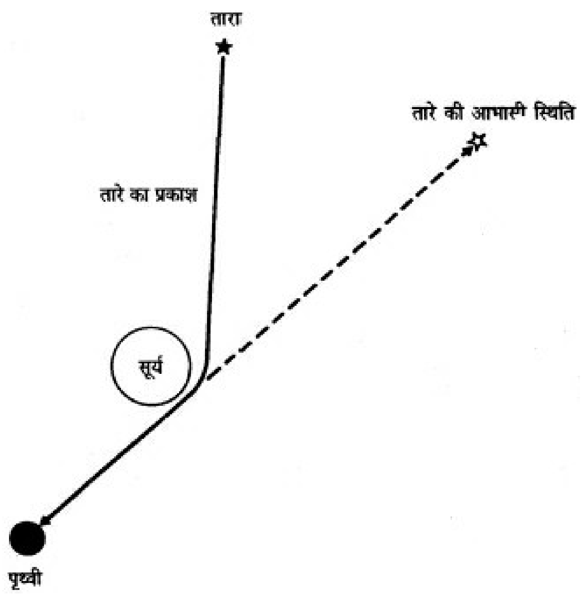
सामान्यतः इस प्रभाव को देखना बहुत मुश्किल होता है क्योंकि सूर्य का प्रकाश आकाश में सूर्य के समीप दिखाई देनेवाले तारों का प्रेक्षण करना असम्भव बना देता है। फिर भी, सूर्यग्रहण के दौरान जब सूर्य का प्रकाश चन्द्रमा द्वारा रोक दिया जाता है, ऐसा करना सम्भव है। प्रकाश विचलन के सम्बन्ध में आइंस्टाइन के पूर्वानुमान को सन् 1915 में तुरन्त ही नहीं जाँचा जा सका था, क्योंकि प्रथम विश्वयुद्ध जारी था। सन् 1919 में पश्चिम अफ्रीका में सूर्यग्रहण का अध्ययन करनेवाले एक ब्रिटिश अभियान दल ने यह बताया कि सिद्धान्त के पूर्वानुमान के ठीक अनुरूप, सूर्य द्वारा वास्तव में प्रकाश मोड़ दिया गया था। ब्रिटिश वैज्ञानिकों द्वारा एक जर्मन सिद्धान्त के इस साक्ष्य का, युद्ध के पश्चात् दोनों देशों के मध्य मैत्री-भाव के एक महान कार्य के रूप में स्वागत किया गया। अतः यह विडम्बना ही कही जाएगी कि उस समय लिए गए चित्रों के बाद के अन्वीक्षण से यह पता चला कि इसमें त्रुटियाँ भी उतनी ही बड़ी थीं जितना कि वह प्रभाव जिसे वे मापने का प्रयत्न कर रहे थे। उनका यही मापन नितान्त सौभाग्यपूर्ण संयोग था—एक ऐसा मामला जिसमें आप प्राप्त करनेवाले परिणाम को पहले से जानते हैं और जो विज्ञान में कोई असामान्य घटना नहीं है। हालाँकि बाद में किए गए कई सारे प्रेक्षणों से प्रकाश विचलन की सही-सही पुष्टि हो गई है।

सामान्य आपेक्षिकता का एक और पूर्वानुमान यह है कि पृथ्वी जैसे स्थूलकाय पिण्ड के निकट समय अपेक्षाकृत धीमी गति से चलता हुआ प्रतीत होना चाहिए। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि प्रकाश की ऊर्जा एवं उसकी आवृत्ति में सम्बन्ध होता है : जितनी ज्यादा ऊर्जा, उतनी ही अधिक आवृत्ति। ज्यों-ज्यों प्रकाश पृथ्वी के गुरुत्वीय क्षेत्र में ऊपर की ओर चलता है, इसकी ऊर्जा कम होती जाती है और इसीलिए उसकी आवृत्ति भी कम हो जाती है। (इसका अर्थ है कि एक तरंग के दो क्रमिक शीर्षों के मध्य कालान्तर बढ़ जाता है।) यदि कोई व्यक्ति ऊपर हो तो उसे ऐसा लगेगा जैसे नीचे हर घटना को घटित होने में अधिक समय लग रहा है। यह पूर्वानुमान सन् 1962 में जाँचा गया। इसमें दो बहुत ही सही समय देनेवाली घड़ियों का प्रयोग किया गया। एक घड़ी पानी की टंकी की छत पर लगा दी गई तथा दूसरी टंकी के समीप धरातल पर। नीचेवाली घड़ी जो पृथ्वी के ज्यादा नजदीक थी सामान्य आपेक्षिकता के ठीक अनुरूप अपेक्षाकृत धीमी गति से चलती हुई पाई गई। उपग्रहों से प्राप्त संकेतों पर आधारित अति परिशुद्ध नौ संचालन कार्यप्रणालियों के आगमन से पृथ्वी के ऊपर विभिन्न ऊँचाइयों पर घड़ियों की गति में अन्तर का अब बहुत अधिक व्यावहारिक महत्त्व है। यदि कोई सामान्य आपेक्षिकता के पूर्वानुमानों की अनदेखी कर दे, तो उसकी गणना की हुई स्थितियों में कई मील के अन्तर की त्रुटियाँ होंगी।

न्यूटन के गति के नियमों ने आकाश में निरपेक्ष स्थिति (absolute position) की अवधारणा को समाप्त कर दिया। आपेक्षिकता के सिद्धान्त ने निरपेक्ष काल से मुक्ति पा ली। जुड़वाँ बच्चों के एक जोड़े के बारे में सोचिए, मान लीजिए, उन (दो जुड़वाँ बच्चों) में से एक किसी पहाड़ की चोटी पर रहने के लिए चला जाता है तथा दूसरा समुद्र तल पर ही रहता है तो दूसरेवाले की अपेक्षा पहलेवाला बच्चा अधिक तेजी से बूढ़ा होगा। इस मामले में तो दोनों की आयु में अन्तर बहुत थोड़ा होगा, परन्तु यदि उन जुड़वाँ बच्चों में से एक किसी अन्तरिक्षयान में लगभग प्रकाश के वेग पर किसी लम्बी यात्रा पर चला जाए, तो यह अन्तर अपेक्षाकृत बहुत अधिक होगा। जब वह लौटेगा, तो वह उस दूसरे जुड़वाँ बच्चे, जो पृथ्वी पर रह गया था, की अपेक्षा बहुत कम आयु का होगा। इसे जुड़वाँ विरोधाभास (twin paradox) कहा जाता है, परन्तु यह विरोधाभास केवल तब ही होता है यदि कोई अपनी मानसिक पृष्ठभूमि में निरपेक्ष काल का विचार रखता है। आपेक्षिकता के सिद्धान्त में कोई भी विशिष्ट निरपेक्ष काल नहीं होता, बल्कि इसके बजाय प्रत्येक व्यक्ति का उसका अपना व्यक्तिगत समय का माप होता है जो इस बात पर निर्भर करता है कि वह कहाँ है तथा वह किस प्रकार से चल रहा है।

सन् 1915 से पहले, दिक्-काल को एक स्थिर एवं नियत कार्यक्षेत्र (arena) माना जाता था जिसमें घटनाएँ घटित होती रहती थीं, परन्तु जो अपने अन्दर घटित घटनाओं से बिल्कुल भी प्रभावित नहीं होता था। यह बात आपेक्षिकता के विशिष्ट सिद्धान्त के साथ भी सही थी। पिण्ड गतिमान रहते थे, बल आकर्षित और प्रतिकर्षित करते थे, परन्तु काल और दिक् का प्रवाह इन सबसे निष्प्रभावित रहता। यह सोचना स्वाभाविक था कि दिक् और काल का प्रवाह सतत रूप से चलता रहता है।

परन्तु आपेक्षिकता के सामान्य सिद्धान्त में स्थिति बिल्कुल भिन्न है। अब दिक् और काल गतिशील सक्रिय राशियाँ हैं : जब कोई पिण्ड चलता है, या कोई बल कार्य करता है तो यह दिक्-काल की वक्रता को प्रभावित करता है—और बदले में दिक्-काल की संरचना पिण्डों के चलने तथा बलों के कार्य करने की कार्यप्रणाली को प्रभावित करती है। जो कुछ भी ब्रह्माण्ड में घटित होता है, दिक् और काल न केवल उसे प्रभावित करते हैं, बल्कि उससे प्रभावित भी होते हैं। ठीक जैसे दिक् और काल की धारणा के बिना ब्रह्मांड में घटित घटनाओं के बारे में कोई बात नहीं कर सकता, उसी प्रकार सामान्य आपेक्षिकता में, ब्रह्माण्ड की सीमाओं से बाहर दिक् और काल के बारे में बात करना निरर्थक हो गया।



चित्र 2.9

आनेवाले दशकों में दिक् और काल की यह नई समझ ब्रह्माण्ड के बारे में हमारे विचारों में क्रान्तिकारी परिवर्तन लानेवाली थी। एक अनिवार्य रूप से अपरिवर्तनशील ब्रह्माण्ड की पुरानी धारणा, जो सदैव अस्तित्व में रह सकता था, एक ऐसे गतिशील, सक्रिय व विस्तृत होते हुए ब्रह्माण्ड की धारणा से प्रतिस्थापित हो गई जो एक सीमाबद्ध समय पर प्रारम्भ हुआ प्रतीत होता था, और जो भविष्य में एक सीमाबद्ध समय पर समाप्त हो जाएगा। यह क्रान्तिकारी परिवर्तन इस पुस्तक के अगले अध्याय की विषयवस्तु है। और वर्षों बाद, सैद्धान्तिक भौतिकी के मेरे अपने शोध-कार्य के लिए यही प्रस्थान बिन्दु भी होना था। रोजर पेनरोज और मैंने यह स्पष्ट कर दिया कि आइंस्टाइन के आपेक्षिकता के सामान्य सिद्धान्त का अर्थ यह है कि ब्रह्माण्ड का प्रारम्भ और सम्भवतः अन्त होना चाहिए।

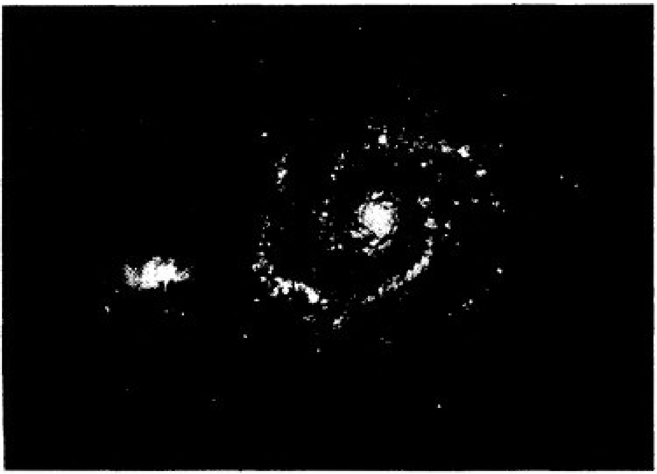
अध्याय 3

फैलता हुआ ब्रह्माण्ड

यदि कोई साफ अँधेरी रात में आकाश की ओर देखे तो शुक्र, मंगल, बृहस्पति एवं शनि ग्रह ही सबसे अधिक चमकदार दिखाई देने चाहिए। उन तारों की भी बहुत बड़ी संख्या होगी जो ठीक हमारे सूर्य के समान लेकिन हमसे दूर हैं। क्योंकि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है, इसलिए इन स्थिर तारों में से कुछ एक-दूसरे के सापेक्ष अपनी स्थितियों में थोड़ा बहुत परिवर्तन करते हुए लगते हैं। वास्तव में वे बिल्कुल भी स्थिर नहीं हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि वे सापेक्षिक रूप से हमारे निकट हैं। पृथ्वी के सूर्य के चारों ओर घूमने के कारण हम उन्हें अपेक्षाकृत दूरस्थ तारों की पृष्ठभूमि में विचित्र स्थितियों में देखते हैं। यह बड़े सौभाग्य की बात है क्योंकि इससे इन तारों की हमसे दूरी को प्रत्यक्ष रूप से मापने में हमें सहायता मिलती है : वे हमसे जितना अधिक निकट होते हैं, उतना ही अधिक गतिमान जान पड़ते हैं। प्रोक्सिमा सेंटौरी (Proxima Centauri) नाम के निकटस्थ तारे की दूरी लगभग चार प्रकाश वर्ष, लगभग 230 खरब मील, पाई गई है। (इसका प्रकाश पृथ्वी तक पहुँचने में लगभग चार वर्ष लेता है)। कोरी आँखों से दिखाई देनेवाले अधिकांश दूसरे तारे हमसे कुछ ही प्रकाश वर्ष की दूरी पर स्थित हैं। तुलना के लिए, हमारा सूर्य हमसे केवल आठ प्रकाश मिनट दूर स्थित है। रात्रि के आकाश में दृश्य तारे चारों ओर फैले हुए दिखाई पड़ते हैं लेकिन वे एक पट्टी (band), जिसे हम आकाशगंगा (Milky way) कहते हैं, में ही विशेष रूप से संकेंद्रित होते हैं। सन् 1750 तक कुछ खगोलविद यह सुझा रहे थे कि अधिकांश दृश्य तारे यदि केवल एक ही तश्तरीनुमा विन्यास (disklike configuration) में स्थिति होते तो आकाशगंगा के दृष्टिगत स्वरूप, सर्पिल मंदाकिनी जिसका अब एक उदाहरण मानी जाती है, को स्पष्ट किया जा सकता है। केवल कुछ दशकों बाद ही एक प्रख्यात खगोलविद सर विलियम हर्शेल ने सावधानीपूर्वक अति श्रम से बहुत सारे तारों की स्थितियों एवं दूरियों की सूची बनाकर अपनी इस धारणा की पुष्टि कर दी। इसके बावजूद इस विचार को पूर्ण स्वीकृति केवल शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में ही मिल सकी।

ब्रह्माण्ड के इस आधुनिक स्वरूप सम्बन्धी हमारी धारणा अधिक पुरानी नहीं है। यह सन् 1924 में उस समय बनी जब एक अमेरिकी खागोलविद एडविन हब्बल ने यह प्रदर्शित किया कि हमारी आकाशगंगा ही ब्रह्माण्ड में अकेली नहीं है। वस्तुतः ब्रह्माण्ड में कई अन्य मन्दाकिनियाँ भी हें जिनके बीच में विशाल रिक्त स्थान मौजूद है। इस तथ्य को प्रमाणित करने के लिए उन्हें इन मन्दाकिनियों की दूरियाँ सुनिश्चित करने की जरूरत थी जो आपस में इतनी दूर हैं कि निकट के तारों से बिल्कुल भिन्न, यथार्थ में स्थिर या गतिहीन दिखाई देती हैं। अतः दूरियों के मापन के लिए अप्रत्यक्ष विधियों का प्रयोग करने के लिए हब्बल विवश हो गए। अब, किसी भी तारे की आभासी दीप्ति (apparent luminosity) दो बातों पर निर्भर करती है : एक तो वह तारा कितने प्रकाश का विकिरण करता है (इसकी परम ज्योति) और दूसरे वह हमसे कितनी दूर है। अपने निकटस्थ तारों की आभासी दीप्ति तथा उनकी दूरी के मापन द्वारा हम उनकी परम दीप्ति निकाल सकते हैं। इसके विपरीत यदि मन्दाकिनियों में स्थित तारों की परम दीप्ति हमें ज्ञात हो तो उनकी आभासी दीप्ति के मापन द्वारा हम उनकी दूरियाँ निकाल सकते हैं। हब्बल का ध्यान इस

ओर आकर्षित हुआ कि कुछ विशेष प्रकार के तारों की परम दीप्ति उस समय भी एक-सी ही रहती है जबकि मापन के लिए वे हमसे पर्याप्त रूप से निकट होते हैं। अतः उन्होंने यह तर्क रखा कि यदि ऐसे तारे हमें किसी दूसरी मन्दाकिनी में मिल जाएँ तो हम यह मान सकते हैं कि उनकी भी परम दीप्ति वही है—और इस तरह हम उस मन्दाकिनी की दूरी की गणना कर सकते हैं। अगर उसी मन्दाकिनी में स्थित कई अन्य तारों के साथ भी हम यही गणना कर सकें और यदि हमारी गणनाएँ सदैव वही दूरियाँ दर्शाएँ तो अपने अनुमानों के प्रति हम पर्याप्त रूप से आश्वस्त हो सकते हैं।



चित्र 3.1

इस तरह एडविन हब्बल ने नौ अलग मन्दाकिनियों की दूरियाँ निकालीं। अब हम जानते हैं कि हमारी आकाशगंगा उन अरबों-खरबों मन्दाकिनियों में से महज एक है जिन्हें आधुनिक दूरबीन के प्रयोग द्वारा देखा जा सकता है। प्रत्येक मन्दाकिनी में भी अरबों-खरबों तारे होते हैं। चित्र 3.1 में एक सर्पिल मन्दाकिनी दिखाई गई है। यह ठीक वैसी ही है जैसाकि हम समझते हैं कि दूसरी मन्दाकिनी में रहने में व्यक्ति को हमारी आकाशगंगा दिखाई देनी चाहिए। हम एक ऐसी मन्दाकिनी में रहते हैं जिसका व्यास एक लाख प्रकाश वर्ष है और जो धीरे-धीरे घूम रही है : इसकी सर्पिल भुजाओं में स्थित तारे कई करोड़ वर्षों में एक बार के हिसाब से इसके केन्द्र की परिक्रमा करते हैं। हमारा सूर्य इसकी सर्पिल भुजाओं में से किसी एक के अंदरूनी सिरे के निकट बस एक साधारण, औसत आकार का पीला तारा है। अरस्तू और टॉलेमी के उस युग से हम निश्चित रूप से काफी आगे निकल आए हैं जब हम यह सोचते थे कि पृथ्वी ही ब्रह्माण्ड का केन्द्र है।

तारे इतनी दूर हैं कि हमें पिन की नोंक जितने छोटे प्रकाशबिन्दु जैसे दिखाई पड़ते हैं। हम उनका आकार या स्वरूप नहीं देख सकते। ऐसे में अलग-अलग तारों के बीच हम भेद कैसे कर सकते हैं? तारों की इस सुविशाल संख्या में केवल एक ही विशिष्ट लक्षण ऐसा है जिसका हम प्रेक्षण कर सकते हैं—और वह है उनके प्रकाश का रंग। न्यूटन ने यह खोज की थी कि यदि सूर्य के प्रकाश को प्रिज्म कहलानेवाले एक त्रिभुजाकार शीशे के टुकड़े से गुजारा जाए तो इन्द्रधनुष की भाँति सात रंगों के वर्णक्रम में वह बिखर जाता है। किसी तारे या मन्दाकिनी पर दूरबीन केन्द्रित करके उस तारे या मन्दाकिनी से आनेवाले प्रकाश के वर्णक्रम का प्रेक्षण किया जा सकता है। भिन्न तारों के अलग वर्णक्रम होते हैं लेकिन विभिन्न रंगों की सापेक्षिक चमक सदैव वही रहती है जो हम किसी लाल तप्त (red hot) वस्तु द्वारा उत्सर्जित प्रकाश में पाने की अपेक्षा करेंगे। (वास्तव में किसी लाल तप्त अपारदर्शी वस्तु द्वारा उत्सर्जित प्रकाश का एक विशिष्ट

वर्णक्रम होता है जो उस वस्तु के तापमान पर निर्भर करता है; इसे उसका तापीय वर्णक्रम कहते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि किसी तारे द्वारा उत्सर्जित प्रकाश के वर्णक्रम से हम उसका तापमान बता सकते हैं।) इसके अलावा हम यह भी देखते हैं कि उस तारे के वर्णक्रम से कुछ बहुत ही विशिष्ट रंग गायब हैं और ये गायब रंग भिन्न तारों में अलग-अलग हो सकते हैं। चूँकि हम जानते हैं कि हर रासायनिक तत्व कुछ विशिष्ट रंगों को अवशोषित करता है, इनका तारे के वर्ण से गायब रंगों के साथ तुलना करके हम यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि तारे के परिमण्डल में कौन से तत्व मौजूद हैं।

सन् 1920 के दशक में जब खागोलविदों ने दूसरी मन्दाकिनियों में स्थित तारों के वर्णक्रमों का अध्ययन शुरू किया तो उन्हें कुछ अजीब-सी बात देखने को मिली : वहाँ भी हमारी अपनी आकाशगंगा में स्थित तारों की तरह ही वही विशिष्ट रंग गायब पाए गए लेकिन वर्णक्रम की रेखाएँ एक ही सापेक्षिक परिमाण में लाल छोर की तरफ खिसकी हुई थीं। इसे समझने के लिए, सबसे पहले डाप्लर प्रभाव को हमें समझना होगा। जैसा कि हम देख चुके हैं, दृश्य प्रकाश विद्युत चुम्बकीय तरंगों का ही एक रूप है। प्रकाश का तरंग दैर्घ्य (या दो क्रमिक शीर्षों अथवा गर्तों के मध्य की दूरी) बेहद कम, 400 नैनोमीटर से 700 नैनोमीटर तक होता है। प्रकाश के विचित्र तरंग दैर्घ्य ही मानव नेत्रों द्वारा दिखाई देनेवाले अलग-अलग रंग होते हैं। वर्णक्रम के लाल रंग की ओर सबसे अधिक तरंग दैर्घ्य जबकि नीले रंग की ओर सबसे कम तरंग दैर्घ्य का मान होता है। अब, हमसे एक स्थिर दूरी पर स्थित किसी प्रकाश स्रोत, जैसे कि कोई तारा जो एक नियत तरंग दैर्घ्य वाले प्रकाश तरंगों का उत्सर्जन कर रहा हो, की कल्पना करें। स्पष्टतः जो तरंगें हमें प्राप्त होती हैं उनका तरंग दैर्घ्य वही रहता है जिस पर कि वे उत्सर्जित हुई हैं (मन्दाकिनियों का गुरुत्वीय क्षेत्र तरंग दैर्घ्य पर कोई विशेष प्रभाव डाल पाने में सक्षम नहीं होगा)। अब मान लीजिए वह प्रकाश स्रोत हमारी तरफ चलना शुरू करता है। जब वह स्रोत अगले तरंग शीर्ष को उत्सर्जित करता है तो वह अपेक्षाकृत हमसे अधिक निकट होगा, अतः तरंग शीर्षों के बीच की दूरी तारे के स्थिर रहने की दशा की अपेक्षा कम होगी। इसका अर्थ यह हुआ कि हमें प्राप्त होनेवाली तरंगों के तरंग दैर्घ्य का मान तारे के स्थिर रहने की दशा की अपेक्षा कम होगा। इसी प्रकार अगर प्रकाश स्रोत हमसे दूर जा रहा है तो हमारे द्वारा प्राप्त तरंगों के तरंग दैर्घ्य का मान अपेक्षाकृत अधिक होगा। प्रकाश के संदर्भ में इसका यह अर्थ निकला कि हमसे दूर भागते तारों के वर्णक्रम की रेखाएँ लाल रंग की ओर हट जाती हैं तथा हमारी ओर आनेवाले तारे के वर्णक्रम में रेखाएँ नीले रंग की ओर सरक जाती हैं। तरंग दैर्घ्य और वेग के बीच का यह सह-सम्बन्ध, जो डॉप्लर प्रभाव कहलाता है, हमारे प्रतिदिन के अनुभव का हिस्सा है। सड़क पर से गुजरती हुई किसी कार की ध्वनि को सुनिए : जैसे-जैसे कार पास आती जाती है उसके इंजन की ध्वनि का तारत्व (pitch) भी बढ़ता जाता है (ध्वनि तरंगों के अपेक्षाकृत कम तरंग दैर्घ्य तथा अधिक आवृत्ति के अनुरूप) और जब वह कार हमारे पास से गुजर जाती है तो उसकी ध्वनि का तारत्व भी कम हो जाता है। प्रकाश एवं रेडियो तरंगों का व्यवहार एक-सा ही होता है। कारों की गति को मापने के लिए वास्तव में पुलिस डॉप्लर प्रभाव का प्रयोग करती है। इसके लिए कारों से परावर्तित होनेवाली रेडियो तरंगों के स्पंदों (pulses) के तरंग दैर्घ्यों का मापन किया जाता है।

दूसरी मन्दाकिनियों के अस्तित्व सम्बन्धी अपना सबूत देने के उपरान्त, हब्बल ने बाद के वर्षों में अपना समय उनकी दूरियों की तालिका बनाने तथा उनके वर्णक्रमों का प्रेक्षण करने में बिताया। उस समय अधिसंख्य लोग ही यह सोचते थे कि मन्दाकिनियाँ बिल्कुल बेतरतीब ढंग से गतिशील होनी चाहिए और इसलिए उनके उतने ही नीले विस्थापन वाले वर्णक्रमों की उन्हें अपेक्षा थी जितनी कि अभिरक्त-विस्थापन वाले वर्णक्रमों की। लेकिन यह आश्चर्य ही था कि अधिकांश मन्दाकिनियों के वर्णक्रमों की रेखाएँ लाल रंग की ओर विस्थापित पाई गईं : लगभग सभी मन्दाकिनियाँ ही हमसे दूर भाग रही थीं। इससे भी आश्चर्यजनक वह खोज थी जिसे हब्बल ने सन् 1929 में प्रकाशित करवाया था कि मन्दाकिनी के अभिरक्त विस्थापन का मान यादृच्छिक (random) न होकर हमसे उस मन्दाकिनी की दूरी के सीधे अनुपात में है। दूसरे शब्दों में,

जितनी अधिक दूर कोई मन्दाकिनी है वह उतनी ही तेज गति से हमसे दूर भाग रही है। और इसका अर्थ यह निकला कि ब्रह्माण्ड स्थिर नहीं है जैसाकि पहले सभी ने सोचा था, बल्कि यथार्थ में यह फैल रहा है : विभिन्न मन्दाकिनियों के बीच की दूरी समय के साथ बढ़ती जा रही है।

यह खोज कि ब्रह्माण्ड का प्रसरण हो रहा है, बीसवीं शताब्दी की महान बौद्धिक क्रान्तियों में से एक थी। पीछे मुड़कर देखें तो इस बात पर आश्चर्य करना बहुत आसान है कि किसी ने पहले इसके बारे में क्यों नहीं सोचा था। न्यूटन तथा अन्य वैज्ञानिकों को यह जान लेना चाहिए था कि गुरुत्व के प्रभाव से एक स्थिर ब्रह्माण्ड शीघ्र ही संकुचित होना शुरू हो जाएगा। लेकिन, ब्रह्माण्ड को आप विस्तारित होता हुआ मान लें। यदि उसका विस्तार काफी धीमी गति से हो रहा है, तो गुरुत्व बल इसको अंततः फैलने से रोक देगा और फिर इसका संकुचन शुरू हो जाएगा। बहरहाल, यदि इसका प्रसरण एक निश्चित क्रांतिक दर (critical rate) से तीव्र गति से हो रहा है, तो गुरुत्व बल इसके प्रसरण को रोक पाने में सक्षम नहीं होगा और ब्रह्माण्ड फिर अनंत काल तक विस्तृत होता रहेगा। यह स्थिति किसी सीमा तक ठीक वैसी ही है जैसीकि पृथ्वी के धरातल से रॉकेट को ऊपर की ओर दागने के समय होती है। यदि रॉकेट का वेग काफी कम है तो गुरुत्व बल अंततः रॉकेट को रोक देगा और वह नीचे गिरना शुरू हो जाएगा। दूसरी ओर, अगर रॉकेट का वेग एक निश्चित क्रांतिक मान (लगभग सात मील प्रति सेकिण्ड) से अधिक है तो गुरुत्व बल रॉकेट को पीछे खींचकर रोक पाने में सक्षम नहीं होगा, इसलिए वह इस आकर्षण बल से छूटकर हमेशा के लिए पृथ्वी से दूर चला जाएगा। ब्रह्माण्ड के इस व्यवहार के बारे में पूर्वानुमान न्यूटन के गुरुत्वीय सिद्धान्त द्वारा उन्नीसवीं, अठारहवीं या सत्रहवीं शताब्दी के अन्तिम काल में किसी समय भी लगाया जा सकता था। लेकिन एक स्थिर ब्रह्माण्ड में सबका इतना दृढ़ विश्वास था कि बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल तक यह अटूट बना रहा। सन् 1915 में जब आइंस्टाइन ने आपेक्षिकता के सामान्य सिद्धान्त को सूत्र रूप में निरूपित किया कि वह भी स्थिर ब्रह्माण्ड की अवधारण से इतने आश्वस्त थे कि अपने समीकरणों में एक तथाकथित ब्रह्माण्डिकीय स्थिरांक (cosmological constant) को समाविष्ट करके, उन्होंने अपने सिद्धान्त का ही संशोधन कर डाला। आइंस्टाइन ने एक नए 'प्रतिगुरुत्वीय' बल को प्रस्तुत किया जो दूसरे बलों की तरह किसी विशेष स्रोत से न होकर दिक्-काल के ढाँचे में ही समाहित था। उन्होंने यह दावा किया कि दिक्-काल में विस्तार की एक अंदरूनी प्रवृत्ति है और इसी से ब्रह्माण्ड के समस्त पदार्थ के आकर्षण को सही तरह से संतुलित कराया जा सकता है, जिसका परिणाम एक स्थिर ब्रह्माण्ड के रूप में देखने को मिलता है। ऐसा लगता है कि सिर्फ एक ही व्यक्ति ऐसा था जो आपेक्षिकता के सामान्य सिद्धान्त के वास्तविक महत्व को स्वीकारने को इच्छुक था और जिस समय आइंस्टाइन तथा अन्य भौतिकीविद इस सामान्य सिद्धान्त के इस पूर्वानुमान कि ब्रह्माण्ड अस्थिर है से बचने के तरीके ढूँढ़ रहे थे, उसी समय एक रूसी भौतिकीविद एवं गणितज्ञ अलेक्जेंडर फ्रीडमैन इसकी विवेचना में जुट गए।

फ्रीडमैन ने ब्रह्माण्ड सम्बन्धी दो बहुत ही सहज एवं बोधगम्य परिकल्पनाएँ कीं : एक तो यह कि चाहे हम किसी भी दिशा में देखें ब्रह्माण्ड हमें एक समान दिखाई देता है तथा दूसरे यह कि ब्रह्माण्ड को किसी अन्य स्थान से देखने पर भी वह हमें इसी तरह एक समान दिखाई देगा। मात्र इन दो विचारों के आधार पर फ्रीडमैन ने यह स्पष्ट कर दिया कि ब्रह्माण्ड के बारे में हमें यह अपेक्षा नहीं करनी चाहिए कि वह स्थिर है। वस्तुतः एडविन हब्बल की खोज से कई वर्षों पहले, सन् 1922 में ही फ्रीडमैन ने इस खोज से जुड़े तथ्य का पूर्वानुमान लगा लिया था।

यह कल्पना कि ब्रह्माण्ड प्रत्येक दिशा में एक समान दिखाई देता है, यथार्थ में सत्य नहीं है। उदाहरण स्वरूप, जैसाकि हम देख चुके हैं, हमारी मन्दाकिनी में दूसरे तारे रात्रिकालीन आकाश के एक छोर से दूसरे छोर तक प्रकाश का एक विशिष्ट पट्टा-सा बनाते हैं, जिसे आकाशगंगा कहा जाता है। लेकिन अगर हम दूरस्थ मन्दाकिनियों का निरीक्षण करें तो वहाँ हमें कमोबेश उनकी उतनी ही संख्या दिखाई पड़ती है। इस तरह से ब्रह्माण्ड प्रत्येक दिशा में मोटे तौर पर एक जैसा ही प्रतीत होता है बशर्ते मन्दाकिनियों के बीच की दूरी के मुकाबले विशाल स्तर पर कोई ब्रह्माण्ड का

अवलोकन करे तथा छोटे स्तर के अंतरों की अनदेखी कर दे। काफी लम्बे समय तक फ्रीडमैन की धारणा, जो वास्तविक ब्रह्माण्ड का एक मोटा अनुमान प्रस्तुत करती थी, के लिए यही पर्याप्त रूप से न्यायसंगत था। लेकिन एकदम हाल ही में एक सौभाग्यपूर्ण घटना ने इस तथ्य को उजागर किया कि वास्तव में फ्रीडमैन की धारणा हमारे ब्रह्माण्ड का उल्लेखनीय रूप से एक सही वर्णन है।

सन् 1965 में न्यूजर्सी स्थित बेल टेलीफोन लेबोरेटरीज में आर्नो पेंजियास तथा राबर्ट विल्सन नामक दो अमेरिकी भौतिकीविद एक अति संवेदनशील सूक्ष्म तरंग संसूचक की जाँच-पड़ताल कर रहे थे। (सूक्ष्म तरंगें ठीक प्रकाश तरंगों की तरह ही होती हैं लेकिन उनका तरंग दैर्घ्य एक सेंटीमीटर के लगभग होता है।) पेंजियास और विल्सन उस समय चिन्तित हो उठे जब उन्होंने पाया कि उनके संसूचक यंत्र पर आवश्यकता से अधिक शोर के संकेत प्राप्त हो रहे थे। शोर के ये संकेत किसी विशेष दिशा से आते हुए नहीं लग रहे थे। पहले तो अपने संसूचक पर पक्षियों की बीट उन्हें पड़ी मिली तथा फिर अन्य सम्भावित गड़बड़ियों के लिए भी उन्होंने अपने यंत्र की जाँच की, लेकिन इन कारणों को उन्होंने शीघ्र ही नकार दिया। वे इस तथ्य को जानते थे कि वायुमंडल का अंदरूनी शोर उस समय अधिक तीव्र होगा जबकि संसूचक सीधे ऊपर की दिशा में न हो, बनिस्बत उस समय जबकि वह इस दिशा में हो क्योंकि सीधे ऊर्ध्व दिशा से प्रकाश किरणें प्राप्त करने की बजाय जब प्रकाश किरणें क्षितिज की दिशा से प्राप्त की जाती हैं, तब प्रकाश की किरणों को अपेक्षाकृत काफी अधिक वायुमंडल से होकर गुजरना पड़ता है। अब चूँकि अतिरिक्त शोर के संकेत एक समान प्राप्त हो रहे थे चाहे संसूचक किसी भी दिशा में था, अतः वे निश्चित तौर पर वातावरण के बाहर से ही आ रहे थे। पृथ्वी के अपनी धुरी पर घूमने तथा सूर्य की परिक्रमा करने के बावजूद दिन एवं रात तथा वर्षभर के प्रेक्षण लेने के बाद भी वही नतीजा सामने आया। इससे यह स्पष्ट हो गया कि शोर के रूप में प्राप्त होनेवाले विकिरण को न केवल हमारे सौरमंडल के बाहर से बल्कि हमारी आकाशगंगा के भी बाहर से आना चाहिए, क्योंकि अन्यथा पृथ्वी की गति के कारण संसूचन की दिशा बदलते रहने के कारण विकिरण की तीव्रता भी बदलती रहती।

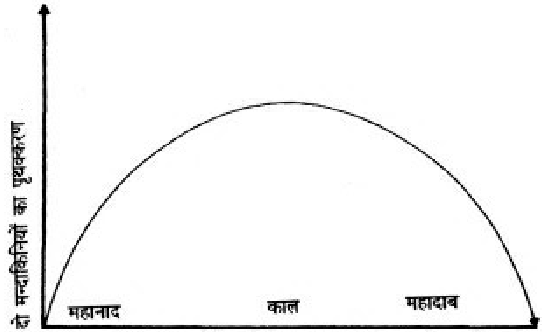
वास्तव में, हम यह जानते हैं कि प्रेक्षणीय ब्रह्माण्ड के अधिकांश भाग को पार करता हुआ विकिरण हम तक पहुँचा होगा और चूँकि इसकी तीव्रता हर दिशा में एक समान पाई गई, इसलिए ब्रह्माण्ड भी विशाल स्तर पर प्रत्येक दिशा में एक समान होना चाहिए। अब हम यह जानते हैं कि चाहे किसी भी दिशा में हम देखें, शोर के संकेत एक नन्हें सूक्ष्मांश से अधिक कभी नहीं होते। इसलिए फ्रीडमैन की प्रथम परिकल्पना की एकदम सही पुष्टि पेंजियास एवं विल्सन द्वारा अनजाने में ही हो गई। बहरहाल, चूँकि ब्रह्माण्ड प्रत्येक दिशा में एक समान नहीं है बल्कि विशाल स्तर पर मोटे रूप से यह हमें एक समान प्रतीत होता है, इसलिए प्रत्येक दिशा में सूक्ष्म तरंगें भी बिल्कुल एक समान नहीं हो सकतीं। विभिन्न दिशाओं के मध्य थोड़ी-बहुत भिन्नताएँ होनी ही चाहिए। एक लाख में लगभग एक अंश के स्तर पर इन भिन्नताओं का सबसे पहले सन् 1992 में अंतरिक्ष पृष्ठभूमि अन्वेषक या 'कोब' (COBE) उपग्रह द्वारा पता लगाया गया था। हालाँकि ये भिन्नताएँ बहुत छोटी हैं लेकिन ये बहुत ही महत्वपूर्ण हैं, जैसाकि अध्याय 8 में स्पष्ट किया जाएगा।

जब पेंजियास और विल्सन अपने संसूचक यंत्र पर शोर के संकेतों की जाँच-पड़ताल कर रहे थे, लगभग उसी दौरान पास ही के प्रिस्टन विश्वविद्यालय में दो अमेरिकी भौतिकीविद बॉब डिक तथा जिम पीबल्स भी सूक्ष्म तरंगों में रुचि ले रहे थे। वे कभी एलेक्जेंडर फ्रीडमैन के विद्यार्थी रहे जॉर्ज गैमो के इस सुझाव पर कार्य कर रहे थे कि अपनी प्रारम्भिक अवस्था में ब्रह्माण्ड को अति तप्त और सघन तथा श्वेत तप्त (white hot) दीप्ति से युक्त होना चाहिए। डिक और पीबल्स यह तर्क दे रहे थे कि हमें अब भी उस प्रारम्भिक ब्रह्माण्ड की दीप्ति को देखने में समर्थ होना चाहिए, क्योंकि ब्रह्माण्ड के बहुत दूरस्थ स्थानों से आनेवाला प्रकाश हमारे पास तक अब पहुँच ही रहा होगा। बहरहाल, ब्रह्माण्ड के विस्तार का अर्थ यह हुआ कि इस प्रकाश का विस्थापन लाल रंग की तरफ इतना अधिक होना चाहिए कि यह हमें अब सूक्ष्म तरंग विकिरण के रूप में दिखाई पड़े। डिक और पीबल्स इसी विकिरण को खोजने का उपक्रम कर रहे थे। जब पेंजियास और विल्सन ने उनके कार्य के बारे में सुना तो वे समझ गए कि वे इसे पहले ही खोज चुके हैं। इस उपलब्धि के

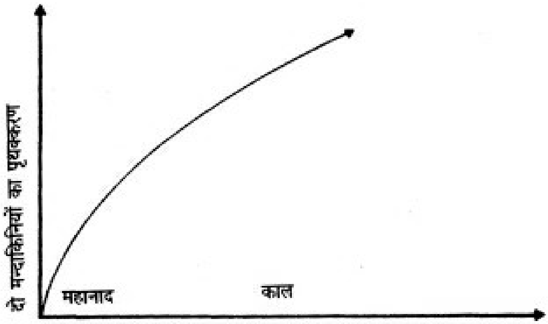
लिए पेंजियास तथा विल्सन को सन् 1978 में भौतिकी का नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया (जो गैमो का जिक्र न भी करें तो डिक तथा पीबल्स के साथ थोड़ा अन्याय ही माना जाएगा)।

ऊपरी तौर पर ये सारे प्रमाण कि ब्रह्माण्ड प्रत्येक दिशा में एक जैसा दिखाई देता है, हमें यह सुझाते लगते हैं कि ब्रह्माण्ड में हमारी स्थिति के बारे में कुछ-न-कुछ अवश्य ही खास बात है। विशेष रूप से शायद ऐसा प्रतीत हो सकता है कि यदि हम तमाम दूसरी मन्दाकिनियों को अपने से दूर भागते हुए देखते हैं, तो हमें अवश्य ही ब्रह्माण्ड के केन्द्र में होना चाहिए। हालाँकि इसका एक वैकल्पिक स्पष्टीकरण है : किसी दूसरी मन्दाकिनी से भी यदि देखा जाए, तो भी ब्रह्माण्ड प्रत्येक दिशा में शायद एक जैसा ही दिखाई देगा। जैसाकि हम देख चुके हैं, यही फ्रीडमैन की दूसरी अवधारणा थी। इस अवधारणा के पक्ष अथवा विपक्ष में हमारे पास कोई वैज्ञानिक प्रमाण नहीं है। हम केवल शालीनता के आधार पर इस पर विश्वास करते हैं : यह सर्वाधिक विलक्षण बात होगी यदि ब्रह्माण्ड हमारे चारों ओर प्रत्येक दिशा में तो एक जैसा दिखाई दे, परन्तु ब्रह्माण्ड में किन्हीं बिन्दुओं से चारों ओर एक सा दिखाई न दे! फ्रीडमैन के मॉडल में, दूसरी मन्दाकिनियाँ एक-दूसरे से सीधे दूर भाग रही हैं। स्थिति एक निरन्तर फूलते हुए गुब्बारे के समान है जिस पर छोटे-छोटे धब्बे बने हों। ज्यों-ज्यों गुब्बारा फूलता जाता है, दो धब्बों के बीच की दूरी बढ़ती जाती है, परन्तु ऐसा कोई धब्बा नहीं है जिसे विस्तार का केन्द्र कहा जा सके। इसके अतिरिक्त, धब्बे एक-दूसरे से जितनी अधिक दूर होंगे, उतनी ही अधिक तेजी से वे दूर हट रहे होंगे। इसी प्रकार, फ्रीडमैन के मॉडल में कोई सी दो मन्दाकिनियाँ जिस वेग से दूर भाग रही हैं, वह वेग उनके बीच की दूरी के समानुपातिक होगा। इसलिए इसने यह सम्भावना व्यक्त की कि किसी भी मन्दाकिनी का 'अभिरक्त विस्थापन' हमसे इसकी दूरी का सीधा समानुपातिक होना चाहिए, ठीक वैसा ही जैसा कि हब्बल ने पाया था। हब्बल के प्रेक्षणों के सम्बन्ध में अपने पूर्वानुमान के तथा अपने मॉडल की सफलता के बावजूद फ्रीडमैन का कार्य पश्चिम में उस समय तक पूरी तरह अज्ञात रहा जब तक कि ब्रह्माण्ड के समान विस्तार सम्बन्धी हब्बल की खोज के प्रत्युत्तर में अमरीकी भौतिकीविद हावर्ड राबर्टसन् और ब्रिटिश गणितज्ञ आर्थर वॉकर द्वारा सन् 1935 में समान मॉडल नहीं खोज लिए गए।

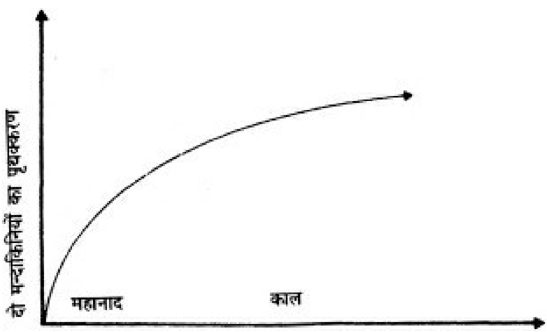
यद्यपि फ्रीडमैन ने तो केवल एक ही मॉडल खोजा था लेकिन वस्तुतः ऐसे तीन विभिन्न प्रकार के मॉडल हैं जो फ्रीडमैन की दो आधारभूत अवधारणाओं के अनुरूप कार्य करते हैं। पहले प्रकार के मॉडल में (जिसकी खोज फ्रीडमैन ने की थी) ब्रह्माण्ड का पर्याप्त रूप से इतनी धीमी गति से विस्तार हो रहा है कि विभिन्न मन्दाकिनियों के बीच गुरुत्वाकर्षण इस विस्तार को धीमा कर देता है और अन्ततोगत्वा रोक देता है। उसके उपरान्त मन्दाकिनियाँ एक-दूसरे की ओर आकर्षित होना प्रारम्भ कर देती हैं और ब्रह्माण्ड सिकुड़ने लगता है। चित्र 3.2 यह प्रदर्शित करता है कि समय की वृद्धि के साथ किस प्रकार दो पड़ोसी मन्दाकिनियों के बीच की दूरी परिवर्तित हो जाती है। यह शून्य से प्रारम्भ होती है, अधिकतम तक बढ़ती जाती है और फिर बढ़ते-बढ़ते पुनः शून्य पर पहुँच जाती है। दूसरे प्रकार के समाधान में ब्रह्माण्ड इतनी अधिक तीव्र गति से फैल रहा है कि गुरुत्वाकर्षण इसे कभी रोक नहीं सकता यद्यपि वह उसे थोड़ा सा धीमा अवश्य कर देता है। चित्र 3.3 इस मॉडल में दो पड़ोसी मन्दाकिनियों का पृथक्करण प्रदर्शित करता है। यह शून्य से प्रारम्भ होता है और अन्ततः मन्दाकिनियाँ एक नियमित व सतत वेग से दूर भाग रही हैं। अन्त में, एक तीसरा समाधान है जिसमें ब्रह्माण्ड का विस्तार पर्याप्त रूप से इतनी तेज गति से हो रहा है कि यह पुनः ध्वस्त नहीं हो सकता। इस स्थिति में जैसाकि चित्र 3.4 में प्रदर्शित किया गया है, पृथक्करण शून्य से ही प्रारम्भ होता है और हमेशा बढ़ता ही जाता है। फिर भी किसी तरह जिस वेग से मन्दाकिनियाँ एक-दूसरे से दूर हट रही हैं वह वेग धीरे-धीरे कम होता जाता है, यद्यपि यह शून्य तक बिल्कुल कभी नहीं पहुँचता है।



चित्र 3.2



चित्र 3.3



चित्र 3.4

पहलेवाले फ्रीडमैन मॉडल का एक विशिष्ट लक्षण यह है कि इसमें ब्रह्माण्ड आकाश में अनन्त नहीं है परन्तु न ही आकाश की कोई सीमा है। गुरुत्वाकर्षण इतना प्रबल है कि आकाश अपने चारों ओर झुक गया है और इसे पृथ्वी के पृष्ठतल की भाँति बना दिया है। यदि कोई पृथ्वी के पृष्ठतल पर किसी एक निश्चित दिशा में यात्रा जारी रखता है तो उसे किसी दुर्गम अलंघ्य अवरोध का सामना कभी नहीं करना पड़ता या वह किसी छोर या किनारे से गिर नहीं जाता, बल्कि अन्ततः लौटकर वहीं आ जाता है जहाँ से उसने यात्रा प्रारम्भ की थी। फ्रीडमैन के पहले मॉडल में, आकाश ठीक ऐसा ही है, परन्तु पृथ्वी के पृष्ठतल की दो विमाओं के स्थान पर तीन विमाएँ हैं। चौथी विमा, काल, भी विस्तार में सीमाबद्ध है, परन्तु यह दो छोर या सीमाओंवाली एक रेखा के समान है जिसमें एक सिरा प्रारम्भ है तथा दूसरा सिरा अन्त। हम बाद में यह देखेंगे कि जब कोई क्वाण्टम यान्त्रिकी के अनिश्चितता के सिद्धान्त के साथ सामान्य आपेक्षिकता को जोड़

देता है तो आकाश (space) और काल दोनों के लिए, बिना किन्हीं किनारों या सीमा-रेखाओं के, सीमित होना सम्भव हो जाता है।

यह अवधारणा कि कोई भी ब्रह्माण्ड के चारों ओर सीधा चक्कर लगा सकता है और घूमकर ठीक वहीं अपनी यात्रा समाप्त कर सकता है जहाँ से उसने प्रारम्भ की थी, विज्ञान कथा-साहित्य के लिए एक अच्छी सामग्री प्रस्तुत करता है, परन्तु इसका कोई व्यावहारिक महत्त्व नहीं है, क्योंकि यह दिखाया जा सकता है कि यात्रा पूरी होने से पहले ही ब्रह्माण्ड पुनः ध्वस्त होकर शून्य आकार का हो जाएगा। ब्रह्माण्ड का अन्त होने से पूर्व ही उसी स्थान पर यात्रा समाप्त करने के लिए जहाँ से आपने इसे प्रारम्भ किया था आपको प्रकाश के वेग से भी अधिक तेज वेग से यात्रा करने की आवश्यकता पड़ेगी—और इसकी अनुमति नहीं है।

फ्रीडमैन के प्रथम प्रकार के मॉडल में जिसमें ब्रह्माण्ड का विस्तार भी होता है तथा यह पुनः ध्वस्त भी होता है, अन्तरिक्ष पृथ्वी के पृष्ठतल के समान अपने चारों ओर झुका हुआ है। अतः यह विस्तार में सीमित है। दूसरे प्रकार के मॉडल में, जिसमें ब्रह्माण्ड सदैव विस्तृत होता रहता है, अन्तरिक्ष घोड़े की काठी के पृष्ठतल के समान दूसरे तरीके से मुड़ जाता है। अतः इस स्थिति में आकाश अनन्त है। अन्त में फ्रीडमैन के तीसरे प्रकार के मॉडल में, विस्तार के क्रान्तिक दर के साथ अन्तरिक्ष सपाट है (और इसीलिए अनन्त भी है)।

परन्तु फ्रीडमैन का कौन सा मॉडल हमारे ब्रह्माण्ड की व्याख्या करता है? क्या ब्रह्माण्ड अन्ततोगत्वा फैलना बन्द कर देगा और सिकुड़ना शुरू हो जाएगा या यह हमेशा फैलता ही रहेगा? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें ब्रह्माण्ड के विस्तार की वर्तमान दर तथा उसके वर्तमान औसत घनत्व को जानने की आवश्यकता है। यदि घनत्व विस्तार की दर द्वारा निर्धारित एक निश्चित क्रान्तिक मान से कम है, तो गुरुत्वाकर्षण इतना कमजोर होगा कि यह विस्तार को नहीं रोक सकता और यदि घनत्व क्रान्तिक मान की अपेक्षा ज्यादा है तो गुरुत्वाकर्षण भविष्य में किसी समय विस्तार को रोक देगा तथा ब्रह्माण्ड को पुनः ध्वस्त करा देगा।

जिन वेगों पर दूसरी मन्दाकिनियाँ हमसे दूर भाग रही हैं, डॉप्लर-प्रभाव का प्रयोग करके उनके मापन द्वारा हम विस्तार की वर्तमान दर निर्धारित कर सकते हैं। यह कार्य बहुत सही-सही किया जा सकता है। बहरहाल, मन्दाकिनियों की दूरियाँ इसलिए बहुत अच्छी तरह ज्ञात नहीं हैं क्योंकि हम केवल अप्रत्यक्ष रूप से ही उन्हें माप सकते हैं। इसीलिए जो कुछ हम जानते हैं वह केवल इतना है कि ब्रह्माण्ड प्रत्येक एक अरब वर्षों में 6 से 10 प्रतिशत के हिसाब से फैल रहा है। हालाँकि ब्रह्माण्ड के वर्तमान औसत घनत्व के बारे में हमारी अनिश्चितता और भी ज्यादा है। यदि हम उन सभी तारों के पदार्थ की द्रव्यमान मात्रा को जोड़ दें जिन्हें हम अपनी मन्दाकिनी (आकाशगंगा) में या दूसरी मन्दाकिनियों में देख सकते हैं तो कुल जोड़ ब्रह्माण्ड के विस्तार को रोकने के लिए आवश्यक मात्रा के सौवें हिस्से से भी कम होगा, चाहे हम विस्तार की दर का निम्नतम अनुमान ही लगा लें। हमारी आकाशगंगा तथा अन्य मन्दाकिनियों में, तथापि, काफी बड़े परिमाण में अदीप्त या कृष्ण पदार्थ (dark matter) अवश्य ही होना चाहिए जिसे हम प्रत्यक्ष रूप से नहीं देख सकते परन्तु हम यह जानते हैं कि मन्दाकिनियों में तारों की कक्षाओं पर इसके गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव के कारण, इसका अस्तित्व अवश्य होना चाहिए। इसके अतिरिक्त, अधिकांश मन्दाकिनियाँ गुच्छों में पाई जाती हैं और इन गुच्छों में मन्दाकिनियों के बीच और भी अधिक अदीप्त पदार्थ की उपस्थिति होनी चाहिए, जो मन्दाकिनियों की गति को प्रभावित करता है। जब हम इस सारे अदीप्त पदार्थ को भी जोड़ लेते हैं, तब भी हम इस विस्तार को रोकने के लिए आवश्यक मात्रा का मात्र लगभग दसवाँ हिस्सा ही पाते हैं। बहरहाल, हम इस सम्भावना को बिल्कुल नकार नहीं सकते कि शायद पदार्थ का कोई और स्वरूप भी हो सकता है जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में लगभग समान रूप से आवंटित हो और जिसका हम अभी तक पता न लगा पाए हों तथा जो विस्तार को रोकने के लिए आवश्यक क्रान्तिक मान तक ब्रह्माण्ड के औसत घनत्व में शायद अभी भी वृद्धि कर सके। अतः वर्तमान प्रमाण यह सुझाते हैं कि ब्रह्माण्ड सम्भवतः सदैव फैलता रहेगा, परन्तु वह सब कुछ जिसके बारे में हम वास्तव में आश्वस्त हो सकते हैं, यह तथ्य है

कि चाहे ब्रह्माण्ड पुनः ध्वस्त होने जा रहा हो, ऐसा कम-से-कम अगले दस अरब वर्षों तक नहीं होगा, क्योंकि कम-से-कम इतने ही लम्बे समय से यह पहले से ही फैल रहा है। इससे हमें बेकार में ही चिन्तित नहीं होना चाहिए। उस समय तक, यदि हमने सौरमण्डल से बाहर बस्तियाँ नहीं बसाईं तो मानव जाति तब से काफी पहले खत्म हो चुकी होगी तथा सूर्य भी साथ-साथ बुझकर नष्ट हो चुका होगा।

फ्रीडमैन के सभी समाधानों में यह एक विशिष्ट लक्षण निहित है कि अतीत में किसी समय दस अरब से बीस अरब वर्षों के बीच पड़ोसी मन्दाकिनियों की दूरी हर दशा में शून्य रही होगी। उस समय जिसे हम महाविस्फोट कहते हैं, ब्रह्माण्ड का घनत्व तथा दिक्-काल की वक्रता अनन्त रही होगी। क्योंकि गणित वास्तव में अनन्त संख्याओं को नहीं सँभाल सकता, इसका तात्पर्य यह हुआ कि सामान्य आपेक्षिकता का सिद्धान्त (जिस पर फ्रीडमैन के समाधान आधारित हैं) यह सम्भावना व्यक्त करता है कि ब्रह्माण्ड में एक ऐसा बिन्दु है जहाँ एक सिद्धान्त स्वयं ही विफल हो जाता है। ऐसा एक बिन्दु उसी स्थिति का एक उदाहरण है जिसे गणितज्ञ 'विलक्षणता बिन्दु' कहते हैं। वस्तुतः विज्ञान के हमारे सारे सिद्धान्त इसी अवधारणा पर आधारित हैं कि दिक्-काल अबाध और लगभग सपाट है, अतः वे एक अत्यन्त सघन व तप्त महाविस्फोट विलक्षणता (bigbang singularity) पर आकर विफल हो जाते हैं जहाँ दिक्-काल की वक्रता अनन्त होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि चाहे महाविस्फोट से पूर्व घटनाक्रम रहा हो, हम उनका उपयोग यह निर्धारित करने के लिए नहीं कर सकते कि बाद में क्या घटित होगा क्योंकि महाविस्फोट पर पूर्वानुमेयता (predictibility) ही विफल हो जाएगी।

तद्नुरूप, जैसीकि स्थिति है, हम केवल इतना ही जानते हैं कि महाविस्फोट (महानाद) के समय से क्या घटित हुआ है, तो इससे हम यह निर्धारित नहीं कर सकते कि इससे पहले क्या हुआ था। जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है, महाविस्फोट से पहले की घटनाओं का कोई परिणाम नहीं निकल सकता, इसीलिए वे ब्रह्माण्ड के वैज्ञानिक मॉडल का हिस्सा नहीं होने चाहिए। अतः हमें उन्हें मॉडल से निकाल देना चाहिए और कहना चाहिए कि महाविस्फोट के साथ ही काल की भी उत्पत्ति हुई।

कई लोग इस विचार को पसन्द नहीं करते कि काल की उत्पत्ति महाविस्फोट के साथ हुई, शायद इसीलिए क्योंकि इसमें दैवी हस्तक्षेप की गन्ध आती है। (दूसरी और कैथोलिक चर्च ने महाविस्फोट मॉडल को तुरन्त स्वीकार कर लिया तथा सन् 1951 में आधिकारिक रूप से इसे बाइबिल के अनुरूप घोषित कर दिया।) अतः इस निष्कर्ष से बचने के लिए कि कभी कोई महाविस्फोट हुआ था, बहुत सारे प्रयास किए गए। जिस प्रस्ताव को सबसे पहले समर्थन प्राप्त हुआ था, वह स्थायी दशा सिद्धान्त कहलाता है। नाजी-अधिगृहीत ऑस्ट्रिया से आए दो शरणार्थी ब्रह्माण्डिकीविद हरमैन बांडी तथा थॉमस गोल्ड ने एक ब्रिटिश शोधकर्ता फ्रेड हॉयल, जिन्होंने उनके साथ युद्ध के दौरान राडार के विकास पर शोध कार्य किया था, के साथ मिलकर सन् 1948 में इस सिद्धांत को विचारार्थ प्रस्तुत किया था। परिकल्पना यह थी कि जैसे-जैसे मन्दाकिनियाँ एक-दूसरे से दूर हटती गईं, उनके बीच के अन्तराल में निरन्तर नई मन्दाकिनियाँ उस नए पदार्थ से आकार ग्रहण कर रही थीं जो पदार्थ की विरलता को सन्तुलित करने के लिए निरन्तर उत्पन्न होता जा रहा था। अतः मोटे तौर पर ब्रह्माण्ड हर काल तथा अन्तरिक्ष में हर बिन्दु से एक समान दिखाई देगा अर्थात् यह समरूप तथा समदैशिक है। पदार्थ की निरन्तर उत्पत्ति होते रहने को संगत ठहराने के लिए स्थायी दशा सिद्धान्त को सामान्य आपेक्षिकता में एक संशोधन की आवश्यकता थी; परन्तु नए पदार्थ की उत्पत्ति की दर इतनी कम थी (एक घन किलोमीटर में लगभग एक कण प्रतिवर्ष) कि इसका पता चल पाना किसी भी वैज्ञानिक उपकरण से सम्भव प्रतीत नहीं होता परन्तु यह किसी भी वैज्ञानिक प्रयोग के विरोध में नहीं था। यह सिद्धांत प्रथम अध्याय में वर्णित अर्थ के परिप्रेक्ष्य में एक अच्छा वैज्ञानिक सिद्धांत था; यह सरल था तथा इसने निश्चित पूर्वानुमान प्रस्तुत किए, जिन्हें प्रेक्षण द्वारा परखा जा सकता था। इन पूर्वानुमानों में से एक यह था कि आकाश के किसी निश्चित आयतन में विभिन्न दिशाओं में मन्दाकिनियों या इन जैसे

अन्य पिण्डों की संख्या लगभग बराबर होनी चाहिए चाहे हम जब कभी भी और जहाँ कहीं भी ब्रह्माण्ड में देखें। सन् 1950 के दशक के अन्तिम वर्षों में तथा 1960 के दशक के प्रारम्भिक वर्षों में कैम्ब्रिज में मार्टिन राइल के नेतृत्व में (जिन्होंने युद्ध के दौरान बॉडी, गोल्ड तथा हॉयल के साथ भी राडार के विकास पर शोध कार्य किया था) खगोलज्ञों के एक दल द्वारा बाह्य अन्तरिक्ष से आनेवाली रेडियो तरंगों के स्रोतों का एक सर्वेक्षण किया गया। कैम्ब्रिज दल ने यह बताया कि इन रेडियो तरंगों के स्रोतों में से अधिकांश हमारी आकाशगंगा से बाहर स्थित होने चाहिए (वास्तव में उनमें से कई को दूसरी मन्दाकिनियों के रूप में पहचाना जा सकता था) और यह भी कि तीव्र शक्ति के स्रोतों की अपेक्षा क्षीण शक्ति के स्रोतों की संख्या कहीं अधिक थी। उन्होंने इसका यह अर्थ निकाला कि क्षीण शक्ति के स्रोत अपेक्षाकृत अधिक दूरस्थ थे और तीव्र शक्ति के स्रोत समीप। फिर अत्यन्त दूर स्थित स्रोतों की अपेक्षा समीप में ही स्थित स्रोतों के लिए दिक् के आयतन की प्रति इकाई में सामान्य स्रोतों की संख्या कम लगती थी। इसका अर्थ यह निकाला जा सकता था कि हम ब्रह्माण्ड में एक विशाल क्षेत्र के केन्द्र में हैं जिसमें कहीं और की अपेक्षा स्रोतों की संख्या कम होती है। वैकल्पिक रूप में, इसका तात्पर्य यह हो सकता था कि अतीत में उस समय जबकि रेडियो तरंगों ने हम तक पहुँचने के लिए अपनी यात्रा शुरू की थी, ये स्रोत आज की अपेक्षा अधिक संख्या में थे। दोनों में से प्रत्येक स्पष्टीकरण स्थायी दशा सिद्धान्त के पूर्वानुमानों का खण्डन करता था। इसके अतिरिक्त सन् 1965 में पेंजियास और क्लिसन द्वारा सूक्ष्म तरंग विकिरण की खोज ने भी यह संकेत दिया था कि ब्रह्माण्ड अतीत में काफी सघन रहा होगा। अतः स्थायी दशा सिद्धान्त को त्यागना पड़ा।

सन् 1963 में, इवगेनी लिफशित्स और आइजेक खलातनिकोव नामक दो रूसी वैज्ञानिकों द्वारा इस निष्कर्ष कि कोई महाविस्फोट अवश्य हुआ होगा तथा इसी के साथ ही काल की भी उत्पत्ति हुई होगी, से बचने का एक दूसरा प्रयास किया गया। उन्होंने यह सुझाव दिया कि महाविस्फोट अकेले फ्रीडमैन के मॉडलों, जो वास्तविक ब्रह्माण्ड के मात्र अनुपात-भर थे, की विशिष्टता हो सकती है। शायद उन सारे मॉडलों में जो स्थूलतः वास्तविक ब्रह्माण्ड के समान थे, केवल फ्रीडमैन के मॉडलों में ही महाविस्फोट विलक्षणता की स्थिति थी। फ्रीडमैन के मॉडलों में सभी मन्दाकिनियाँ एक-दूसरे से सीधे दूर भाग रही हैं—अतः यह कोई चौंकानेवाली बात नहीं है कि अतीत में किसी समय कभी वे सब एक ही स्थान पर थीं। बहरहाल, वास्तविक ब्रह्माण्ड में, मन्दाकिनियाँ एक-दूसरे से एकदम सीधे-सीधे दूर नहीं भाग रही हैं— उनमें थोड़ा सा पार्श्वमार्गी वेग भी है। अतः वास्तविकता में उन्हें ठीक एक ही स्थान पर रहने की आवश्यकता कभी नहीं रही है, केवल आपस में बहुत समीप रही हैं। शायद तब ब्रह्माण्ड का वर्तमान विस्तार महाविस्फोट विलक्षणता (big bang singularity) का परिणाम नहीं था, बल्कि यह एक पूर्ववर्ती संकुचन की अवस्था का परिणाम था; जैसे ही ब्रह्माण्ड संकुचित होकर ध्वस्त हो गया, इसके अन्दर सारे कण आपस में टकराए नहीं होंगे, बल्कि वे पास से गुजर गए और फिर एक-दूसरे से दूर होते गए और इस प्रकार ब्रह्माण्ड का वर्तमान विस्तार प्रारम्भ हुआ। फिर हम यह कैसे कह सकते थे कि वास्तविक ब्रह्माण्ड को एक महाविस्फोट के साथ शुरू होना चाहिए था या नहीं? लिफशित्स तथा खलातनिकोव ने ब्रह्माण्ड के उन मॉडलों का अध्ययन किया जो मोटे तौर पर फ्रीडमैन के मॉडलों के अनुरूप थे परन्तु साथ ही उन्होंने वास्तविक ब्रह्माण्ड में मन्दाकिनियों के यादृच्छिक (random) वेग तथा अनियमितताओं को ध्यान में रखा। उन्होंने यह विचार प्रस्तुत किया कि ऐसे मॉडल महाविफोस्ट से प्रारम्भ हो सकते थे, हालाँकि मन्दाकिनियाँ सदैव एक-दूसरे से प्रत्यक्ष रूप से दूर नहीं भाग रही थीं। परन्तु उन्होंने यह दावा किया कि ऐसा अब भी केवल कुछ निश्चित अपवादस्वरूप मॉडलों में ही सम्भव था जिनमें सारी मन्दाकिनियाँ ठीक सीधे भाग रही थीं। उन्होंने यह तर्क रखा कि चूँकि महानाद विलक्षणतामुक्त फ्रीडमैन मॉडल महानाद विलक्षणतायुक्त मॉडलों की अपेक्षा सीमित रूप से अधिक थे हमें यह निश्चित निष्कर्ष निकाल लेना चाहिए कि वास्तविकता में महाविस्फोट नहीं हुआ था। हालाँकि बाद में उन्होंने यह अनुभव किया कि विलक्षणता (singularity) की स्थितिवाले फ्रीडमैन जैसे मॉडलों का और अधिक काफी

साधारण वर्ग भी था, और जिसमें मन्दाकिनियों को किसी विशेष प्रकार से गतिशील नहीं होना पड़ता था। अतः उन्होंने सन् 1970 में अपने दावे को वापस ले लिया।

लिफशित्स और खलातनिकोव का कार्य अत्यन्त उपयोगी था क्योंकि इसने यह स्पष्ट कर दिया कि आपेक्षिकता का सामान्य सिद्धान्त सही था तो ब्रह्माण्ड निश्चित रूप से महाविस्फोट विलक्षणता की स्थिति से गुजर सकता था। हालाँकि इसने यह कठिन परन्तु महत्त्वपूर्ण प्रश्न हल नहीं किया; क्या सामान्य आपेक्षिकता यह सम्भावना व्यक्त करती है कि हमारे ब्रह्माण्ड व काल की उत्पत्ति महाविस्फोट से होनी चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर सन् 1965 में एक ब्रिटिश गणितज्ञ तथा भौतिकीविद रोजर पेनरोज द्वारा दिए गए एक बिल्कुल भिन्न ढंग से प्राप्त हुआ। सामान्य आपेक्षिकता में प्रकाश शंकु जिस तरह से व्यवहार करते हैं उस तरीके का प्रयोग करके तथा इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि गुरुत्व सदैव आकर्षित करनेवाला होता है, उन्होंने यह बताया कि अपने ही गुरुत्व बल के प्रभाव से ध्वस्त हो जानेवाला एक तारा एक ऐसे क्षेत्र में फँस जाता है जिसका पृष्ठतल अन्ततोगत्वा सिकुड़कर शून्य आकार का हो जाता है। और, चूँकि उस क्षेत्र का पृष्ठतल सिकुड़कर शून्य हो जाता है तब ऐसा ही इसका आयतन भी हो जाना चाहिए। तारे का समस्त पदार्थ शून्य आयतन के क्षेत्र में सम्पीडित हो जाएगा, इसलिए पदार्थ का घनत्व एवं दिक्-काल की वक्रता असीमित हो जाएगी। दूसरे शब्दों में दिक्-काल के कृष्ण-विवर (black hole) के नाम से जाने जानेवाले क्षेत्र के अन्दर विलक्षणता का बिन्दु हमें तब प्राप्त होता है।

ऊपरी तौर पर, पेनरोज के निष्कर्ष केवल तारों पर ही लागू होते थे, इन्हें इस प्रश्न के समाधान के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना था कि क्या सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अपने अतीत में महाविस्फोट विलक्षणता की स्थिति से गुजर चुका है। हालाँकि उस समय जबकि पेनरोज ने अपना प्रमेय सामने रखा, मैं एक शोध छात्र था तथा बड़ी नाउम्मीदी से एक ऐसी समस्या (problem) की तलाश में था जिस पर मैं अपनी पी-एच.डी. के लिए शोध प्रबन्ध पूरा कर सकूँ। दो वर्ष पहले मैं चिकित्सीय परीक्षण करने पर ए.एल.एस. से पीड़ित पाया गया था जिसे सामान्यतः मोटर न्यूरान रोग अथवा लाउ गेहरिग्स रोग (Lou Gehrig's Disease) कहा जाता है, और मुझे यह समझाया गया था कि मैं केवल एक या दो वर्ष और जीवित रह सकूँगा। इन परिस्थितियों में मुझे अपनी पी-एच.डी. पर कार्य करने की कोई तुक नजर नहीं आ रही थी—मुझे उस कार्य के सम्पन्न होने तक जीवित रहने की आशा नहीं थी। तब भी, दो वर्ष व्यतीत हो चुके थे और मेरा स्वास्थ्य इतना अधिक खराब नहीं था। वास्तव में हालात मेरे लिए सुधरते जा रहे थे और एक बहुत सुशील युवती जेन वाइल्ड से मेरी मँगनी हो चुकी थी। परन्तु विवाह करने के लिए मुझे एक नौकरी की आवश्यकता थी, और एक नौकरी प्राप्त करने के लिए मुझे पी-एच.डी. की आवश्यकता थी।

सन् 1965 में, मैंने पेनरोज के प्रमेय के बारे में पढ़ा था कि गुरुत्वीय निपात (gravitational collapse) की प्रक्रिया से गुजर रहे किसी पिण्ड को अन्ततः एक विलक्षणता का स्वरूप ग्रहण कर लेना चाहिए। मैंने शीघ्र ही यह अनुभव कर लिया कि यदि कोई पेनरोज के प्रमेय में काल की दिशा को उलट दे जिससे कि ध्वस्त होने की प्रक्रिया विस्तार में परिवर्तित हो जाए तो प्रमेय की शर्तें तब भी वैसी ही रहेंगी, बशर्ते ब्रह्माण्ड वर्तमान समय में विशाल स्तर पर स्थूलतः फ्रीडमैन मॉडल के समान हो। पेनरोज के प्रमेय ने विचारार्थ यह तर्क प्रस्तुत किया था कि किसी भी निपातशील तारे को हर दशा में एक विलक्षणता की स्थिति को प्राप्त हो जाना चाहिए; काल की दिशा उलट देने के पश्चात् के तर्क ने यह स्पष्ट कर दिया कि फ्रीडमैन जैसा कोई फैलता हुआ ब्रह्माण्ड हर दशा में विलक्षणता की स्थिति से प्रारम्भ हुआ होगा। तकनीकी कारणों से पेनरोज के प्रमेय में इस बात की आवश्यकता थी कि आकाश में ब्रह्माण्ड अनन्त हो। इसीलिए मैं वस्तुतः इस तथ्य का उपयोग यह सिद्ध करने में कर सका कि विलक्षणता की स्थिति केवल उसी दशा में होनी चाहिए जबकि ब्रह्माण्ड पुनः ध्वस्त होने से बचने के लिए पर्याप्त तीव्र गति से फैल रहा हो (चूँकि फ्रीडमैन के केवल वही मॉडल आकाश में असीमित थे।)

अगले कुछ वर्षों के दौरान, उन सभी प्रमेयों, जो यह सिद्ध करते थे कि विलक्षणता की स्थिति निश्चित रूप से घटित होनी चाहिए, से इस शर्त तथा अन्य तकनीकी शर्तों को दूर करने के

लिए मैंने कई गणितीय तकनीक विकसित किए। इन सबका परिणाम पेनरोज तथा मेरे द्वारा सन् 1970 में संयुक्त रूप से प्रकाशित किए गए एक शोध लेख के रूप में देखने को मिला जिसने अन्त में यह सिद्ध कर दिया कि यदि सामान्य आपेक्षिकता बिलकुल सही है तथा ब्रह्माण्ड में उतना ही पदार्थ है जितने का हम प्रेक्षण करते हैं तो निश्चित रूप से एक महाविस्फोट विलक्षणता की स्थिति रही होगी। हमारे काम का बड़ा विरोध हुआ, आंशिक रूप से कुछ तो रूसियों की तरफ से वैज्ञानिक निर्धार्यता (determinism) में उनके मार्क्सवादी विश्वास के कारण, तथा कुछ उन लोगों की तरफ से जो यह अनुभव करते थे कि विलक्षणता की स्थिति का सम्पूर्ण विचार ही अरुचिकर है तथा इसने आइंस्टाइन के सिद्धान्त का सौन्दर्य ही नष्ट कर दिया। बहरहाल, कोई भी गणितीय-प्रमेय के साथ वास्तव में तर्क नहीं कर सकता। इसीलिए अन्त में हमारा शोध कार्य साधारणतया स्वीकार कर लिया गया और आजकल लगभग प्रत्येक व्यक्ति यह मानता है कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति महाविस्फोट विलक्षणता की स्थिति से हुई। शायद यह एक विडम्बना है कि अपने विचार बदलने के पश्चात् अब मैं दूसरे भौतिकीविदों को यह समझाने का प्रयास कर रहा हूँ कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के समय वस्तुतः विलक्षणता (singularity) जैसी कोई स्थिति नहीं थी —जैसाकि हम बाद में देखेंगे, यदि एक बार क्वाण्टम प्रभावों को ध्यान में रखा जाए तो इसकी सम्भावना समाप्त हो सकती है।

इस अध्याय में हम यह देख चुके हैं कि किस प्रकार एक अर्धशताब्दी से भी कम समय में, ब्रह्माण्ड के बारे में सहस्राब्दियों से निर्मित मनुष्य के विचार पूर्ण रूप से बदल गए हैं। हब्बल की यह खोज कि ब्रह्माण्ड का विस्तार हो रहा है तथा ब्रह्माण्ड की विशालता में हमारे अपने ग्रह की क्षुद्रता का अनुभव तो बस आरम्भिक बिन्दु थे। ज्यों-ज्यों प्रायोगिक एवं सैद्धान्तिक प्रमाण बढ़ते गए, यह अधिकाधिक स्पष्ट होता गया कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति निश्चित रूप से काल के साथ ही हुई होगी, सन् 1970 तक यह पेनरोज तथा मेरे द्वारा आइंस्टाइन के आपेक्षिकता के सामान्य सिद्धान्त के आधार पर अन्तिम रूप से सिद्ध कर दिया गया था। उस प्रमाण ने यह स्पष्ट कर दिया कि सामान्य आपेक्षिकता मात्र एक अधूरा सिद्धान्त है; यह हमें यह नहीं बता सकता कि ब्रह्माण्ड का प्रारम्भ किस प्रकार हुआ, क्योंकि वह यह पूर्वानुमान लगाता है कि इस सहित समस्त भौतिक सिद्धान्त ब्रह्माण्ड के प्रारम्भिक पलों पर आकर पूर्णतः विफल हो जाते हैं। बहरहाल, सामान्य आपेक्षिकता मात्र एक आंशिक सिद्धान्त होने का दावा करता है, अतः जो कुछ भी विलक्षणता प्रमेय (singularity theorems) वास्तव में स्पष्ट करते हैं वह केवल यह है कि ब्रह्माण्ड की बहुत ही प्रारम्भिक अवस्था में निश्चित रूप से एक ऐसा समय रहा होगा जब ब्रह्माण्ड इतना छोटा था कि कोई भी, बीसवीं शताब्दी के दूसरे महान आंशिक सिद्धान्त—क्वाण्टम यान्त्रिकी—के छोटे स्तर के प्रभावों को बिल्कुल भी अनदेखा नहीं कर सकता था। सन् 1970 के दशक के प्रारम्भ में ब्रह्माण्ड को बेहतर तरीके से समझने के लिए, हम अपनी खोज को असाधारण रूप से विशालता के अपने सिद्धान्त से असाधारण रूप से सूक्ष्मता के अपने सिद्धान्त की ओर मोड़ने के लिए विवश हो गए। क्वाण्टम यान्त्रिकी के उस सिद्धान्त की व्याख्या पहले की जाएगी, उसके बाद हम दोनों आंशिक सिद्धान्तों को गुरुत्व के एक अकेले क्वाण्टम सिद्धान्त (a single quantum theory of gravity) के रूप में संयुक्त करने का प्रयास करेंगे।

अध्याय *4*

अनिश्चितता का सिद्धान्त

वैज्ञानिक सिद्धान्तों, विशेष रूप से न्यूटन के सिद्धान्त की सफलता ने 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में एक फ्रांसीसी वैज्ञानिक मार्किस द लाप्लास को यह तर्क प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित किया था कि ब्रह्माण्ड पूर्णतः निर्धार्य है। लाप्लास ने यह तर्क विचारार्थ प्रस्तुत किया कि वैज्ञानिक नियमों का एक ऐसा समुच्चय होना चाहिए जो उस अवस्था में जबकि हम एक निश्चित समय पर ब्रह्माण्ड की पूर्ण स्थिति को जानते हों, हमें ब्रह्माण्ड में घटित होनेवाली किसी भी घटना का पूर्वानुमान लगाने में समर्थ कर दे। उदाहरण के लिए, यदि हम किसी नियत समय पर सूर्य तथा ग्रहों की स्थिति तथा वेग जानते हैं तो हम किसी अन्य समय पर सौरमण्डल की स्थिति का परिगणन करने के लिए न्यूटन के नियमों का उपयोग कर सकते हैं। इस मामले में निर्धार्यता बिल्कुल साफ जाहिर होती है, परन्तु लाप्लास इससे आगे बढ़कर यह परिकल्पना भी करने लगे कि मानव-व्यवहार सहित प्रत्येक वस्तु को नियन्त्रित करने के लिए ऐसे ही नियम उपलब्ध हैं।

वैज्ञानिक निर्धार्यता के सिद्धान्त का ऐसे कई लोगों द्वारा कड़ा विरोध किया गया जो यह अनुभव करते थे कि यह सिद्धान्त संसार की नियति में ईश्वर के हस्तक्षेप करने की स्वतन्त्रता का अतिक्रमण करता है। परन्तु इस शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों तक यही विज्ञान की एक गानक अवधारणा रही। इस मान्यता को त्यागने की आवश्यकता के पहले संकेत उस समय मिले जब ब्रिटिश वैज्ञानिक लॉर्ड रैले तथा सर जेम्स जीन्स की गणनाओं ने यह सुझाव दिया कि किसी भी तप्त वस्तु अथवा पिण्ड, जैसे कि एक तारे को हर दशा में असीमित दर से ऊर्जा विकीरित करनी चाहिए। उन नियमों के अनुसार जिनमें हम उस समय विश्वास करते थे, एक तप्त पिण्ड को समान रूप से सभी आवृत्तियों पर विद्युत चुम्बकीय तरंगों (जैसे रेडियो तरंगें, दृश्य प्रकाश या एक्स किरणें) का उत्सर्जन करना चाहिए। उदाहरण के लिए एक तप्त पिण्ड को एक सौ और दो सौ खरब तरंग प्रति सेकिण्ड के बीच की आवृत्तियों पर ऊर्जा का वही परिमाण तरंगों के रूप में विकीरित करना चाहिए जितना कि दो सौ और तीन सौ खरब तरंग गति प्रेति सेकिण्ड के बीच की आवृत्तियों पर उसके द्वारा (विकीरित) होता है। अब चूँकि प्रति सेकिण्ड तरंगों की संख्या असीमित है, इसीलिए इसका अर्थ यह हुआ कि समस्त विकीरित ऊर्जा असीमित होगी।

स्पष्ट रूप से हास्यास्पद इस निष्कर्ष से बचने के लिए, सन् 1900 में एक जर्मन वैज्ञानिक मैक्स प्लांक ने यह सुझाव रखा कि प्रकाश, एक्स-किरणें तथा दूसरी तरंगें मनमाने दर से उत्सर्जित नहीं हो सकतीं, बल्कि वे केवल निश्चित पैकेटों में ही उत्सर्जित हो सकती हैं जिन्हें उन्होंने क्वाण्टा नाम दिया। इसके अतिरिक्त, हर क्वाण्टम में ऊर्जा की एक निश्चित मात्रा होती है जो तरंगों की आवृत्ति बढ़ने के साथ-साथ परिमाण में बढ़ती जाती है। अतः एक पर्याप्त रूप से उच्च आवृत्ति पर, एक अकेले क्वाण्टम के उत्सर्जन के लिए उपलब्ध ऊर्जा से अपेक्षाकृत अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होगी। इस प्रकार से उच्च आवृत्तियों पर विकिरण का उत्सर्जन घट जाएगा और इसीलिए उस पिण्ड के ऊर्जा क्षय का दर सीमित हो जाएगा।

क्वाण्टम परिकल्पना ने तप्त पिण्डों से होनेवाले विकिरण के उत्सर्जन की प्रेक्षित गति की व्याख्या तो बहुत अच्छी तरह से की, परन्तु निर्धार्यता के लिए इसके अर्थों को सन् 1926 तक

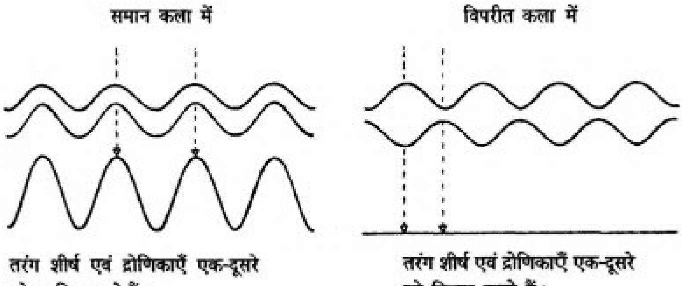
नहीं समझा गया, जब एक दूसरे जर्मन वैज्ञानिक वर्नर हाइजेनबर्ग ने अपने प्रसिद्ध अनिश्चितता के सिद्धान्त का निरूपण किया। किसी कण के वेग और उसकी भावी स्थिति का पूर्वानुमान लगाने के लिए हमें इसकी वर्तमान स्थिति और वेग का बिल्कुल शुद्ध अनुमापन करने में समर्थ होना होगा। अनुमापन करने का एक स्पष्ट तरीका कण पर प्रकाश फेंकना है। प्रकाश की कुछ तरंगें कण के द्वारा प्रकीर्णित कर दी जाएँगी और इससे उसकी स्थिति का संकेत मिल जाएगा। परन्तु हम प्रकाश के तरंग-शीर्षों के मध्य की दूरी की अपेक्षा कण की स्थिति का अधिक परिशुद्धता से निर्धारण करने में समर्थ नहीं हो सकेंगे। अतः हमें कण की स्थिति की सूक्ष्मता से अनुमापन करने के लिए लघु तरंग-दैर्घ्य का प्रकाश उपयोग में लाने की जरूरत पड़ेगी। अब प्लांक की क्वाण्टम परिकल्पना के अनुसार, हम मनमाने ढंग से प्रकाश के न्यून परिमाण का उपयोग नहीं कर सकते, हमें कम-से-कम एक क्वाण्टम का उपयोग करना ही पड़ेगा। यह क्वाण्टम कण में विक्षोभ उत्पन्न कर देगा तथा इसके वेग को इस प्रकार से परिवर्तित कर देगा जिसका पूर्वानुमान नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त, जितनी अधिक परिशुद्धता से कोई कण की स्थिति का अनुमापन करता है, उतनी ही लघु तरंग-दैर्घ्य के प्रकाश की आवश्यकता होती है और इसीलिए उस अकेले क्वाण्टम में उतनी ही अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है। इसीलिए कण के वेग में अपेक्षाकृत अधिक परिमाण में विक्षोभ उत्पन्न हो जाएगा। दूसरे शब्दों में, किसी कण की स्थिति को आप जितनी अधिक परिशुद्धता से मापने का प्रयास करते हैं, उसके वेग को आप उतनी ही कम परिशुद्धता से माप सकते हैं। और इसके विपरीत किसी कण के वेग को आप जितनी अधिक परिशुद्धता से मापने का प्रयास करते हैं, उसकी स्थिति को आप उतनी ही कम परिशुद्धता से माप सकते हैं। हाइजेनबर्ग ने यह बताया कि कण की स्थिति में अनिश्चितता, उसके वेग की अनिश्चितता तथा उसके द्रव्यमान इन तीनों का गुणनफल एक निश्चित मात्रा से कम कभी नहीं हो सकता जिसे प्लांक स्थिरांक के रूप में जाना जाता है। इसके अतिरिक्त यह सीमा किसी कण का वेग व उसकी स्थिति को मापने के तरीके पर, या कण की विशिष्टता पर निर्भर नहीं करती : हाइजेनबर्ग का अनिश्चितता का सिद्धान्त विश्व की एक आधारभूत व अपरिहार्य सम्पत्ति है।

ब्रह्माण्ड का प्रेक्षण करने के हमारे तरीके के लिए अनिश्चितता के सिद्धान्त का बड़ा गूढ़ अर्थ था। सत्तर से अधिक वर्षों के बाद भी, कई दार्शनिकों द्वारा उसके महत्त्व को पूरी तरह नहीं समझा गया और वह अब भी काफी विवादास्पद है। अनिश्चितता के सिद्धान्त ने लाप्लास द्वारा प्रतिपादित ब्रह्माण्ड के मॉडल सम्बन्धी उस वैज्ञानिक सिद्धान्त के टूटने के संकेत दे दिए थे जिसमें ब्रह्माण्ड पूर्णतः पूर्वनिर्धारित होता : यदि कोई ब्रह्माण्ड की वर्तमान स्थिति का परिशुद्धता से मापन भी नहीं कर सकता तो वह निश्चित रूप से भावी घटनाओं का भी ठीक-ठीक पूर्वानुमान नहीं लगा सकता! लेकिन हम फिर भी यह कल्पना कर सकते हैं कि नियमों का ऐसा समुच्चय है जो पूर्णतः किसी उस अलौकिक शक्ति के लिए घटनाओं को निर्धारित करता है जो इस ब्रह्माण्ड को बिना अशान्त किए इसकी वर्तमान स्थिति का प्रेक्षण कर सकती है। बहरहाल, ब्रह्माण्ड के ऐसे मॉडल हम साधारण नश्वर लोगों के लिए किसी रुचि के नहीं हैं। बेहतर तो यह लगता है कि ऑकम के रेजर के नाम से विख्यात मितव्ययिता का सिद्धान्त लागू करें तथा इस सिद्धान्त के उन समस्त विशिष्ट लक्षणों को नकार दें जिनका प्रेक्षण नहीं किया जा सकता। इसका समाधान खोजने की दिशा में सन् 1920 के दशक में हाइजेनबर्ग, इरविन श्रोडिंगर तथा पॉल डिराक को इस नए सिद्धान्त में यान्त्रिकी को पुनः निरूपित करने के लिए प्रेरित किया गया। इस सिद्धान्त को क्वाण्टम यान्त्रिकी कहा गया जोकि अनिश्चितता के सिद्धान्त पर ही आधारित थी। इस सिद्धान्त में कणों की ऐसी कोई अलग सुनिश्चित स्थितियाँ तथा वेग नहीं होते जिन्हें प्रेक्षित न किया जा सके। बल्कि उनकी एक क्वाण्टम दशा होती थी जो स्थिति तथा वेग, दोनों का संयोजन थी।

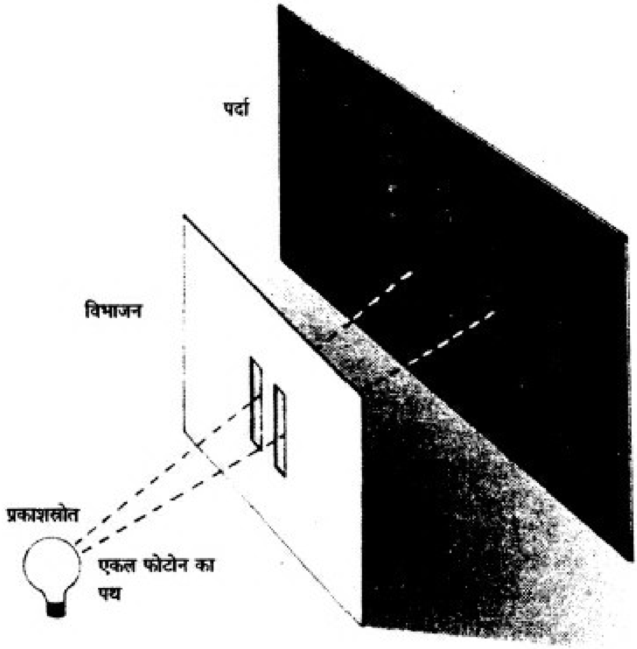
सामान्यतः क्वाण्टम यान्त्रिकी किसी भी प्रेक्षण के लिए किसी एक निश्चित निष्कर्ष की सम्भावना का पूर्वानुमान नहीं लगाती है, बल्कि यह कई सारे विभिन्न सम्भावित निष्कर्षों की भविष्यवाणी करती है और यह भी बताती है कि इनमें से हर एक कितना परिणामोन्मुख है। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि कोई उन बहुत सारे एक जैसे निकायों का, जो एक ही तरीके से प्रारम्भ

हुए, एक-सा अनुमापन करे तो वह यह पाएगा कि कुछ विशेष मामलों में अनुमापन का परिणाम 'ए' होगा तो दूसरे विभिन्न मामलों में यह परिणाम 'बी' होगा और इसी प्रकार से अनिश्चितता बनी रहेगी। कोई बस केवल कुछ करीब-करीब शुद्ध कालावधियों की भविष्यवाणी कर सकता है कि उनमें निष्कर्ष 'ए' होगा या 'बी', परन्तु कोई भी किसी व्यक्तिगत अनुमापन के विशिष्ट परिणाम का पूर्वानुमान नहीं लगा सकता। इसलिए क्वाण्टम यान्त्रिकी विज्ञान में अनियमितता, यादृच्छिकता या पूर्वाकलन की असम्भाव्यता के अपरिहार्य तत्त्व को समाविष्ट करती है। आइंस्टाइन ने इन विचारों के विकास में निभाई गई अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका के बावजूद इसका कड़ा विरोध किया। क्वाण्टम सिद्धान्त में अपने योगदान के लिए आइंस्टाइन को नोबेल पुरस्कार दिया गया। फिर भी, आइंस्टाइन ने यह स्वीकार कभी नहीं किया कि ब्रह्माण्ड संयोग से नियन्त्रित होता है। उन्होंने अपनी भावनाओं को संक्षिप्त रूप से अपने इस प्रसिद्ध कथन में व्यक्त किया था : 'ईश्वर पासा नहीं फेंकता है'। परन्तु फिर भी दूसरे अधिकांश वैज्ञानिक क्वाण्टम यान्त्रिकी को स्वीकार करने के इच्छुक थे, क्योंकि यह प्रयोगों के पूर्णतः अनुकूल थी। निःसन्देह यह उत्कृष्ट रूप से सफल सिद्धान्त रहा है और लगभग समस्त आधुनिक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के मूल में निहित है। यह ट्रांजिस्टरों और एकीकृत परिपथों (integrated circuits) के व्यवहार को नियन्त्रित करती है जो कम्प्यूटरों और टेलीविजनों जैसे इलेक्ट्रॉनिक युक्तियों के अत्यावश्यक घटक होते हैं तथा आधुनिक रसायन विज्ञान व जीव विज्ञान का भी आधार हैं। केवल गुरुत्व और व्यापक स्तर पर ब्रह्माण्ड की संरचना ही भौतिक विज्ञान के ऐसे क्षेत्र बचे हैं जिनमें क्वाण्टम यान्त्रिकी का अभी तक उचित रूप से समावेश नहीं किया गया है।

प्रकाश यद्यपि तरंगों से बना होता है, प्लांक की क्वाण्टम परिकल्पना हमें यह बताती है कि कुछ परिस्थितियों में यह ऐसे व्यवहार करता है मानो यह कणों से निर्मित हो। यह केवल क्वाण्टा या पैकेट के रूप में ही उत्सर्जित या अवशोषित किया जा सकता है। इसी तरह हाइजेनबर्ग के अनिश्चितता के सिद्धान्त का अभिप्राय यह है कि कण कुछ मायनों में तरंग सदृश ही व्यवहार करते हें; उनकी कोई सुनिश्चित स्थिति नहीं होती, बल्कि एक प्रायिकता आवंटन के रूप में ही आकाश में उनकी स्थिति कुछ फैली हुई-सी होती है। क्वाण्टम यान्त्रिकी का सिद्धान्त एक पूर्ण रूप से नए प्रकार के गणित पर आधारित है जो वास्तविक संसार का वर्णन कणों या तरंगों के रूप में बिल्कुल भी नहीं करता; केवल संसार के प्रेक्षणों को ही इस तरह से व्यक्त किया जा सकता है। इस प्रकार से क्वाण्टम यान्त्रिकी में तरंग एवं कणिका के मध्य द्वैतता होती है अर्थात् क्वाण्टम तरंग एवं कण दोनों रूप में हो सकते हैं। इसका एक महत्त्वपूर्ण परिणाम यह है कि किन्हीं दो कणों या तरंगों के बीच व्यतिकरण (interference) का प्रेक्षण किया जा सकता है। कहने का मतलब यह है कि एक तरंग के शीर्ष का दूसरे तरंग के गर्त के साथ संपात हो सकता है। ऐसी दशा में दोनों तरंगें आपस में मिलकर एक-दूसरे को प्रबलित करने की बजाय एक-दूसरे को निरस्त कर देती हैं। (चित्र 4.1)।



चित्र 4.1



चित्र 4.2

प्रकाश के मामले में व्यतिकरण का एक परिचित उदाहरण वे रंग हैं जो प्रायः साबुन के बुलबुलों में दिखाई देते हैं। ये रंग बुलबुले बनानेवाली पानी की पतली झिल्ली के दोनों तरफ से प्रकाश के परावर्तन द्वारा बनते हैं। श्वेत प्रकाश सभी विभिन्न तरंग-दैर्घ्यों वाली प्रकाश तरंगों का या रंगों का बना होता है। कुछ निश्चित तरंग-दैर्घ्यों के लिए, साबुन की पतली झिल्ली के एक तरफ से परावर्तित तरंग-शीर्षों का दूसरी तरफ से परावर्तित द्रोणिकाओं के साथ संपात होता है। इन तरंग-दैर्घ्यों के अनुरूप रंग परावर्तित प्रकाश से लुप्त हो जाते हैं, जो इसीलिए रंग-बिरंगा दिखाई देता है।

क्वाण्टम यान्त्रिकी द्वारा समाविष्ट द्वैतता के कारण, कणों में भी व्यतिकरण (interference) हो सकता है। इसका एक प्रसिद्ध उदाहरण दो झिरियों वाला प्रयोग है (चित्र 4.2)। दो संकीर्ण समान्तर झिरियों वाले एक विभाजन पर विचार कीजिए। विभाजन के एक तरफ एक विशिष्ट रंग (अर्थात् किसी विशेष तरंग-दैर्घ्य) का प्रकाश-स्रोत रखा है। प्रकाश का अधिकांश भाग विभाजन से टकराएगा, परन्तु एक छोटी-सी मात्रा झिरियों से होकर चली जाएगी। अब मान लीजिए कोई प्रकाश-स्रोत से विभाजन के दूर पीछे की तरफ एक पर्दा रख देता है। पर्दे पर कोई बिन्दु दोनों झिरियों से तरंगें प्राप्त करेगा। बहरहाल, सामान्यतः प्रकाश-स्रोत से दोनों झिरियों में होते हुए पीछे पर्दे तक प्रकाश द्वारा तय की गई दूरी भिन्न-भिन्न होगी। इसका अर्थ यह होगा कि झिरियों से आनेवाली तरंगें उस उस समय, जब वे पर्दे पर आती हैं, एक ही कला में नहीं होंगी; कुछ स्थानों में तरंगें एक-दूसरे को निरस्त कर देंगी, दूसरे स्थानों में वे एक-दूसरे को प्रबलित करेंगी। इसका परिणाम दीप्त एवं अदीप्त धारियों (fringes) के एक विशिष्ट पैटर्न के रूप में देखने को मिलता है।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि यदि कोई प्रकाश-स्रोत के स्थान पर कणों के स्रोत, जैसे एक निश्चित वेग वाले इलेक्ट्रोन, को रख दे, तो परिणाम में ठीक उसी प्रकार की धारियाँ (fringes) मिलती हैं। (इसका अर्थ है कि अनुरूप तरंगों का एक निश्चित दैर्घ्य होता है।) परन्तु यदि विभाजन में केवल एक ही झिरी हो तो यह और अधिक विचित्र बात लगती है कि किसी भी

प्रकार की कोई धारी (fringe) पीछे पर्दे पर नहीं प्राप्त होती, बस पर्दे पर इलेक्ट्रोन का समान वितरण प्राप्त होता है। तब कोई शायद यह सोच सकता है कि दूसरी झिरी खोलने से पर्दे के प्रत्येक बिन्दु पर बस इलेक्ट्रोनों की संख्या बढ़ जाएगी। परन्तु वास्तव में व्यतिकरण के कारण पर्दे के कुछ स्थानों पर इनकी संख्या घट जाती है। यदि झिरियों से इलेक्ट्रोन एक बार में एक के हिसाब से गुजारे जाते हैं तो कोई शायद यह उम्मीद करेगा कि हर इलेक्ट्रोन पहली या दूसरी झिरी से गुजरता है, और इस प्रकार ऐसा व्यवहार करेगा मानो इनके गुजरने के लिए बस एक ही झिरी हो—और इस प्रकार पर्दे पर इलेक्ट्रोनों का समान वितरण प्रदर्शित करेगा। हालाँकि वास्तविकता में, जब भी इलेक्ट्रोन एक बार में एक के हिसाब से गुजारे जाते हैं तो पर्दे पर फ्रिंज तब भी प्रकट होती है। इसीलिए हर इलेक्ट्रोन दोनों झिरियों से निश्चित रूप से एक साथ गुजर रहा होगा!

कणों के मध्य व्यतिकरण की अद्‌भुत घटना परमाणु की संरचना की हमारी समझ के लिए अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण रही है। ये परमाणु समस्त जैविकी तथा रसायनों की मूल इकाइयाँ हैं। यही वह निर्माण-सामग्री है जिनसे हम तथा हमारे चारों ओर की प्रत्येक वस्तु बनी है। इस शताब्दी के प्रारम्भ में यह सोचा जाता था कि परमाणु सूर्य की परिक्रमा करते हुए ग्रहों के समान हैं जिसमें इलेक्ट्रोन (ऋणात्मक विद्युत आवेश के कण) धनात्मक आवेश वाले केन्द्रीय नाभिक के चारों ओर चक्कर लगाते हैं। यह माना जाता था कि धनात्मक एवं ऋणात्मक विद्युत आवेश के मध्य आकर्षण उसी प्रकार से इलेक्ट्रोनों को अपनी कक्षाओं में रखता है जिस प्रकार सूर्य एवं ग्रहों के बीच गुरुत्वाकर्षण-बल ग्रहों को उनकी कक्षाओं में रखता है। इसके साथ परेशानी यह थी कि क्वाण्टम यान्त्रिकी से पहले, यान्त्रिकी एवं विद्युत के नियमों द्वारा यह पूर्वानुमान हाथ लगा था कि इलेक्ट्रोनों की ऊर्जा नष्ट हो जाएगी और ऊर्जा-ह्रास के कारण उनके वृत्तीय पथ की त्रिज्या लगातार कम होती जाएगी। इसीलिए अन्दर की ओर सर्पिल गति से चक्कर लगाते हुए इलेक्ट्रोन नाभिक से टकरा जाएँगे। इसका अर्थ तो यह होगा कि परमाणु और वस्तुतः सारा पदार्थ बहुत तीव्र गति से ध्वस्त होकर एक अत्यन्त ही उच्च घनत्व की स्थिति में हो जाना चाहिए। इस समस्या का एक आंशिक समाधान सन् 1913 में डेनमार्क के एक वैज्ञानिक नील्स बोर द्वारा खोजा गया था। उन्होंने यह सुझाव रखा कि हो सकता है, इलेक्ट्रोन केन्द्रीय नाभिक से किन्हीं भी दूरियों पर चक्कर लगाने में समर्थ न हों, बल्कि केवल किन्हीं निश्चित त्रिज्याओं वाली कक्षाओं में ही चक्कर लगाने में समर्थ हों। यदि कोई यह और मान ले कि केवल एक या दो इलेक्ट्रोन ही इन दूरियों में से किसी एक पर चक्कर लगा सकते हैं, तो ये परमाणु के ध्वस्त होकर संघनित होने की समस्या का समाधान कर देंगे, क्योंकि फिर इलेक्ट्रोन लघुतम दूरियों एवं ऊर्जाओं वाले कक्षाओं में पहुँचकर और अधिक पास की कक्षाओं में सर्पिल गति से नहीं गिर पाएँगे।

इस मॉडल ने सबसे साधारण परमाणु हाइड्रोजन, जिसके नाभिक के चारों ओर चक्कर लगाता हुआ केवल एक ही इलेक्ट्रोन होता है, की संरचना की बहुत अच्छे ढंग से व्याख्या की। परन्तु यह स्पष्ट नहीं है कि अपेक्षाकृत अधिक जटिल परमाणुओं की संरचना को स्पष्ट करने के लिए इस व्याख्या को आगे और कैसे बढ़ाया जाए। इसके अतिरिक्त अनुमत कक्षाओं की सीमित संख्या का विचार बड़ा मनमाना-सा प्रतीत होता था। क्वाण्टम यान्त्रिकी के नए सिद्धान्त ने इस कठिनाई को दूर कर दिया। इसने यह स्पष्ट कर दिया कि नाभिक के चारों ओर घूमनेवाले इलेक्ट्रोन को एक ऐसी तरंग के रूप में समझा जा सकता है जिसका तरंग-दैर्घ्य उसके वेग पर आश्रित होता है। कुल निश्चित कक्षाओं के मामले में, कक्षा की लम्बाई इलेक्ट्रोन की तरंग-दैर्घ्यों की कुल संख्या (भिन्नात्मक संख्या के विपरीत) के समतुल्य होगी। इन कक्षाओं के लिए, तरंग-शीर्ष हर बार चक्कर लगाते हुए एक ही स्थिति में होगा, इसीलिए तरंगें जुड़ती जाएँगी; ये कक्षा पथ बोर की अनुमत कक्षाओं के अनुरूप होंगे। बहरहाल, उन कक्षाओं के लिए जिनकी लम्बाइयाँ तरंग-दैर्घ्यों की कुल संख्या के बराबर नहीं थीं, जैसे ही इलेक्ट्रोन चक्कर लगाएगा तो हर तरंग-शीर्ष एक द्रोणिका (trough) के द्वारा निरस्त कर दिया जाएगा; ये कक्षा-पथ अनुमत नहीं होंगे।

तरंग/कण द्वैतता को स्पष्ट रूप से देखने का सबसे अच्छा तरीका एक अमेरिकी वैज्ञानिक रिचर्ड फाइनमैन द्वारा (प्रवर्तित) तथाकथित इतिवृत्तों का योगफल है। वस्तुस्थिति को समझने के

लिए इस दशा में आगे बढ़ने पर यह नहीं माना जाता कि कण का कोई एक अकेला इतिवृत्त है अथवा दिक्-काल में एक अकेला पथ है, जैसाकि किसी पारम्परिक, गैर-क्वाण्टम सिद्धान्त में माना जाता है। इसके स्थान पर यह माना जाता है कि कण 'ए' से 'बी' तक हर सम्भव मार्ग से जाता है। हर पथ के साथ संख्याओं के जोड़े जुड़े होते हैं; एक तरंग के आकार का प्रतिनिधित्व करता है, और दूसरा चक्र में स्थिति का प्रतिनिधित्व करता है (अर्थात्, कि यह शीर्ष है या द्रोणिका)। 'ए' से 'बी' तक जाने की प्रायिकता सभी पथों के लिए तरंगों को जोड़कर प्राप्त कर ली जाती है। सामान्यतः यदि कोई पड़ोसी पथों के किसी समुच्चय की तुलना करता है तो चक्र में कलाएँ (phases) या स्थितियाँ बहुत अधिक असमान होंगी। इसका अर्थ यह हुआ कि इन पथों से जुड़ी हुई तरंगें एक-दूसरे को लगभग पूरी तरह निरस्त कर देंगी। हालाँकि पड़ोसी पथों के कुछ समुच्चयों के लिए पथों के बीच कलाओं में अधिक परिवर्तन नहीं होगा। इन पथों के लिए तरंगें एक-दूसरे को निरस्त नहीं करेंगी। ऐसे पथ बोर के अनुमत कक्षा-पथों के अनुरूप होते हें।

इन विचारों के साथ, ठोस गणितीय रूप में उन अनुमत कक्षा-पथों का परिगणन करना अपेक्षाकृत सही होगा जो अधिक जटिल परमाणुओं में होते हैं तथा उन अणुओं में भी होते हैं जो बहुत सारे परमाणुओं से मिलकर बने होते हैं तथा जिन्हें उन इलेक्ट्रोनों द्वारा कक्षाओं के मध्य संगठित करके रखा जाता है जो एक से अधिक नाभिकों के चारों ओर परिक्रमा करते हैं। चूँकि अणुओं की संरचना तथा उनकी एक-दूसरे से अभिक्रियाएँ समस्त रसायन-विज्ञान एवं जीव-विज्ञान के मूल में निहित है, इसीलिए क्वाण्टम यान्त्रिकी अनिश्चितता के सिद्धान्त द्वारा नियत सीमाओं के अन्तर्गत लगभग हर चीज की, जो हम अपने चारों ओर देखते हैं, सिद्धान्त रूप में पूर्वानुमान लगाने की अनुमति देती है। (हालाँकि व्यवहार में अधिक इलेक्ट्रोन वाले निकायों के लिए आवश्यक परिगणन इतने अधिक जटिल होते हैं कि हम उन्हें नहीं कर सकते)।

आइंस्टाइन का आपेक्षिकता का सामान्य सिद्धान्त ब्रह्माण्ड की विशाल स्तर की संरचना को नियन्त्रित करता हुआ प्रतीत होता है। यह एक चिरसम्मत सिद्धान्त कहलाता है; अर्थात् यह क्वाण्टम यान्त्रिकी के अनिश्चितता के सिद्धान्त को महत्त्व नहीं देता, जैसाकि इसे दूसरे सिद्धान्तों के साथ सामंजस्य के लिए करना चाहिए। इसका किसी विसंगति की ओर न ले जाने का कारण यह है कि वे सारे गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्र जो हम सामान्यतः अनुभव करते हैं, बहुत कमजोर होते हैं। फिर भी, पहले परिचर्चित विलक्षणता प्रमेय (singulartiy theorem) यह संकेत करते हैं कि गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्र कृष्ण विवर (black hole) एवं महाविस्फोट (bigbang) जैसी कम-से-कम दो स्थितियों में अत्यधिक दृढ़ होना चाहिए। ऐसे सुदृढ़ गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्रों में क्वाण्टम यान्त्रिकी के प्रभाव बहुत महत्त्वपूर्ण होने चाहिए। इस प्रकार, एक अर्थ में अनन्त घनत्व के बिन्दुओं का पूर्वानुमान लगाकार चिरसम्मत सामान्य आपेक्षिकता सिद्धान्त अपने ही पतन का पूर्वानुमान प्रस्तुत कर देता है, ठीक वैसे ही जैसेकि चिरसम्मत (अर्थात् गैर-क्वाण्टम) यान्त्रिकी ने अपने पतन की भविष्यवाणी यह सुझाव रखकर की थी कि परमाणु ध्वस्त होकर असीमित घनत्व को प्राप्त हो जाना चाहिए (अर्थात् ऊर्जा ह्रास के कारण इलेक्ट्रोनों के वृत्तीय पथ की त्रिज्या लगातार कम होती जानी चाहिए और अन्त में वे नाभिक में गिर जाने चाहिए)। हमारे पास अभी तक ऐसा कोई पूर्णतः संगत सिद्धान्त नहीं है जो सामान्य आपेक्षिकता सिद्धान्त एवं क्वाण्टम यान्त्रिकी को एकीकृत कर दे, परन्तु जो बहुत से अभिलक्षण इसमें होने चाहिए उन्हें हम जानते हैं। कृष्ण विवरों एवं महाविस्फोट के लिए इनके जो निष्कर्ष होंगे उनका वर्णन बाद के अध्यायों में किया जाएगा। इस क्षण तो, बहरहाल, हमारी दिलचस्पी हाल ही के उन प्रयत्नों में है जो प्रकृति के दूसरे बलों की हमारी समझ को एक अकेले एकीकृत क्वाण्टम सिद्धान्त के साथ लाने के लिए किए गए थे।

अध्याय 5

मूल कण एवं प्राकृतिक बल

अरस्तू का यह विश्वास था कि ब्रह्माण्ड में मौजूद समस्त पदार्थ पृथ्वी, वायु, अग्नि एवं जल—इन चार आधारभूत तत्त्वों से बना हुआ है। ये तत्त्व दो बलों से प्रभावित होते हैं : प्रथम गुरुत्व (gravity), पृथ्वी एवं जल की निमग्न करने की या अपनी ओर आकर्षित करने की प्रवृत्ति; और द्वितीय प्रोत्थान (levity) अर्थात् वायु एवं अग्नि की ऊपर उठाने की या विकर्षित करने की प्रवृत्ति। ब्रह्माण्ड की सामग्री का पदार्थ और बलों में यह विभाजन आज भी व्यवहार में लाया जाता है।

अरस्तू का विश्वास था कि पदार्थ शाश्वत है, अर्थात्, पदार्थ के टुकड़े को अनन्त तक छोटे-से-छोटे टुकड़ों में विभाजित किया जा सकता है : पदार्थ का ऐसा कोई कण नहीं हो सकता जिसको और विभाजित न किया जा सकता हो। बहरहाल, कुछ यूनानी दार्शनिक जैसे डेमोक्रिटस यह मानते थे कि पदार्थ स्वभावतः कणीय (grainy) होता है और यह कि प्रत्येक वस्तु बहुत सारे विभिन्न प्रकार के परमाणुओं (atoms) से मिलकर बनी होती है (यूनानी भाषा में एटम शब्द का अर्थ अविभाज्य होता है)। किसी भी पक्ष के समर्थन में ठोस साक्ष्य के अभाव में यह बहस शताब्दियों तक चलती रही, परन्तु सन् 1803 में एक ब्रिटिश रयासनज्ञ एवं भौतिकीविद जॉन डाल्टन ने यह बताया कि रासायनिक यौगिक सदैव एक निश्चित अनुपात में ही सम्मिश्रित होते हैं और यह तथ्य अणु (molecules) कही जानेवाली इकाइयों में परमाणुओं के समूहीकरण से स्पष्ट किया जा सकता है। बहरहाल, दोनों विचारधाराओं के बीच यह बहस अन्ततः इस शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में आकर परमाणुवादियों के पक्ष में तय हुई। भौतिक साक्ष्य का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंश आइंस्टाइन द्वारा प्रस्तुत किया गया। सामान्य आपेक्षिकता सिद्धान्त पर अपने प्रसिद्ध लेख से कई सप्ताह पूर्व, सन् 1905 में लिखे गए अपने एक लेख में आइंस्टाइन ने यह बताया कि किसी तरल में तैरते हुए निलम्बित धूल के छोटे-छोटे कणों की अनियमित और यादृच्छिक (random) गति को—जिसे ब्राउनियन गति भी कहा जाता है—धूल के कणों के साथ तरल परमाणुओं की टक्कर के प्रभाव के रूप में स्पष्ट किया जा सकता है।

इस समय तक, इस पर शंका तो पहले से ही थी कि ये परमाणु, आखिरकार, अविभाज्य नहीं हैं। कई वर्ष पहले ट्रिनिटी कॉलेज, कैम्ब्रिज के एक सदस्य जे.जे. थॉमसन ने पदार्थ के एक कण—इलेक्ट्रोन—के अस्तित्व का प्रदर्शन किया था। इसका द्रव्यमान हल्के-से-हल्के परमाणु के एक हजारवें भाग से भी कम था। उन्होंने आधुनिक टेलीविजन की पिक्चर ट्यूब जैसी एक युक्ति का प्रयोग किया : एक लाल गर्म धातु के तन्तु (filament) से इलेक्ट्रोन निकलते थे, और क्योंकि ये ऋणाविष्ट कण होते हैं, अतः फॉस्फोरस के लेप चढ़े पर्दे की ओर उनकी गति बढ़ाने के लिए एक विद्युत क्षेत्र का प्रयोग किया जा सकता था। जब इलेक्ट्रोन पर्दे पर टकराते थे तो पर्दे पर छोटे प्रकाश-बिन्दु उत्पन्न हो जाते थे। शीघ्र ही यह समझ लिया गया कि ये इलेक्ट्रोन स्वयं परमाणु के अन्दर से आ रहे होंगे। सन् 1911 में अन्ततः न्यूजीलैण्ड के एक भौतिकीविद अर्नेस्ट रदरफोर्ड ने यह बताया कि पदार्थ के परमाणुओं की भी एक आन्तरिक संरचना होती है; वे एक अत्यन्त ही छोटे, धनाविष्ट नाभिक के बने होते हैं जिसके चारों ओर कई सारे इलेक्ट्रोन चक्कर

लगाते हैं। उन्होंने यह निष्कर्ष अपने प्रयोग के उस विश्लेषण से निकाला जिसमें रेडियोधर्मी परमाणुओं से निकलनेवाले एल्फा-कण, जो धनाविष्ट होते हैं, परमाणुओं से टक्कर होने पर विभिन्न दिशाओं में विक्षेपित हो जाते हैं।

पहले यह सोचा गया था कि परमाणु का नाभिक इलेक्ट्रोनों तथा कई सारे प्रोटोनों से बना होता है। ये प्रोटोन धनाविष्ट कण होते हैं। प्रोटोन एक यूनानी शब्द है जिसका अर्थ है 'प्रथम'। यह विश्वास किया गया था कि प्रोटोन आधारभूत इकाई है, जिससे पदार्थ बना है। बहरहाल, सन् 1932 में कैम्ब्रिज में रदरफोर्ड के एक सहयोगी जेम्स चैडविक ने यह खोज की कि नाभिक में एक दूसरा कण भी विद्यमान रहता है जिसे न्यूट्रोन कहा गया और इसका द्रव्यमान प्रोटोन के द्रव्यमान के लगभग बराबर होता है, परन्तु यह आवेशरहित कण है। चैडविक ने अपनी खोज के लिए नोबेल पुरस्कार प्राप्त किया और उन्हें गॉनविले एवं कीज कॉलेज, कैम्ब्रिज का मास्टर चुना गया (वही विद्यालय जिसका मैं अब एक फेलो हूँ)। सदस्यों से असहमति के कारण उन्होंने बाद में मास्टर के पद से त्याग-पत्र दे दिया। विद्यालय में जब से विद्वत्-सभा के युवा सदस्यों के एक वर्ग ने युद्ध के बाद लौटने पर विद्वत्-सभा के कई पुराने सदस्यों को बहुमत से विद्यालय के उन पदों से हटा दिया था, जिन पर वे काफी समय से आसीन थे तब से विद्यालय का वातावरण काफी कटु रहा है। यह सब मेरे समय से पहले हुआ था, मैं इस विद्यालय का सदस्य इस कड़वाहट के सबसे अन्त में सन् 1965 में बना था, जब ऐसी ही असहमतियों ने एक दूसरे नोबेल पुरस्कार विजेता मास्टर सर नेविल मॉट को त्याग-पत्र देने के लिए विवश कर दिया था।

लगभग तीस वर्ष पहले तक यह समझा जाता था कि प्रोटोन और न्यूट्रोन 'मूल कण' हैं, परन्तु उन प्रयोगों ने, जिनमें प्रोटोनों को दूसरे प्रोटोनों तथा इलेक्ट्रोनों से उच्च गति पर टकराया गया, यह संकेत दिया कि ये वस्तुतः और भी छोटे कणों के बने हुए थे। इन कणों को कैलिफोर्निया इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी (Caltech) के भौतिकीविद मुरे गैलमैन (Murray Gell Mann) द्वारा 'क्वार्क' नाम दिया गया तथा उन्हें इन पर अपने शोध कार्य के लिए सन् 1969 में नोबेल पुरस्कार दिया गया। इस नाम की उत्पत्ति का स्रोत जेम्स जॉयस का एक गूढ़ उद्धरण है : "थ्री क्वाक्र्स फॉर मस्टर मार्क! (Three quarks for Muster Mark!)." क्वार्क (quark) शब्द का उच्चारण क्वार्ट (quart) की भाँति करने की अपेक्षा की जाती है, परन्तु शब्द के अन्त में t के स्थान पर r के साथ, परन्तु सामान्यतः इसका उच्चारण लार्क (lark) के साथ ताल मिलाकर किया जाता है।

ये क्वार्क भी विभिन्न प्रकार के होते हैं : इनकी छह किस्में या फ्लेवर्स होते हैं, जिन्हें हम ऊर्ध्व (अप), अधः (डाउन), अद्भुत (स्ट्रेन्ज), आकृष्ट (चार्म्ड), अधस्थ (बॉटम) और शीर्ष (टॉप) कहकर पुकारते हैं। प्रथम तीन किस्में सन् 1960 के दशक से ज्ञात थीं; परन्तु चार्म्ड क्वार्क केवल 1974 में, बॉटम सन् 1977 में तथा टॉप सन् 1995 में खोजे गए थे। हर किस्म के तीन वर्ण हैं —लाल, हरा और नीला। (यहाँ यह बात जोर देकर कहने की है कि ये शब्द बस लेबल मात्र हैं : क्वार्क दृश्य प्रकाश की तरंग-दैर्घ्य की अपेक्षा काफी छोटे होते हैं और इसीलिए सामान्य अर्थ में उनका कोई रंग नहीं होता। यह तो बस ऐसा है कि आधुनिक भौतिकीविद नए कणों तथा नई प्राकृतिक घटना का नामकरण करने में अपेक्षाकृत अधिक कल्पनात्मक तरीके अपनाते हुए लगते हैं—वे स्वयं को यूनानी तक सीमित नहीं रखते !) एक प्रोटोन या न्यूट्रोन तीन क्वार्कों का बना होता है, हर वर्ण का एक। एक प्रोटोन में दो 'अप' क्वार्क होते हैं तथा एक 'डाउन' होता है। हम दूसरे क्वार्कों (जैसे स्ट्रेंज, चार्म्ड, बॉटम और टॉप) के बने हुए कण भी उत्पन्न कर सकते हैं, परन्तु इन सभी का द्रव्यमान अपेक्षाकृत काफी अधिक होता है और वे तीव्र गति से क्षय होकर प्रोटोनों तथा न्यूट्रोनों में परिवर्तित हो जाते हैं।

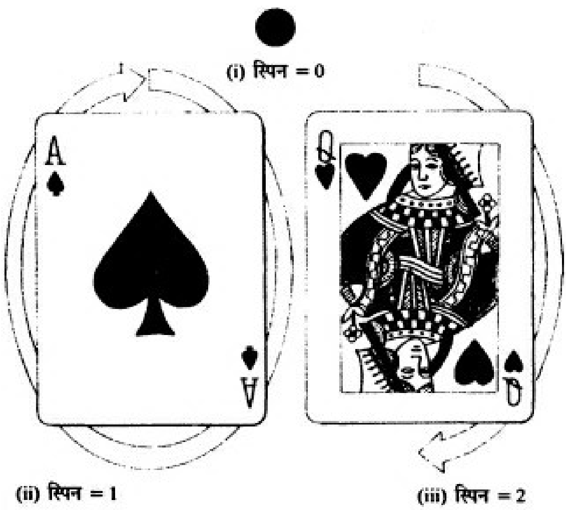
हम अब यह जानते हैं कि न तो परमाणु अविभाज्य है और न ही उनके अन्दर के प्रोटोन तथा न्यूट्रोन। अतः अब प्रश्न यह है कि वह वास्तविक मूल कण या निर्माण-सामग्री क्या है जिससे हर चीज बनी हुई है? चूँकि परमाणु के आकार की अपेक्षा प्रकाश की तरंग-दैर्घ्य बड़ी होती है, इसलिए सामान्य रूप में हम परमाणुओं के घटकों को 'देखने' की आशा नहीं कर सकते। हमें

अपेक्षाकृत काफी छोटी तरंग-दैर्घ्य वाली कोई वस्तु इस्तेमाल करनी होगी। जैसाकि हमने पिछले अध्याय में देखा, क्वाण्टम यान्त्रिकी हमें यह बताती है कि सभी कण वस्तुतः तरंगें हैं और यह कि किसी कण की जितनी अधिक ऊर्जा होती है उसकी अनुरूपी तरंग का तरंग-दैर्घ्य उतना ही छोटा होता जाता है। इसीलिए अपने प्रश्न का जो सर्वोत्तम उत्तर हम दे सकते हैं वह इस तथ्य पर निर्भर करता है कि हमारे पास कण-ऊर्जा (particle energy) कितनी ज्यादा है, क्योंकि इसी से यह सुनिश्चित होता है कि कितनी छोटी तरंग-दैर्घ्य हम देख सकते हैं। ये कण-ऊर्जा सामान्यतः इलेक्ट्रोन-वोल्ट की इकाई में मापी जाती है। (इलेक्ट्रोनों के साथ, थॉमसन के प्रयोगों में हमने यह देखा था कि उन्होंने इलेक्ट्रोनों की गति बढ़ाने के लिए एक विद्युत-क्षेत्र का उपयोग किया था। एक वोल्ट के विद्युत-क्षेत्र से जो ऊर्जा एक इलेक्ट्रोन त्वरित होने पर प्राप्त करता है, वह एक इलेक्ट्रोन-वोल्ट कहलाती है।) उन्नीसवीं शताब्दी में जब लोग किसी रासायनिक अभिक्रिया, जैसे जलने से उत्पन्न कुछ इलेक्ट्रोन वोल्ट की निम्न कण ऊर्जाओं का ही प्रयोग करना जानते थे, तब यह समझा जाता था कि परमाणु सबसे छोटी इकाई होती है। रदरफोर्ड के प्रयोग में, एल्फा कणों में दसियों लाख इलेक्ट्रोन-वोल्ट ऊर्जा थी। अभी हाल ही में हमें यह ज्ञात हुआ कि कणों को पहले करोड़ों इलेक्ट्रोन-वोल्ट की तथा इसके बाद हजारों मिलियन इलेक्ट्रोन-वोल्ट की ऊर्जा देने के लिए विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र का किस प्रकार प्रयोग किया जा सकता है। इस प्रकार हम ये जानते हैं कि जिन कणों को बीस वर्ष पहले तक 'मूल' कण समझा जाता था, वे वस्तुतः अपेक्षाकृत और भी छोटे कणों से बने हुए हैं। जैसे-जैसे हम और भी उच्च ऊर्जा की ओर आगे बढ़ें, क्या ये कण और भी छोटे कणों के बने हुए पाए जा सकते हैं? यह निश्चित रूप से सम्भव है, परन्तु हमारे पास यह विश्वास करने के वास्तव में कुछ सैद्धान्तिक कारण हैं कि हम प्रकृति की आधारभूत निर्माण-सामग्री के ज्ञान के या तो बहुत समीप आ गए हैं या फिर यह ज्ञान हमारे पास है।

पिछले अध्याय में परिचर्चित तरंग और कण की द्वैतता का उपयोग करके, प्रकाश और गुरुत्व सहित ब्रह्माण्ड में मौजूद प्रत्येक वस्तु कणों के रूप में वर्णित की जा सकती है। इन कणों में एक विशेष गुणधर्म मौजूद होता है जिसे प्रचक्रण (spin) कहते हैं। प्रचक्रण या स्पिन के बारे में सोचने का एक तरीका तो यह है कि हम कणों के बारे में यह कल्पना करें कि वे अपनी धुरी पर प्रचक्रण करते हुए छोटे-छोटे लट्टुओं के समान हैं। लेकिन यह तरीका सत्यान्वेषण के मार्ग से विचलित कर सकता है क्योंकि क्वाण्टम यान्त्रिकी हमें यह बताती है कि कणों का कोई सुनिश्चित अक्ष नहीं होता है। किसी कण का स्पिन वास्तव में हमें जो कुछ बताता है, वह केवल यह है कि कण विभिन्न दिशाओं से कैसा दिखाई देता है। 0 स्पिन (प्रचक्रण) वाला कण एक बिन्दु के समान होता है : यह प्रत्येक दिशा में एक-सा दिखता है (चित्र 5.1-i) दूसरी ओर, 1 स्पिन वाला कण एक तीर के समान होता है : यह विभिन्न दिशाओं से भिन्न दिखाई देता है (चित्र 5.1-ii) यह कण एक-सा केवल उस दशा में दिखाई देता है जब कोई इसे एक पूरा चक्र (360 अंश) घुमा दे। 2 स्पिन वाला कण एक दोहरे-सिर वाले तीर के समान होता है (चित्र 5.1-iii) : यह एक-सा तभी दिखाई देता है यदि कोई इसे आधा चक्र (180 अंश) घुमा दे। इसी प्रकार, अपेक्षाकृत अधिक स्पिन वाले कण केवल उस दशा में एक-से दिखाई देते हैं, जब कोई उन्हें एक पूर्ण चक्र के अत्यन्त छोटे प्रभागों (fractions) से होकर घुमा दे। यह सब बिल्कुल सरल-सा लगता है, परन्तु एक ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि ऐसे कण भी हैं जो यदि कोई उन्हें एक पूर्ण परिक्रमण भी करा दे तब भी वे एक-से दिखाई नहीं देते : आपको उनके दो पूर्ण परिक्रमण कराने पड़ते हैं! ऐसे कणों के बारे में कहा जाता है कि उनका स्पिन 1/2 के बराबर होता है।

ब्रह्माण्ड में सभी ज्ञात कणों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है : 1/2 स्पिन वाले कण जो ब्रह्माण्ड में पदार्थ की रचना करते हैं, तथा 0, 1 एवं 2 स्पिन वाले कण, जो, जैसाकि हम देखेंगे, पदार्थ कणों के बीच बलों को उत्पन्न करते हैं। पदार्थ कण पॉली के अपवर्जन-सिद्धान्त (exclusion principle) का पालन करते हैं। इसकी खोज सन् 1925 में ऑस्ट्रिया के एक भौतिकीविद बुल्फगैंग पॉली द्वारा की गई थी—जिसके लिए उन्हें सन् 1945 में नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया। वह पुरातनपन्थी सैद्धान्तिक भौतिकविज्ञानी थे : उनके बारे में यह बात प्रचलित

थी कि किसी नगर में उनकी उपस्थिति मात्र ही वहाँ के प्रयोगों को त्रुटिपूर्ण कर देती थी! पॉली का अपवर्जन सिद्धान्त यह कहता है कि दो समान कण एक ही दशा में अस्तित्व में नहीं रह सकते, अर्थात्, अनिश्चितता के सिद्धान्त द्वारा प्रदत्त सीमाओं के अन्तर्गत वे दोनों कण न तो एक-सी स्थिति में हो सकते हैं और न ही उनका एक-सा वेग हो सकता है। अपवर्जन सिद्धान्त इसलिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि 0, 1 एवं 2 स्पिन वाले कणों के द्वारा उत्पन्न बलों के प्रभाव में पदार्थ-कण ध्वस्त होकर एक अत्यन्त उच्च घनत्व की दशा में संघनित क्यों नहीं हो जाते : यदि पदार्थ-कणों की स्थितियाँ लगभग एक-सी हैं, तो उनके वेग निश्चित रूप से भिन्न होने चाहिए, जिसका अर्थ यह है कि वे उसी स्थिति में लम्बे समय तक नहीं ठहरेंगे। यदि विश्व बिना अपवर्जन सिद्धान्त के उत्पन्न कर दिया जाता तो क्वार्क पृथक और सुनिश्चित प्रोटोन एवं न्यूट्रोन का निर्माण नहीं करते। और न ही यह इलेक्ट्रोनों के साथ मिलकर पृथक, सुनिश्चित परमाणुओं का निर्माण करते। वे सब ध्वस्त हो जाते और उनका मोटे तौर पर एक-सा गाढ़ा शोरबा या सूप बन जाता।



चित्र 5.1

इलेक्ट्रोन तथा दूसरे 1/2 स्पिन वाले कणों की सही जानकारी सन् 1928 से पहले तक नहीं मिली थी, जब पॉल डिराक ने एक सिद्धान्त प्रस्तावित किया था। पॉल डिराक बाद में कैम्ब्रिज में ल्यूकेशियन प्राध्यापक बनाए गए थे (उसी पद पर जिस पर कभी न्यूटन आसीन थे और जो अब मेरे अधिकार में है)। डिराक का सिद्धान्त अपने किस्म का पहला ऐसा सिद्धान्त था जो क्वाण्टम यान्त्रिकी तथा आपेक्षिकता के विशिष्ट सिद्धान्त, दोनों के अनुरूप था। इसने गणितीय पद्धति से यह स्पष्ट किया कि इलेक्ट्रोन में 1/2 स्पिन क्यों होता है, अर्थात्, यदि आप इसे केवल एक पूर्ण चक्र घुमा दे, तो यह एक-सा क्यों नहीं दिखाई देता, परन्तु उस समय एक-सा क्यों दिखाई देता है यदि आप इसे दो चक्रों में घुमा दें। इस सिद्धान्त ने यह भी पूर्वानुमान प्रस्तुत किया कि इलेक्ट्रोन का एक साथी भी होना चाहिए : एक प्रति इलेक्ट्रोन या पॉजीट्रोन। सन् 1932 में पॉजीट्रोन की खोज ने डिराक के सिद्धान्त की पुष्टि कर दी और सन् 1933 में उन्हें भौतिकी के लिए नोबेल पुरस्कार दिलाने में योग दिया। अब हम यह जानते हैं कि प्रत्येक कण का एक प्रति-कण भी होता है तथा आपस में मिलने पर वे एक-दूसरे का विनाश कर देते हैं। (बल-वाहक कणों के मामले में, प्रति-कण भी ठीक वैसे ही होते हैं जैसे कि कण।) सम्पूर्ण प्रति-विश्व भी हो सकते हैं तथा प्रति-कणों के बने हुए प्रति-जन (एंटी पीपुल) भी हो सकते हैं। बहरहाल, यदि आप अपने प्रतिरूप (एंटी-सेल्फ) से मिलें, तो हाथ मत मिलाइएगा! आप दोनों ही अत्यन्त तीव्र प्रकाश की

कौंध में विलीन हो जाएँगे। यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि हमारे चारों ओर प्रति-कणों की अपेक्षा कणों की अधिकता क्यों है, और मैं इस प्रश्न पर इस अध्याय में बाद में चर्चा करूँगा।

क्वाण्टम यान्त्रिकी में, पदार्थ-कणों के बीच अन्योन्य क्रियाएँ (या बल) पूर्णांक स्पिन—0, 1 या 2 वाले कणों के द्वारा सम्भव की हुई मानी जाती हैं। होता क्या है कि एक पदार्थ-कण जैसे एक इलेक्ट्रोन या एक क्वार्क एक बल-वाहक कण उत्सर्जित करता है। इस उत्सर्जन से उत्पन्न प्रतिक्षेप पदार्थ-कण का वेग परिवर्तित कर देता है। फिर बल-वाहक कण किसी दूसरे पदार्थ-कण से टकराता है और अवशोषित हो जाता है। यह टक्कर दूसरे कण के वेग को परिवर्तित कर देती है, ठीक वैसे ही जैसे मानो दोनों पदार्थ-कणों के बीच कोई बल रहा हो। बल-वाहक कणों का एक महत्त्वपूर्ण गुणधर्म यह होता है कि वे अपवर्जन सिद्धान्त का पालन नहीं करते। इसका अर्थ यह हुआ कि विनिमय किए जा सकनेवाले कणों की संख्या की कोई सीमा नहीं है, और इसीलिए वे अत्यन्त सुदृढ़ बल उत्पन्न कर सकते हैं। बहरहाल, यदि बल-वाहक कणों का द्रव्यमान अधिक होगा तो अधिक लम्बी दूरी पर उनका आदान-प्रदान करना तथा उन्हें उत्पन्न करना कठिन होगा। अतः उनके द्वारा वहन किए जानेवाले बलों की शक्ति बहुत कम होगी। दूसरी ओर, यदि बल-वाहक कणों का अपना कोई द्रव्यमान नहीं है तो बलों की शक्ति अधिक होगी। पदार्थ-कणों के बीच विनिमयित बल-वाइक कणों को वर्चुअल या आभासी कहा जाता है क्योंकि 'वास्तविक' कणों के विपरीत, इन कणों का किसी भी कण संसूचक के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से पता नहीं लगाया जा सकता। बहरहाल, हम उनके अस्तित्व के बारे में जानते हैं क्योंकि वे मापने योग्य प्रभाव उत्पन्न करते हैं : वे पदार्थ-कर्णों के बीच बलों को जन्म देते हैं। 0, 1 या 2 प्रचक्रण (स्पिन) वाले कण भी कुछ परिस्थितियों में वास्तविक कणों की भाँति ही अस्तित्व में होते हैं, उस समय उनका प्रत्यक्ष रूप से पता लगाया जा सकता है। उस समय वे हमें इस प्रकार दिखाई पड़ते हैं जिसे कोई भी पारम्परिक भौतिकीविद तरंग कहेगा जैसे प्रकाश की तरंगें या गुरुत्वीय तरंगें। वे कभी-कभी उस समय उत्सर्जित की जा सकती हैं जब पदार्थ-कण आभासी बल-वाहक कणों का विनिमय करके एक-दूसरे के साथ अन्योन्यक्रिया करते हैं। (उदाहरण के लिए दो इलेक्ट्रोनों के बीच विद्युत प्रतिकर्षी बल वर्चुअल फोटोन के विनिमय के कारण होता है जिसका पता प्रत्यक्ष रूप से कभी नहीं लगाया जा सकता; परन्तु यदि एक इलेक्ट्रोन दूसरे इलेक्ट्रोन के समीप से गुजरता है, तो वास्तविक फोटोन निकल सकते हैं, जिनका पता हम प्रकाश-तरंगों के रूप में लगा लेते हैं।)

अपने बल-सामर्थ्य एवं अपनी अन्योन्यक्रिया वाले कणों के अनुसार इन बल-वाहक कणों को चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है। यहाँ यह बात जोर देकर कहने की है कि चार वर्गों में यह विभाजन मानव-कृत है; आंशिक सिद्धान्तों के निर्माण के लिए तो यह सुविधाजनक है, परन्तु किसी और गहन तथ्य से यह मेल नहीं खा सकता। अन्ततः अधिकांश भौतिकीविदों को एक ऐसे एकीकृत सिद्धान्त को पाने की आशा है जो सभी चार बलों की व्याख्या एक अकेले बल के विभिन्न स्वरूपों के रूप में कर देगा। वास्तव में, कुछ लोग यह कहेंगे कि आज यह भौतिकी का प्रमुख लक्ष्य है। हाल ही में, इन चार श्रेणियों में से तीन को एकीकृत करने के सफल प्रयास किए गए हैं—और मैं इनका वर्णन इसी अध्याय में करूँगा। बची हुई चौथी श्रेणी—गुरुत्व—के एकीकरण का प्रश्न हम थोड़ी देर के लिए छोड़ देंगे।

प्रथम श्रेणी में गुरुत्व-बल है। यह बल सार्वत्रिक है, अर्थात्, प्रत्येक कण अपने द्रव्यमान या ऊर्जा के अनुसार गुरुत्व-बल को अनुभव करता है। कुल मिलाकर गुरुत्व-बल चारों बलों में सबसे निर्बल होता है। यह इतना निर्बल होता है कि हम तो इसकी ओर बिल्कुल ही ध्यान न दें, यदि इसमें ये दो विशेष गुणधर्म न हों : एक तो यह विराट दूरियों तक कार्य कर सकता है, और दूसरा यह कि यह सदैव आकर्षी होता है! इसका अर्थ यह हुआ कि पृथ्वी और सूर्य जैसे दो बड़े पिण्डों के व्यष्टिगत कणों के बीच बहुत क्षीण गुरुत्व-बल को प्रभावशाली बल में बदलने के लिए सभी कणों के गुरुत्व-बल साथ-साथ जुड़ सकते हैं। अन्य तीनों बल या तो कम दूरियों तक प्रभावी रहते हैं या कभी आकर्षी तथा कभी प्रतिकर्षी हो जाते हैं, अतः उनमें एक-दूसरे को निरस्त करने की प्रवृत्ति होती है। गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र का अध्ययन करने के लिए क्वाण्टम यान्त्रिकी तरीके में दो

पदार्थ-कणों के बीच कार्यरत बल, ग्रैविटोन नामक 2 प्रचक्रण (स्पिन) वाले एक कण के द्वारा वहन किया जाता हुआ दिखाया जाता है। इसका अपना कोई द्रव्यमान नहीं होता इसलिए इसका बल लम्बी दूरियों तक प्रभावी रहता है। सूर्य तथा पृथ्वी के बीच गुरुत्वाकर्षण-बल इन दोनों पिण्डों के समस्त कणों के मध्य ग्रैविटोनों के विनिमय के कारण सम्भव माना जाता है। यद्यपि ये विनिमयित कण वर्चुअल यानी आभासी कण होते हैं, तथापि वे मापने योग्य प्रभाव अवश्य ही उत्पन्न करते हैं—वे पृथ्वी से सूर्य की परिक्रमा कराते हैं! वास्तविक ग्रैविटोन एक ऐसे प्रभाव को उत्पन्न करते हैं जिसे चिरसम्मत (classical) भौतिकीविद गुरुत्वीय तरंगें कहेंगे, जो बहुत ही क्षीण होती हैं—और इनका पता लगाना इतना कठिन है कि इनको अभी तक प्रेक्षित नहीं किया गया है।

अगली श्रेणी में विद्युत चुम्बकीय-बल है जो क्वार्क तथा इलेक्ट्रोन जैसे विद्युत आवेशित कणों के साथ तो अंतःक्रिया करता है, परन्तु ग्रैविटोन जैसे अनाविष्ट कणों के साथ नहीं। यह बल गुरुत्व-बल की अपेक्षा अत्यधिक सुदृढ़ होता है : दो इलेक्ट्रोनों के बीच विद्युत चुम्बकीय-बल गुरुत्व-बल की अपेक्षा लगभग 10^{42} (1 के बाद 42 शून्य) गुना अधिक मजबूत होता है। हालाँकि विद्युत आवेश दो प्रकार का होता है—धनावेशी एवं ऋणावेशी। दो धनावेशों के बीच प्रतिकर्षी-बल कार्य करता है, इसी प्रकार से दो ऋणावेशों के बीच भी प्रतिकर्षी बल कार्य करता है, परन्तु एक धनावेश और एक ऋणावेश के बीच आकर्षी बल कार्य करता है। (अर्थात्, समान विद्युत आवेश एक-दूसरे को प्रतिकर्षित करते हैं तथा विपरीत विद्युत आवेश एक-दूसरे को आकर्षित करते हैं।) पृथ्वी और सूर्य जैसे विशाल पिण्डों में धनावेश तथा ऋणावेश (विपरीत विद्युत आवेश) लगभग बराबर होता है। इस प्रकार से व्यष्टिगत कणों के बीच आकर्षी और प्रतिकर्षी बल एक-दूसरे को लगभग निरस्त कर देते हैं, और बहुत ही क्षीण विद्युत-चुम्बकीय बल शेष रहता है। बहरहाल, अणुओं तथा परमाणुओं के लघु स्तर पर विद्युत-चुम्बकीय बलों का प्रभुत्व रहता है। ऋणावेशित इलेक्ट्रोनों और नाभिक में धनावेशित प्रोटोनों के बीच विद्युत-चुम्बकीय आकर्षण बल के कारण ही इलेक्ट्रोन परमाणु के नाभिक की परिक्रमा करते हैं, जैसेकि गुरुत्व-बल के कारण पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है। विद्युत-चुम्बकीय आकर्षण बल फोटोन कहे जानेवाले 1 स्पिन वाले बहुत सारे द्रव्यमान-रहित वर्चुअल या आभासी कणों के विनिमय के कारण उत्पन्न होता है। पुनः फोटोन, जिनका विनिमय होता है, वर्चुअल या आभासी कण होते हैं। बहरहाल, जब एक इलेक्ट्रोन अपनी अनुमत कक्षा से नाभिक के अपेक्षाकृत अधिक समीपवाली किसी दूसरी कक्षा में अपना पथ परिवर्तन करते हुए जाता है, तो ऊर्जा मुक्त हो जाती है और एक वास्तविक फोटोन उत्सर्जित हो जाता है—जिसे, यदि इसका तरंग-दैर्घ्य उपयुक्त है, मानव नेत्र से दृश्य-प्रकाश के रूप में देखा जा सकता है, या फोटोग्राफी की फिल्म जैसे फोटोन संसूचक द्वारा पता लगाया जा सकता है। इसी प्रकार से, यदि एक वास्तविक फोटोन किसी परमाणु से टकरा जाता है, तो यह परमाणु के नाभिक से अपेक्षाकृत अधिक समीप की कक्षा में परिक्रमा करनेवाले इलेक्ट्रोन को किसी दूर की कक्षा में धकेल सकता है। यह प्रक्रिया उसकी ऊर्जा को पूर्णतः समाप्त कर देती है, इस प्रकार वह अवशोषित हो जाता है।

तीसरी श्रेणी को क्षीण नाभिकीय बल कहा जाता है जो रेडियोधर्मिता के लिए उत्तरदायी होता है, और जो 1/2 स्पिन वाले समस्त पदार्थ-कणों पर प्रभाव डालता है, परन्तु 0, 1 या 2 स्पिन वाले फोटोनों और ग्रेविटोनों पर प्रभाव नहीं डालता। सन् 1967 से पहले तक क्षीण नाभिकीय बल को भली प्रकार नहीं समझा गया था, जब इम्पीरियल कॉलेज, लन्दन में अब्दुस्ससलाम तथा हारवर्ड में स्टीवेन वाइनबर्ग, दोनों ने वे सिद्धान्त प्रस्तावित किए जिनसे इस अन्योन्य क्रिया को विद्युत-चुम्बकीय-बल के साथ एकीकृत किया जा सका, ठीक उसी प्रकार जैसे मैक्सवैल ने लगभग एक सौ साल पहले विद्युत और चुम्बकत्व को एकीकृत कर दिया था। उन्होंने यह सुझाव दिया कि फोटोन के अतिरिक्त, सामूहिक रूप से स्थूल सदिश बोसोनों (massive vector bosons) के रूप में ज्ञात 1 स्पिन वाले तीन कण और भी हैं जो कमजोर बल के वाहक हैं। इन्हें W^+ (डब्ल्यू प्लस), W^- (डब्ल्यू माइनस) तथा Z^0 (जैड नॉट) कहा गया, और इनमें

प्रत्येक का द्रव्यमान लगभग 100 GeV था (GeV एक गीगा इलेक्ट्रोन-वोल्ट या एक अरब इलेक्ट्रोन वोल्ट होता है।) वाइनबर्ग-सलाम सिद्धान्त स्वतः सममिति खण्डन (spontaneous symmetry breaking) के रूप में ज्ञात एक गुणधर्म को प्रदर्शित करता है। इसका तात्पर्य यह है कि जो कण कम ऊर्जा पर कई सारे पूर्णतः भिन्न कणों जैसे लगते हैं, वे सभी वस्तुतः एक ही प्रकार के कण होते हैं, केवल उनकी अवस्थाएँ भिन्न होती हैं। उच्च ऊर्जा पर ये सभी कण एक समान व्यवहार करते हैं। यह प्रभाव रूलेट चक्र (roulette wheel) में रूलेट गेंद के व्यवहार के समान होता है। उच्च ऊर्जा पर (जब चक्र को तेजी से घुमाया जाता है) गेंद अनिवार्य रूप से केवल एक ही तरह का व्यवहार करती है—यह लगातार चक्र के साथ घूमती रहती है; परन्तु ज्यों ही चक्र की गति धीमी होती जाती है, गेंद की ऊर्जा घटती जाती है, और अन्ततः गेंद चक्र में बने 37 खाँचों (slots) में से किसी एक में गिर जाती है। दूसरे शब्दों में कम ऊर्जाओं पर 37 विभिन्न स्थितियाँ हैं, जिनमें गेंद रह सकती है। यदि, किसी कारणवश, केवल कम ऊर्जाओं पर ही हम गेंद का प्रेक्षण कर सकें, तो उस समय हम यह सोचेंगे कि 37 विभिन्न प्रकार की गेंदें थीं!

वाइनबर्ग-सलाम सिद्धान्त में, 100 GeV से भी काफी अधिक ऊर्जाओं पर, तीनों नए कण तथा फोटोन सभी एक ही तरह का व्यवहार करेंगे। परन्तु कम कण ऊर्जाओं पर, जो अधिकांश सामान्य स्थितियों में पाई जाती हैं, कणों के बीच यह सममिति खण्डित हो जाएगी। W^+, W^- और Z^0 अधिक द्रव्यमान प्राप्त कर लेंगे तथा यह उनके बल के प्रभावी क्षेत्र को बहुत ही कम दूरी तक सीमित कर देगा। जिस समय सलाम और वाइनबर्ग ने अपना सिद्धान्त प्रस्तावित किया था, बहुत ही कम लोगों ने उन पर विश्वास किया, और कण त्वरित्र (particle accelerators) इतने शक्तिशाली नहीं थे कि वे वास्तविक W^+, W^- या Z^0 कणों को उत्पन्न करने के लिए आवश्यक 100 GeV की ऊर्जा को अर्जित कर सकें। बहरहाल, अगले लगभग दस वर्षों के दौरान, अपेक्षाकृत कम ऊर्जाओं पर इस सिद्धान्त के अन्य पूर्वानुमान प्रयोगों के इतने अधिक अनुरूप थे कि सन् 1979 में, सलाम और वाइनबर्ग को, हारवर्ड के ही शेल्डन ग्लैशो के साथ भौतिकी के लिए नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया। शेल्डन ग्लैशो ने भी विद्युत चुम्बकीय और क्षीण नाभिकीय बलों के उसी प्रकार के एकीकृत सिद्धान्त सुझाए थे। नोबेल समिति को, गलती कर लेने की परेशानी से, सन् 1983 में सर्न (CERN; यूरोपीय नाभिकीय अनुसन्धान केन्द्र) में की गई उस खोज से बचा लिया गया जिसमें फोटोन के तीन स्थूल साथियों का बिल्कुल सही पूर्वानुमानित द्रव्यमान उनके अन्य गुणधर्मों के साथ पता लगा लिया गया था। कार्लो रूबिया को जिन्होंने यह खोज करनेवाले कई सौ भौतिकीविदों की टीम का मार्गदर्शन किया था, सन् 1984 में सर्न के ही एक अन्य इंजीनियर साइमन वान दर मीर, जिसने प्रयोग में प्रयुक्त होनेवाले प्रति-पदार्थ भंडारण प्रणाली को विकसित किया था, के साथ संयुक्त रूप से नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया था। (यदि आप पहले से ही शीर्ष पर नहीं हैं, तो इन दिनों प्रयोगात्मक भौतिकी में अपनी कोई छाप छोड़ पाना बहुत कठिन है।)

चौथी श्रेणी में मजबूत नाभिकीय बल आता है, जो प्रोटोन और न्यूट्रोन में क्वार्कों को संगठित रखता है, और प्रोटोनों तथा न्यूट्रोनों को परमाणु के नाभिक में बनाए रखता है। यह विश्वास किया जाता है कि इस बल का वाहक 1 स्पिन वाला एक और कण्प है जिसे ग्लुओन कहा जाता है और जो केवल अपने और क्यार्कों के साथ अंतःक्रिया करता है। दृढ़ नाभिकीय बल में परिरोध (कन्फाइनमेण्ट) कहे जानेवाला एक विचित्र गुणधर्म होता है : यह सदैव कणों को ऐसे संयोजन में बाँध देता है, जिनका कोई वर्ण नहीं होता। कोई भी एक अकेले क्वार्क को अपने पास अपने आप नहीं रख सकता, क्योंकि इसका एक वर्ण होगा (लाल, हरा या नीला)। इसके स्थान पर, एक लाल क्वार्क को एक हरे व एक नीले क्लार्क के साथ ग्लुओनों (लाल + हरा + नीला = सफेद) की एक डोर रो संयुक्त रूप से जुड़ना होता है। ऐसे एक त्रिक से ही किसी प्रोटोन या न्यूट्रोन की रचना होती है। एक और सम्भावना क्वार्क और प्रतिक्वार्क के एक जोड़े की है (लाल + प्रति-लाल, हरा + प्रति-हरा, या नीला + प्रति-नीला = सफेद)। ऐसे संयोजनों से ही मेसोन नाम के कणों की रचना होती है जो अस्थायी होते हैं, क्योंकि क्वार्क और प्रतिक्वार्क एक-दूसरे का

विनाश कर देते हैं तथा इलेक्ट्रोनों और दूसरे कणों को उत्पन्न करते हैं। इसी प्रकार, परिरोध (कन्फाइनमेण्ट) अपने आप एकल ग्लुओन को प्राप्त करने से रोकता है, क्योंकि ग्लुओनों का भी वर्ण होता है। इसके स्थान पर, ग्लुओनों के एक समूह की परिकल्पना करनी होगी जिनके वर्ण संयुक्त रूप से जुड़कर सफेद हो जाते हैं। ऐसा समूह ग्ल्यूबॉल (Glueball) कहे जानेवाले अस्थायी कण की रचना करता है।

क्योंकि परिरोध किसी विलगित क्वार्क या ग्लुओन का प्रेक्षण करने से रोकता है, अतः कणों के रूप में क्वार्कों और ग्लुओनों की पूरी संधारणा कुछ अधिभौतिकीय-सी प्रतीत हो सकती है। बहरहाल, दृढ़ नाभिकीय बल का एक और गुणधर्म होता है जिसे उपगामी स्वतन्त्रता (asymptotic freedom) कहा जाता है और यह क्वार्कों तथा ग्लुओनों की अवधारणा को सुपरिभाषित कर देता है। सामान्य ऊर्जाओं पर तो दृढ़ नाभिकीय बल वास्तव में सबल रहता है और यह क्वार्कों को कसकर बाँधे रखता है। बहरहाल, विशाल कण-त्वरित्र के साथ किए गए प्रयोग यह संकेत देते हैं कि उच्च ऊर्जा पर दृढ़ नाभिकीय बल की शक्ति बहुत कम हो जाती है तथा क्वार्क और ग्लुओन कण पूरी तरह स्वतन्त्र कणों की भाँति व्यवहार करते हैं। चित्र 5.2 में उच्च ऊर्जा वाले प्रोटोन और प्रति-प्रोटोन के बीच की टक्कर का छाया-चित्र है। विद्युत-चुम्बकीय और क्षीण नाभिकीय बलों के एकीकरण की सफलता ने इन दोनों बलों को दृढ़ नाभिकीय बल के साथ जोड़ने तथा बलों के महाएकीकृत सिद्धान्त (grand unified theory) की संकल्पना को पूरा करने के प्रयास के लिए प्रेरित किया। यह शीर्षक जरा अतिशयोक्ति पूर्ण है : परिणामी सिद्धान्त न तो इतने महान हैं, और न ही वे पूर्णतः एकीकृत हैं, क्योंकि इसमें गुरुत्व-बल सम्मिलित नहीं है। वे वास्तव में पूर्ण सिद्धान्त भी नहीं हैं क्योंकि उनमें ऐसे कई सारे प्राचल (parameter) समाविष्ट हैं, जिनका मान सिद्धान्त के आधार पर पहले से नहीं बताया जा सकता, बल्कि प्रयोगों में ठीक बैठने के लिए उनका चयन करना पड़ता है। परन्तु ये पूर्णतः एकीकृत सिद्धान्त की ओर एक कदम हो सकता है। महाएकीकृत सिद्धान्त (GUT) का मूल विचार इस प्रकार है : जैसाकि ऊपर बताया गया है, दृढ़ नाभिकीय बलों की शक्ति उच्च ऊर्जा पर बहुत कम हो जाती है। दूसरी ओर, विद्युतचुम्बकीय और क्षीण नाभिकीय बल जो उपगामी रूप से (asymptotically) स्वतन्त्र नहीं होते, उच्च ऊर्जा पर दृढ़ हो जाते हैं। किसी अत्यधिक ऊर्जा पर, जिसे महाएकीकरण ऊर्जा कहा जाए, इन सभी तीनों बलों की शक्ति एक-सी होगी और इसीलिए ये किसी एक अकेले बल के विभिन्न स्वरूप हो सकते हैं। बलों के महाएकीकरण सिद्धान्त यह भी पूर्वानुमान प्रस्तुत करते हैं कि क्वार्कों तथा इलेक्ट्रोनों जैसे 1/2 स्पिन वाले विभिन्न पदार्थ-कण भी आवश्यक रूप से एक जैसे हो जाएँगे, जिससे एक और एकीकरण उपलब्ध हो जाएगा।



चित्र 5.2 : एक प्रोटोन तथा एक प्रति-प्रोटोन उच्च ऊर्जा पर टकराते हैं और लगभग स्वतः-क्वार्कों के एक जोड़े को उत्पन्न करते हैं।

महाएकीकरण ऊर्जा का मान बहुत अच्छी तरह ज्ञात नहीं है, परन्तु सम्भवतः यह कम-से-कम 10^{15} (1 के बाद 15 शून्य) GeV होगा। वर्तमान पीढ़ी के कण-त्वरित्र लगभग एक सौ GeV की ऊर्जा पर कणों को टकरा सकते हैं, और ऐसी मशीन बनाने की योजना है जो इस ऊर्जा को कुछ हजार GeV तब बढ़ा देगी। परन्तु ऐसी मशीन जो महाएकीकरण ऊर्जा पर कणों का त्वरण करने के लिए पर्याप्त रूप से शक्तिशाली हो, हमारे सौरमण्डल के बराबर होगी—और वर्तमान आर्थिक स्थिति में इसके लिए धन का प्रबन्ध नितान्त असम्भव होगा। इस प्रकार से बलों के महाएकीकरण सिद्धान्त का प्रत्यक्ष रूप से प्रयोगशाला में परीक्षण करना लगभग असम्भव है। बहरहाल, विद्युत-चुम्बकीय और क्षीण बलों के एकीकृत सिद्धान्त के समान ही इस सिद्धान्त के भी कम ऊर्जा वाले परिणाम हैं जिनका परीक्षण किया जा सकता है।

इनमें सबसे रोचक पूर्वानुमान यह है कि प्रोटोन, जो साधारण पदार्थ के द्रव्यमान का एक बहुत बड़ा भाग है, स्वतः क्षीण होकर प्रति-इलेक्ट्रोन जैसे हल्के कणों में परिवर्तित हो सकते हैं। इस सम्भावना का कारण यह है कि महाएकीकरण ऊर्जा पर एक क्वार्क और एक प्रति-इलेक्ट्रोन में कोई अनिवार्य अन्तर नहीं होता है। प्रोटोनों के अन्दर तीनों क्वार्कों में सामान्यतः इतनी ऊर्जा नहीं होती कि वे प्रति-इलेक्ट्रोनों में रूपान्तरित हो सकें, परन्तु यदा-कदा उनमें से एक यह रूपान्तरण करने के लिए पर्याप्त ऊर्जा प्राप्त कर सकता है, क्योंकि अनिश्चितता के सिद्धान्त का अर्थ यह है कि प्रोटोनों के अन्दर क्वार्कों की ऊर्जा सटीक रूप से तय नहीं की जा सकती। तब प्रोटोन का क्षय होगा। एक क्वार्क की पर्याप्त ऊर्जा प्राप्त करने की सम्भावना इतनी कम है कि कम-से-कम 10^{30} (1 के बाद 30 शून्य) वर्षों तक प्रतीक्षारत रहना पड़ेगा। यह समय महाविस्फोट से अब तक के समय से भी बहुत ज्यादा है जोकि मात्र लगभग दस अरब वर्ष है। इसलिए शायद यह सोचा जाएगा कि प्रोटोन के स्वतः क्षय होने की सम्भावना का प्रयोगों से परीक्षण नहीं किया जा सकता। हालाँकि प्रोटोनों की बहुत अधिक संख्या वाले पदार्थ की बहुत बड़ी मात्रा का प्रेक्षण करके प्रोटोन के क्षय का पता लगाने के लिए अवसर बढ़ाए जा सकते हैं। (उदाहरण के लिए, यदि एक के बाद 31 शून्य के बराबर प्रोटोनों की संख्या का प्रेक्षण कोई एक वर्ष तक करता है तो सरलतम-महाएकीकरण सिद्धान्त के अनुसार उसे एक से अधिक प्रोटोन के क्षय का प्रेक्षण करने की अपेक्षा रहेगी।)

ऐसे कई सारे प्रयोग किए गए हैं, लेकिन उनमें से किसी ने भी प्रोटोन या न्यूट्रोन के क्षय का कोई ठोस सबूत नहीं दिया है। एक ऐसे प्रयोग में आठ हजार टन पानी का उपयोग किया गया। यह प्रयोग ओहियो में मॉर्टन साल्ट माइन में सम्पन्न किया गया था (ताकि ब्रह्माण्डीय किरणों के कारण होनेवाली अन्य घटनाओं, जिन्हें भ्रमवश प्रोटोन-क्षय समझा जा सकता था, से बचा जा सके)। चूँकि परीक्षण के दौरान कोई भी 'स्वतः प्रोटोन-क्षय' प्रेक्षित नहीं किया गया, अतः कोई यह गणना कर सकता है कि प्रोटोन के जीवन की सम्भाव्यता 10^{31} (1 के बाद 31 शून्य) वर्षों से निश्चित रूप से अधिक होनी चाहिए। यह समय सरलतम महाएकीकृत सिद्धान्त द्वारा बताए गए जीवनकाल से अपेक्षाकृत अधिक है, परन्तु और भी अधिक विस्तृत सिद्धान्त हैं जिनमें प्रोटोनों का जीवनकाल और भी अधिक बताया गया है। परन्तु स्वतः प्रोटोन-क्षय का परीक्षण करने के लिए और भी अधिक सुग्राही (sensitive) प्रयोग करने की आवश्यकता होगी, जिनमें पदार्थ की और भी ज्यादा मात्रा शामिल हो।

हालाँकि स्वतः प्रोटोन-क्षय का प्रेक्षण करना बहुत कठिन है, फिर भी यह हो सकता है कि हमारा अस्तित्व ही विपरीत प्रक्रिया का परिणाम हो; एक ऐसी आद्य स्थिति से प्रोटोनों की उत्पत्ति, या और सरलता से कहें, क्वार्कों की उत्पत्ति जिसमें प्रतिक्वार्कों की अपेक्षा क्वार्क अधिक नहीं थे, जोकि ब्रह्माण्ड के प्रारम्भ की कल्पना करने का सबसे अधिक स्वाभाविक तरीका है। पृथ्वी पर पदार्थ मुख्यतः प्रोटोनों एवं न्यूट्रोनों का बना हुआ है जो घूम-फिरकर क्वार्कों के ही बने हुए हैं। प्रतिक्वार्कों से न तो प्रति-प्रोटोन मिले और न प्रति-न्यूट्रोन। इसका अपवाद केवल वह नगण्य

मात्रा है जो भौतिकीविद विशाल कण-त्वरित्रों में उत्पन्न कर सके हैं। हमारे पास ब्रह्माण्डीय किरणों से प्राप्त ऐसे ठोस प्रमाण हैं कि यही तथ्य हमारी आकाशगंगा के सारे पदार्थ के बारे में सही है : वहाँ कोई प्रति-प्रोटोन या प्रति-न्यूट्रोन नहीं हैं सिवाय कणों/प्रतिकणों के जोड़ों की उस अल्प मात्रा के जो अत्यधिक ऊर्जा पर टक्कर से पैदा होती है। यदि हमारी आकाशगंगा में प्रति-पदार्थ के बड़े क्षेत्र होते, तब हम पदार्थ और प्रति-पदार्थ क्षेत्रों के बीच उनकी हदों से विशाल मात्रा में विकिरण के प्रेक्षण की उम्मीद करते, जहाँ कण अपने प्रतिकणों से टकरा रहे होते, एक-दूसरे का विनाश कर रहे होते और अत्यधिक उच्च ऊर्जा का विकिरण उत्सर्जित कर रहे होते।

हमारे पास फिलहाल ऐसा कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है जो यह स्थिति स्पष्ट कर सके कि दूसरी मन्दाकिनियों में पदार्थ प्रोटोनों तथा न्यूट्रोनों का बना है, या प्रति-प्रोटोनों तथा प्रति-न्यूट्रोनों का, परन्तु यह दोनों में से किसी एक का बना हुआ अवश्य होना चाहिए। किसी भी मन्दाकिनी में कण तथा प्रतिकण का सम्मिश्रण नहीं हो सकता, क्योंकि उस स्थिति में हम द्रव्य-विनाश से पुनः बहुत बड़ी मात्रा में विकिरण का प्रेक्षण करेंगे। अतएव, हमारा विश्वास है कि सभी मन्दाकिनियाँ प्रतिक्वार्कों के स्थान पर क्वार्कों की बनी हुई हैं; यह युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता कि कुछ मन्दाकिनियाँ पदार्थ की बनी हों तथा कुछ प्रति-पदार्थ की।

प्रतिक्वार्कों की अपेक्षा क्वार्कों की संख्या इतनी अधिक क्यों है? उनमें से प्रत्येक की बराबर-बराबर मात्रा क्यों नहीं है? हमारे लिए यह निश्चित रूप से सौभाग्य की बात है कि यह संख्या असमान है, क्योंकि यदि उनकी संख्या समान होती, तब लगभग सभी क्वार्क तथा प्रतिक्वार्क ब्रह्माण्ड की आद्य-अवस्था में ही एक-दूसरे का सम्पूर्ण विनाश कर देते तथा एक ऐसा ब्रह्माण्ड शेष रहता जो विकिरण से तो भरा हुआ होता परन्तु उसमें पदार्थ नाममात्र का ही होता। उस अवस्था में न तो मन्दाकिनियाँ ही होतीं, न तारे, और न ही ग्रह होते जिन पर मानव जीवन विकसित हो सकता। सौभाग्यवश, महाएकीकरण सिद्धान्त इस प्रश्न का स्पष्टीकरण प्रदान कर सकता है कि अब ब्रह्माण्ड में प्रतिक्वार्कों की अपेक्षा क्वार्कों की संख्या अधिक क्यों है, हालाँकि यह (ब्रह्माण्ड) दोनों की बराबर संख्या से शुरू हुआ था। जैसाकि हमने देखा है, महाएकीकरण सिद्धान्त (GUTS) क्वार्कों को अत्यधिक ऊर्जा पर प्रति-इलेक्ट्रोनों में बदल जाने की अनुमति देता है। वह उन उत्क्रम प्रक्रमों (reverse processes)की भी अनुमति देता है जिनमें प्रतिक्वार्क इलेक्ट्रोनों में बदल जाते हैं, और इलेक्ट्रोन तथा प्रति-इलेक्ट्रोन, प्रतिक्वार्कों तथा क्वार्कों में बदल जाते हैं। ब्रह्माण्ड की आद्य अवस्था में एक ऐसा समय था जबकि इसका ताप इतना अधिक था कि कण-ऊर्जा इन रूपान्तरणों के घटित होने के लिए पर्याप्त रही होगी। परन्तु यह वस्तुस्थिति प्रतिक्वार्कों की अपेक्षा क्वार्कों की अधिक मात्रा का मार्ग प्रशस्त क्यों करे? इसका कारण यह है कि कणों तथा प्रतिकणों के लिए भौतिकी के नियम बिल्कुल एक-से नहीं हैं।

सन् 1956 तक यह विश्वास किया जाता था कि भौतिकी के नियम C.P. और T नामक तीनों पृथक सममितियों का पालन करते हैं। C सममिति का अर्थ यह है कि कणों तथा प्रतिकणों के लिए नियम एक-से होते हैं। P सममिति का अर्थ यह है कि किसी भी स्थिति तथा उसके दर्पण प्रतिबिम्ब (mirror image) के लिए नियम एक समान हैं—(सीधे हाथ की दिशा में घूर्णन करनेवाले किसी कण का दर्पण प्रतिबिम्ब बाएँ हाथ की दिशा में घूर्णन करनेवाला होता है।) T सममिति का अर्थ यह है कि यदि आप सभी कणों तथा प्रतिकणों की गति की दिशा विपरीत कर दें, तो समस्त ब्रह्माण्ड प्रणाली घूम-फिरकर वहीं पहुँच जाएगी जैसीकि वह आद्य अवस्था में थी; दूसरे शब्दों में, समय के आगे और पीछे की दिशाओं में नियम एक-से होते हैं। सन् 1956 में, त्सुंग-दाओ ली तथा चेन निंग यांग नामक दो अमेरिकी भौतिकीविदों ने यह सुझाव दिया कि क्षीण नाभिकीय बल वस्तुतः P सममिति का अनुपालन नहीं करता। दूसरे शब्दों में, क्षीण बल, जिस तरीके से ब्रह्माण्ड का विकास होगा, उससे बिल्कुल भिन्न तरीके से ब्रह्माण्ड के दर्पण प्रतिबिम्ब का विकास कराएगा। उसी वर्ष एक सहकर्मी, चियेन शियुंग वू ने अपने पूर्वानुमान को सही सिद्ध कर दिया। ऐसा उन्होंने रेडियो सक्रिय परमाणुओं के नाभिकों को एक चुम्बकीय क्षेत्र में पंक्तिबद्ध करके किया, जिससे कि वे सब एक ही दिशा में घूर्णन कर रहे थे, और इस तरह यह दिखाया कि

इलेक्ट्रोन किसी दूसरी दिशा की अपेक्षा एक ही दिशा में अधिक उत्सर्जित हुए थे। अगले वर्ष ली और यांग को उनकी अवधारणा के लिए नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया। यह भी पाया गया कि क्षीण बल सममिति C का भी अनुपालन नहीं करते। अर्थात् इसके कारण प्रतिकणों से निर्मित कोई ब्रह्माण्ड हमारे ब्रह्माण्ड से बिल्कुल भिन्न तरह का होगा। फिर भी यह प्रतीत होता था कि क्षीण बल संयुक्त सममिति CP का अनुपालन करते थे। अर्थात्, ब्रह्माण्ड उसी प्रकार से विकसित होगा जैसेकि इसका दर्पण प्रतिबिम्ब, बशर्ते, इसके अलावा, प्रत्येक कण की अपने प्रतिकण से अदला-बदली हो जाए! हालाँकि, सन् 1964 में, जे. डब्ल्यू. क्रोनिन तथा वाल फिच नामक दो अन्य अमेरिकी भौतिकीविदों ने यह खोजा कि K-मैसोन (K-mesons) नामक कुछ विशिष्ट कणों के क्षय में संयुक्त सममिति CP का भी अनुपालन नहीं होता था। अन्ततः क्रोनिन तथा फिच ने भी सन् 1980 में अपने कार्य के लिए नोबेल पुरस्कार प्राप्त किया। (बहुत सारे पुरस्कार यह दिखाने के लिए ही दिए गए हैं कि ब्रह्माण्ड इतना सरल नहीं है जितना हमने शायद सोचा होगा!)

एक गणितीय प्रमेय है जो यह बताती है कि हर उस सिद्धान्त को, जो क्वाण्टम यान्त्रिकी तथा आपेक्षिकता सिद्धान्त का अनुपालन करता है, संयुक्त सममिति CPT का निश्चित रूप से अनुपालन करना चाहिए। दूसरे शब्दों में, ब्रह्माण्ड को एक-सा ही व्यवहार करना पड़ेगा चाहे कोई कणों के स्थान पर प्रतिकणों को प्रतिस्थापित कर दे, दर्पण प्रतिबिम्ब ले ले तथा समय की दिशा विपरीत स्थिति में कर दे। परन्तु क्रोनिन तथा फिच ने यह दिखाया कि यदि कोई कणों के स्थान पर प्रतिकणों को प्रतिस्थापित कर दे और दर्पण प्रतिबिम्ब को ले ले, परन्तु काल की दिशा को विपरीत क्रम में न करे, तब ब्रह्माण्ड उसी तरह का व्यवहार नहीं करता है। यदि कोई काल की दिशा को विपरीत अवस्था में कर देता है तो भौतिकी के नियम भी बदल जाने चाहिए—वे सममिति का T अनुपालन नहीं करते।

प्रारम्भिक ब्रह्माण्ड निश्चित रूप से सममिति T का अनुपालन नहीं करता है : ज्यों-ज्यों काल आगे बढ़ता जाता है, ब्रह्माण्ड का विस्तार होता जाता है—यदि काल उल्टा चलने लगे तो ब्रह्माण्ड का संकुचन होगा। और चूँकि ऐसे बल हैं जो सममिति T का अनुपालन नहीं करते, अतः इसका अर्थ यह निकलता है कि ज्यों-ज्यों ब्रह्माण्ड का विस्तार होता है, ये बल इलेक्ट्रोनों के प्रतिक्वार्कों में बदलने की अपेक्षा अधिकाधिक प्रति-इलेक्ट्रोनों को क्वार्कों में बदल सकते हैं। फिर, जैसे ही ब्रह्माण्ड का विस्तार हुआ और यह ठंडा हुआ, प्रतिक्वार्कों ने क्वार्कों का सम्पूर्ण विनाश कर दिया होगा। परन्तु, चूँकि, प्रतिक्वार्कों की अपेक्षा क्वार्क अधिक संख्या में होंगे, इसलिए क्वार्क थोड़ा अधिक मात्रा में बचे रहे होंगे। यही शेष बचे हुए वे क्वार्क हैं जिनसे यह पदार्थ निर्मित है जिसे हम आज देखते हैं और जिससे स्वयं हमारी रचना हुई। इस प्रकार हमारा अपना अस्तित्व भी महाएकीकृत सिद्धान्तों की पुष्टि के रूप में माना जा सकता है, हालाँकि मात्र एक गुणात्मक रूप में ही; अनिश्चितताएँ भी ऐसी हैं कि सम्पूर्ण विनाश के बाद शेष बचे हुए क्वार्कों की संख्या के बारे में कोई पूर्वानुमान नहीं लगा सकता या यह भी नहीं बता सकता कि शेष बचे हुए कण क्वार्क होंगे या प्रतिक्वार्क। (बहरहाल, यदि प्रतिक्वार्कों का आधिक्य होता, तब हम सहजता से प्रतिक्वार्कों का नाम क्वार्क रख लेते तथा क्वार्कों का प्रतिक्वार्क।)

महाएकीकरण सिद्धान्तों (GUTS) में गुरुत्व-बल सम्मिलित नहीं है। इससे कोई विशेष फर्क नहीं पड़ता क्योंकि गुरुत्व-बल इतना क्षीण बल है कि जब हम मूल कणों या परमाणुओं का विवेचन कर रहे होते हैं तब इसके प्रभावों को समान्यतया नजरअन्दाज किया जा सकता है। बहरहाल, यह तथ्य कि गुरुत्व-बल लम्बी दूरियों तक प्रभावी होता है तथा सदैव आकर्षी रहता है, इस आशय की ओर इंगित करता है कि इसके सभी प्रभाव संयुक्त रूप से जुड़ जाते हैं। इसीलिए पदार्थ-कणों की पर्याप्त रूप में अधिक मात्रा के लिए, गुरुत्व-बल अन्य सभी बलों पर अपना प्रभुत्व रख सकते हैं। इसी कारणवश गुरुत्व-बल ही ब्रह्माण्ड के क्रमिक विकास को सुनिश्चित करता है। तारों के आकार के पिण्डों के लिए भी, गुरुत्व-बल अन्य सभी बलों पर हावी हो सकता है तथा तारों के ध्वस्त होने का कारण बन सकता है। सन् 1970 के दशक में मेरा शोध कार्य कृष्ण विवरों तथा उनके चारों ओर के अत्यन्त प्रबल गुरुत्व-क्षेत्रों पर केन्द्रित था—ये कृष्ण विवर

ऐसे ही तारों के ध्वस्त होने के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आते हैं। इसी शोध कार्य से मुझे यह प्रारम्भिक संकेत मिले कि क्वाण्टम यान्त्रिकी तथा सामान्य आपेक्षिकता का सिद्धान्त किस प्रकार एक-दूसरे को सम्भावित रूप से प्रभावित कर सकते हैं—यह गुरुत्व के भावी क्वाण्टम सिद्धान्त के स्वरूप की एक झलक थी।

अध्याय 6

कृष्ण विवर

'कृष्ण विवर' शब्द का उद्गम हाल ही के समय का है। एक अमरीकी वैज्ञानिक जॉन व्हीलर (John Wheeler) द्वारा इस शब्द की रचना उस विचार के सजीव वर्णन के लिए सन् 1969 में की गई थी जो कम-से-कम दो सौ वर्ष पुराना है। उस समय का जब प्रकाश के बारे में दो सिद्धान्त प्रचलित थे : एक, जिसके पक्षधर न्यूटन थे, यह था कि प्रकाश कणों से बना हुआ है, दूसरा यह था कि यह तरंगों से बना हुआ है। हम आज यह जानते हैं कि वास्तव में दोनों ही सिद्धान्त सही हैं। क्वाण्टम यान्त्रिकी के कण/तरंग द्वैतता स्वरूप के कारण, प्रकाश को तरंग तथा कण, दोनों माना जा सकता है। इस सिद्धान्त के अनुसार कि प्रकाश तरंगों से निर्मित है, यह स्पष्ट नहीं होता कि यह गुरुत्व-बल से किस प्रकार प्रभावित होगा। परन्तु यदि प्रकाश कणों से निर्मित है तो कोई उन्हें गुरुत्व-बल से उसी प्रकार प्रभावित होने की अपेक्षा करेगा जैसेकि तोप के गोले, रॉकेट तथा ग्रह प्रभावित होते हैं। पहले लोग यह सोचते थे कि प्रकाश के कण असीमित तीव्र गति से चलते हैं, परन्तु रोमर (Roemer) की इस खोज का, कि प्रकाश एक नियत गति से चलता है, यह निष्कर्ष निकला कि गुरुत्व-बल का उस पर एक महत्त्वपूर्ण प्रभाव हो सकता है।

इसी धारणा पर, कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जॉन मिशेल (John Michell) ने सन् 1783 में 'लन्दन की रॉयल सोसायटी की वैज्ञानिक शोध-पत्रिका' ('Philosophical Transactions of the Royal Society of London') में एक लेख लिखा, जिसमें उन्होंने इस ओर ध्यान आकर्षित किया कि एक ऐसे तारे, जो पर्याप्त रूप से भारी तथा सघन हो, का इतना प्रबल गुरुत्व-क्षेत्र होगा कि यह प्रकाश की किरणों को बाहर नहीं निकलने देगा। तारे के पृष्ठ तल से उत्सर्जित कोई भी प्रकाश बहुत दूर जाने से पहले तारे के गुरुत्व-बल द्वारा वापस खींच लिया जाएगा। मिशेल ने यह सुझाव दिया कि इस प्रकार के तारों की एक बहुत बड़ी संख्या होने की सम्भावना हो सकती है। हालाँकि हम उन्हें देख नहीं सकेंगे, क्योंकि उनका प्रकाश हम तक नहीं पहुँचेगा, लेकिन हम उनके गुरुत्वाकर्षण को फिर भी अनुभव करेंगे। यही वे पिण्ड हैं, जिन्हें हम अब कृष्ण विवर कहते हैं, क्योंकि वे ऐसे ही हैं—आकाश में काले शून्य। इसी प्रकार का एक और सुझाव कुछ साल बाद एक फ्रांसीसी वैज्ञानिक मार्किस द लाप्लास (Marquis de Laplace) द्वारा मिशेल से बिल्कुल अलग, स्वतन्त्र रूप से दिया गया था। सबसे रोचक बात यह है कि लाप्लास ने अपनी पुस्तक 'विश्व की कार्य-प्रणाली' (The System of the World) के केवल पहले और दूसरे संस्करणों में इसे छोड़ दिया; शायद वह इस नतीजे पर पहुँचे कि यह विचार बड़ा अटपटा है। (बात यह भी थी कि प्रकाश के कण-सिद्धान्त को उन्नीसवीं शताब्दी में समर्थन नहीं मिल रहा था; ऐसा लगता था कि हर चीज तरंग सिद्धान्त से स्पष्ट की जा सकती है, और तरंग सिद्धान्त के अनुसार यह स्पष्ट नहीं था, कि प्रकाश गुरुत्व-बल से जरा भी प्रभावित होगा)।

असल में, न्यूटन के गुरुत्व सिद्धान्त में प्रकाश को तोप के गोलों की तरह मानना ठीक नहीं है, क्योंकि प्रकाश का वेग नियत है। (पृथ्वी से ऊपर की ओर दागे गए तोप के गोले की गति गुरुत्व-बल द्वारा धीमी कर दी जाएगी, और अन्त में यह रुककर नीचे गिर जाएगा, हालाँकि एक

एक फोटोन एक सतत वेग पर निरन्तर ऊपर जाता रहेगा। न्यूटन का गुरुत्व-बल फिर प्रकाश को कैसे प्रभावित करेगा!) गुरुत्व-बल प्रकाश को किस प्रकार प्रभावित करता है, इस सम्बन्ध में एक उपयुक्त सिद्धान्त उस समय तक सामने नहीं आया जब तक कि सन् 1915 में आइंस्टाइन ने सामान्य आपेक्षिकता को प्रस्तावित नहीं कर दिया। इससे पहले कि महाकाय स्थूल तारों के लिए इस सिद्धान्त का निहितार्थ समझा जाता, काफी समय बीत गया।

यह समझने के लिए कि एक कृष्ण विवर किस प्रकार निर्मित होता होगा, हमें सर्वप्रथम तारे के जीवन-चक्र को समझने की जरूरत है। कोई भी तारा उस समय अस्तित्व में आता है, जब गैस (अधिकांशतः हाइड्रोजन) के एक अत्यन्त विशाल परिमाण का अपने गुरुत्व के कारण अपने ऊपर ही निपात होना प्रारम्भ हो जाता है। ज्यों-ज्यों गैस का यह विशाल परिमाण संकुचित होता जाता है, गैस के परमाणु अधिक-से-अधिक तीव्रता से निरन्तर बढ़ते हुए वेग के साथ एक-दूसरे से टकराते हैं—गैस का ताप बढ़ जाता है। अन्त में गैस का ताप इतना अधिक हो जाएगा कि जब हाइड्रोजन के परमाणु एक-दूसरे से टकराएँगे तो वे टकराकर उछलेंगे नहीं बल्कि हीलियम का निर्माण करने के लिए संयुक्त रूप से जुड़कर एक हो जाएँगे। यह अभिक्रिया जो एक नियन्त्रित हाइड्रोजन बम-विस्फोट के समान है, ऊष्मा को मुक्त करती है जिससे तारा चमकने लगता है। यह अतिरिक्त ऊष्मा भी गैस के दाब को उस समय तक बढ़ाती जाती है जब तक कि यह गुरुत्वाकर्षण को सन्तुलित करने के लिए पर्याप्त न हो तथा गैस का संकुचन बन्द न हो जाए। यह कुछ-कुछ गुब्बारे के समान है—अन्दर वायु के दाब व बाहर रबड़ के पृष्ठतल के तनाव के बीच एक सन्तुलन होता है; अन्दर वायु का दाब गुब्बारे को फुलाने का प्रयत्न कर रहा होता है तथा रबड़ के पृष्ठतल का तनाव गुब्बारे को छोटा करने का। नाभिकीय अभिक्रियाओं से निकली ऊष्मा तारे के गुरुत्वाकर्षण को सन्तुलित करती रहेगी और तारा इस प्रकार से लम्बे समय तक स्थायी बना रहेगा। आखिर में तारे की हाइड्रोजन गैस तथा उसका दूसरा नाभिकीय ईंधन समाप्त हो जाएगा। यह भी एक विरोधाभास है कि जितने अधिक ईंधन के साथ कोई तारा शुरू होता है, उतनी ही जल्दी वह समाप्त हो जाता है। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि जितना अधिक विशालकाय व स्थूल कोई तारा होता है, उसके गुरुत्वाकर्षण को सन्तुलित करने के लिए, उतनी ही अधिक ऊष्मा की आवश्यकता पड़ती है। और इसका ताप जितना अधिक होगा, यह अपने ईंधन की उतनी ही तेजी से खपत करके समाप्त कर लेगा। हमारे सूर्य के पास शायद अगले पाँच अरब सालों के लिए पर्याप्त ईंधन है, परन्तु अपेक्षाकृत अधिक विशालकाय तारे अपने ईंधन को मात्र दस करोड़ वर्षों के छोटे समय में ही समाप्त कर सकते हैं, जोकि ब्रह्माण्ड की आयु से भी काफी कम है। जब किसी तारे का ईंधन समाप्त हो जाता है, तो यह ठंडा होना शुरू हो जाता है और इसी कारण संकुचित होने लगता है। इसके बाद इसका क्या होता होगा, यह बात केवल 1920 के दशक के अन्त में ही सबसे पहले समझी गई।

सन् 1928 में एक भारतीय स्नातक छात्र, सुब्रह्मण्यन चन्द्रशेखर, सामान्य आपेक्षिकता सिद्धान्त के विशेषज्ञ, एक ब्रिटिश खगोलविद् सर आर्थर एडिंगटन के पास कैम्ब्रिज में अध्ययन करने के लिए इंग्लैण्ड गए। (कुछ वृत्तान्तों के अनुसार, एक पत्रकार ने सन् 1920 के दशक के शुरू में एडिंगटन को यह बताया कि उसने सुना है कि दुनिया में मात्र तीन लोग ही ऐसे हैं जो सामान्य आपेक्षिकता सिद्धान्त को समझते हैं। एडिंगटन थोड़ा रुके, फिर बोले, "मैं यह सोचने का प्रयास कर रहा हूँ कि यह तीसरा व्यक्ति कौन है।") भारत से अपनी समुद्री यात्रा के दौरान, चन्द्रशेखर ने यह हिसाब लगाया कि कोई तारा अपना पूरा ईंधन खत्म करने के बावजूद अपने गुरुत्व के विरुद्ध स्वयं को सँभाल सके, इसके लिए उसे कितना बड़ा होना चाहिए। विचार यह था : जब कोई तारा छोटा हो जाता है, तो पदार्थ-कण एक-दूसरे के बहुत समीप आ जाते हैं, और इसलिए पॉली (Pauli) के अपवर्जन सिद्धान्त (Exclusion Theory) के अनुसार, उनके वेग निश्चित रूप से बहुत भिन्न होने चाहिए। कणों के वेगों की यह भिन्नता उन्हें एक-दूसरे से दूर भगाती रहती है और इसलिए उनकी प्रवृत्ति तारे का विस्तार करने की हो जाती है। कोई तारा, इसी कारणवश अपने गुरुत्वाकर्षण और अपवर्जन सिद्धान्त से उत्पन्न प्रतिकर्षण के मध्य एक

सन्तुलन द्वारा स्वयं को एक स्थिर त्रिज्या पर ठीक उसी प्रकार बनाए रखता है जिस प्रकार इसके जीवन-चक्र के प्रारम्भ में गुरुत्व-बल को ऊष्मा द्वारा सन्तुलित किया गया था।

बहरहाल, चन्द्रशेखर ने यह बात स्पष्ट रूप से समझ ली थी कि अपवर्जन सिद्धान्त द्वारा प्रदत्त प्रतिकर्षण की भी एक सीमा है। आपेक्षिकता का सिद्धान्त प्रकाश की गति के अन्तर्गत ही तारे में पदार्थ-कणों के वेगों के अधिकतम अन्तर को सीमित कर देता है। इसका अर्थ यह हुआ कि जब तारा पर्याप्त रूप से सघन हो जाता है, तो अपवर्जन सिद्धान्त से प्रेरित प्रतिकर्षण गुरुत्वाकर्षण की अपेक्षा कम होगा। चन्द्रशेखर ने यह गणना की कि हमारे सूर्य से लगभग डेढ़ गुना अधिक द्रव्यमान का कोई अतप्त तारा (cold star) अपने ही गुरुत्व-बल के विरुद्ध स्वयं को नहीं सँभाल सकेगा (यह द्रव्यमान अब चन्द्रशेखर-सीमा के रूप में जाना जाता है)। ऐसी ही खोज लगभग इसी समय एक रूसी वैज्ञानिक लेव डेविडोविच लैन्दाउ (Lew Davudovich Landau) ने की थी।

महाकाय तारों की अन्तिम नियति के लिए इस (क्रान्तिक सीमा) के गम्भीर अर्थ थे। यदि किसी तारे का द्रव्यमान चन्द्रशेखर-सीमा से कम है, तो आखिर में यह सिकुड़ना बन्द कर सकता है और अपनी सम्भावित अन्तिम स्थिति के रूप में एक 'श्वेत-वामन' (white dwarf) के रूप में स्थिरता प्राप्त कर सकता है, जिसकी त्रिज्या केवल कुछ हजार मीलों की होगी तथा घनत्व सैकड़ों टन प्रति घन इंच होगा। श्वेत-वामन तारे को अपवर्जन सिद्धान्त के अनुसार इसके पदार्थ में इलेक्ट्रोनों के बीच प्रतिकर्षण द्वारा अवलम्बन दिया जाता है। हम ऐसे बहुत सारे श्वेत-वामन तारों का प्रेक्षण करते हैं। सबसे पहले खोजे गए ऐसे तारों में एक वह तारा है जो रात्रि-आकाश के सबसे चमकदार तारे व्याध (Sirius) की परिक्रमा कर रहा है।

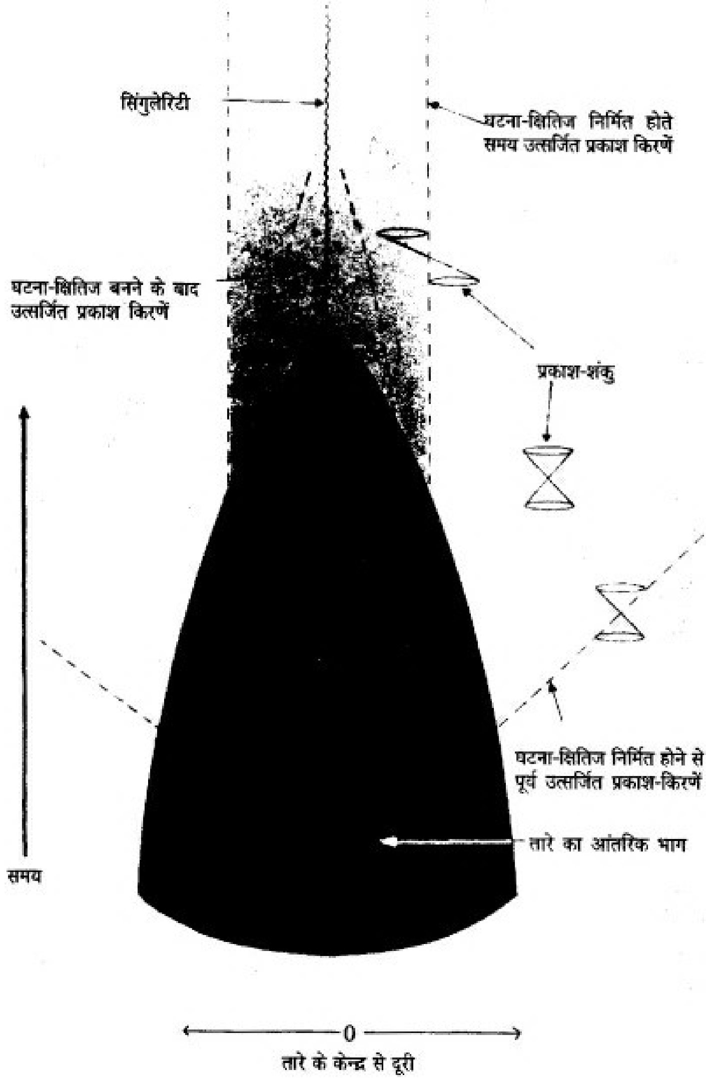
लैन्दाउ ने यह स्पष्ट किया कि सूर्य के द्रव्यमान से लगभग एक या दो गुना अधिक द्रव्यमान वाले, परन्तु श्वेत-वामन से भी काफी छोटे तारे के लिए एक और सम्भावित अन्तिम स्थिति है। ये तारे अपवर्जन सिद्धान्त के अनुसार बजाय इलेक्ट्रोनों के बीच प्रतिकर्षण के, न्यूट्रोनों और प्रोटोनों के बीच प्रतिकर्षण से अवलम्ब प्राप्त करेंगे। इसीलिए इन्हें न्यूट्रोन तारे कहा गया। इन तारों की त्रिज्या मात्र लगभग 10 मील के आसपास होगी और घनत्व प्रति घन इंच दसियों करोड़ टन होगा। जिस समय उनकी सबसे पहले भविष्यवाणी की गई थी, उस समय ऐसा कोई तरीका नहीं था जिससे कि न्यूट्रोन तारों का प्रेक्षण किया जा सकता। वास्तव में, काफी समय बाद तक उनका पता नहीं लगाया जा सका था।

दूसरी ओर, चन्द्रशेखर-सीमा से अधिक द्रव्यमान वाले तारों के सामने उस समय बड़ी समस्या होती है जब उनका ईंधन समाप्ति पर होता है। कुछ मामलों में उनमें विस्फोट हो सकता है या चन्द्रशेखर-सीमा से नीचे अपना द्रव्यमान कम करने के लिए वे अपना पर्याप्त पदार्थ बाहर फेंक देते हैं और इस प्रकार से अपने गुरुत्व-बल के दाब के कारण सम्भावित निपात की दुर्घटना से बच जाते हैं; परन्तु यह विश्वास करना काफी कठिन था। चाहे तारा कितना भी बड़ा क्यों न हो, फिर भी क्या ऐसा सदैव घटित होता है? तारे को यह कैसे मालूम होगा कि उसे अपना वजन घटाना है? और यदि हर तारा ध्वंस से बचने के लिए पर्याप्त मात्रा में पदार्थ कम करने में सफल भी हो जाता है, तो उस स्थिति में क्या होगा यदि आप किसी श्वेत-वामन में या न्यूट्रोन तारे में चन्द्रशेखर-सीमा को अधिक करने के लिए और अधिक पदार्थ जोड़ दें? क्या वह ध्वस्त होकर असीमित घनत्व की स्थिति में पहुँच जाएगा? एडिंगटन (Eddington) इस निहितार्थ से स्तब्ध रह गए थे, और उन्होंने चन्द्रशेखर के निष्कर्षों पर विश्वास नहीं किया। एडिंगटन का विचार था कि यह किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है कि कोई तारा ध्वस्त होकर एक बिन्दु तक सीमित हो जाए। अधिकांश वैज्ञानिकों का भी यही विचार था : आइंस्टाइन ने स्वयं एक लेख लिखा था जिसमें उन्होंने यह दावा किया था कि तारे शून्य आकार तक नहीं सिकुड़ सकते। दूसरे वैज्ञानिकों के प्रबल विरोध ने, विशेष रूप से उनके पूर्व अध्यापक तथा तारों की सरंचना पर अग्रणी प्रमाणित जानकारी रखनेवाले एडिंगटन ने चन्द्रशेखर को इस कार्य-क्षेत्र को छोड़ने के लिए और इसके बजाय तारा-गुच्छों (Star-clusters) की गति जैसी खगोलविज्ञान की दूसरी समस्याओं की ओर अपना

ध्यान लगाने के लिए सहमत किया। बहरहाल, सन् 1983 में जब चन्द्रशेखर को नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया, तो यह कुछ हद तक अतप्त तारों के सीमांत द्रव्यमान (limiting mass) पर उनके प्रारम्भिक कार्य के लिए भी था।

चन्द्रशेखर ने यह प्रमाणित किया था कि अपवर्जन सिद्धान्त चन्द्रशेखर-सीमा से अधिक द्रव्यमान वाले किसी तारे के निपात होने से नहीं रोक सकता। परन्तु सामान्य आपेक्षिकता सिद्धान्त के अनुसार, ऐसे किसी तारे का क्या होगा, यह समझने की समस्या सबसे पहले एक युवा अमेरिकी राबर्ट ओपेनहाइमर (Robert Oppenheimer) द्वारा सन् 1939 में सुलझाई गई। उनके निष्कर्षों ने, हालाँकि, यह सुझाया कि ऐसे कोई प्रेक्षणात्मक परिणाम नहीं होंगे जिनका उस समय की दूरबीनों द्वारा पता लगाया जा सके। फिर बीच में द्वितीय विश्वयुद्ध आ गया तथा ओपेनहाइमर स्वयं परमाणु बम परियोजना में निकटता से जुड़ गए। युद्ध के बाद, गुरुत्वीय निपात को ज्यादातर भुला दिया गया, क्योंकि अधिकांश वैज्ञानिक इस समस्या में उलझ गए कि परमाणु और उसके नाभिक के स्तर पर क्या घटित होता है। फिर भी, सन् 1960 के दशक में, आधुनिक तकनीक के उपयोग द्वारा खगोलीय प्रेक्षणों की संख्या और सीमा-क्षेत्र में लाई गई वृद्धि से, खगोलविज्ञान और ब्रह्माण्डविज्ञान की बड़े स्तर की समस्याओं में अभिरुचि पुनः जाग्रत हुई। तब कई सारे लोगों ने ओपेनहाइमर के कार्य को फिर से खोजा और उसे आगे बढ़ाया।

ओपेनहाइमर के शोध कार्य से अब जो तस्वीर हमारे सामने उभरती है, वह इस प्रकार है : तारे का गुरुत्व-क्षेत्र दिक्-काल में प्रकाश-किरणों के उस पथ में परिवर्तन कर देता है जिस पर प्रकाश-किरणें उस तारे के मौजूद न होने की स्थिति में चलतीं। प्रकाश-शंकु, जो दिक् ओर काल में अपने छोरों से उत्सर्जित प्रकाश की दमक से मार्ग का संकेत करते हैं, तारे के पृष्ठतल के निकट थोड़ा-सा अन्दर की ओर मुड़ जाते हैं। यह तथ्य सूर्यग्रहण के दौरान प्रेक्षित दूरस्थ तारों के प्रकाश के मुड़ने में देखा जा सकता है। ज्यों-ज्यों तारा संकुचित होता जाता है, इसके पृष्ठ-तल पर गुरुत्व-क्षेत्र और दृढ़ होता जाता है तथा प्रकाश-शंकु और अन्दर की ओर झुकते जाते हैं। यह तारे से उत्सर्जित प्रकाश का बाहर निकलना और कठिन कर देता है तथा दूरी पर किसी प्रेक्षक को यह प्रकाश और धुँधला तथा अधिक लाल दिखाई पड़ता है। अन्ततः, जब तारा किसी निश्चित क्रान्तिक त्रिज्या तक सिकुड़ चुका होता है, तो इसके पृष्ठ-तल पर गुरुत्व-क्षेत्र अत्यन्त सबल हो जाता है तथा प्रकाश-शंकु अन्दर की ओर इतने अधिक झुक जाते हैं कि प्रकाश बिल्कुल भी बाहर नहीं निकल सकता (चित्र 6.1)। आपेक्षिकता सिद्धान्त के अनुसार, कोई भी चीज प्रकाश की गति से तेज नहीं चल सकती। इस प्रकार, यदि प्रकाश बाहर निकलकर नहीं आ सकता, तो कोई अन्य वस्तु भी बाहर नहीं निकल सकती, हर वस्तु गुरुत्व-क्षेत्र द्वारा वापस खींच ली जाती है। इस प्रकार हमारे पास घटनाओं का एक समुच्चय होता है; दिक्-काल (Space-time) का एक ऐसा क्षेत्र जिसमें से किसी दूरस्थ प्रेक्षक के पास पहुँचने के लिए किसी भी वस्तु की कोई सम्भावना नहीं होती है। यही वह क्षेत्र है जिसे अब हम कृष्ण विवर कहते हैं। इसकी परिसीमा घटना-क्षितिज (event horizon) कहलाती है तथा यह उन प्रकाश-किरणों के पथ के साथ सम्पात (coincides) करती है जो कृष्ण विवर में से बाहर निकलने में असमर्थ रहती हैं।



चित्र 6.1

यह समझने के लिए कि यदि आप एक कृष्ण विवर का निर्माण करने के लिए किसी तारे को ध्वस्त होते हुए देख रहे हों, उस स्थिति में आप क्या देखेंगे, आपको यह याद रखना है कि आपेक्षिकता सिद्धान्त में कोई परम-काल (absolute time) नहीं होता। हर प्रेक्षक का काल का अपना माप होता है। तारे के गुरुत्व-क्षेत्र के कारण, तारे पर मौजूद किसी व्यक्ति के लिए काल उस व्यक्ति के काल से भिन्न होगा जो कुछ दूरी पर है। मान लीजिए, किसी निर्भीक अन्तरिक्ष यात्री ने अन्दर की ओर ध्वस्त होते हुए किसी तारे के पृष्ठ-तल से तारे की परिक्रमा करते हुए अपने अन्तरिक्ष यान को अपनी घड़ी के अनुसार प्रति सेकिण्ड एक संकेत भेजा। उसकी घड़ी के अनुसार किसी समय, मान लीजिए 11 बजे, तारा क्रान्तिक त्रिज्या से नीचे सिकुड़ जाएगा, जिस पर गुरुत्व-क्षेत्र इतना प्रबल हो जाता है कि कुछ भी बाहर नहीं निकल सकता, तो फिर उसके संकेत भी अन्तरिक्ष यान तक नहीं पहुँचेंगे। ज्यों-ज्यों 11 बजे का समय निकट आएगा, अन्तरिक्ष यान से पर्यवेक्षण कर रहे उसके साथियों के लिए अन्तरिक्ष यात्री से प्राप्त हो रहे उत्तरोत्तर संकेतों के बीच का अन्तर भी पूर्वापेक्षा बढ़ता जाएगा परन्तु दस बजकर उनसठ मिनट उनसठ सेकिण्ड से

पहले यह प्रभाव बहुत कम होगा। अन्तरिक्ष यात्री द्वारा दस बजकर उनसठ मिनट अट्ठावन सेकिण्ड पर भेजे गए संकेत तथा उस संकेत के बीच जो अन्तरिक्ष यात्री ने उस समय भेजे जब उसकी घड़ी ने दस बजकर उनसठ मिनट उनसठ सेकिण्ड बजाए, उन्हें एक सेकिण्ड से कुछ ज्यादा प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, परन्तु ठीक ग्यारह बजे भेजे गए संकेत के लिए उन्हें सदैव प्रतीक्षारत रहना पड़ेगा। अन्तरिक्ष यात्री की घड़ी के अनुसार 10:59:59 तथा 11 बजे के बीच तारे के पृष्ठ-तल में उत्सर्जित प्रकाश-तरंगें, अन्तरिक्ष यान से देखने पर, अनंत काल-अवधि तक फैल जाएँगी। अन्तरिक्ष यान पर उत्तरोत्तर तरंगों के आगमन के बीच काल का मध्यान्तर निरन्तर बढ़ता जाएगा, इसीलिए तारे का प्रकाश लाल से और अधिक लाल और धुँधले से और अधिक धुँधला दिखाई देगा। अन्ततः तारा इतना धुँधला हो जाएगा कि इसे फिर अन्तरिक्ष यान से बिल्कुल भी नहीं देखा जा सकेगा, जो कुछ शेष बचेगा वह अन्तरिक्ष में मात्र एक कृष्ण विवर होगा। हालाँकि, तारा अन्तरिक्ष यान पर वही गुरुत्व-बल लगाता रहेगा तथा यान कृष्ण विवर की परिक्रमा करता रहेगा। फिर भी निम्नलिखित समस्या के कारण, वह दृश्य पूरी तरह यथार्थवादी नहीं है। आप तारे से जितनी अधिक दूर हैं, गुरुत्व-बल उतना ही कमजोर होता जाता है, इसलिए हमारे साहसी अन्तरिक्ष यात्री के सिर की अपेक्षा उसके पैरों पर गुरुत्व-बल हमेशा ही ज्यादा होगा। इससे पहले कि तारा सिकुड़कर क्रान्तिक त्रिज्या पर आ जाए, जिस पर घटना-क्षितिज (event horizon) बना, बलों का यह अन्तर या तो हमारे अन्तरिक्ष यात्री को खींचकर लम्बा बना देगा या उसको फाड़ डालेगा। तथापि, हम यह विश्वास करते हैं कि ब्रह्माण्ड में मन्दाकिनियों के केन्द्रस्थ क्षेत्रों के समान और भी काफी बड़े पिण्ड हैं, जो कृष्ण विवर की उत्पत्ति के लिए गुरुत्वीय निपात की प्रक्रिया से गुजर सकते हैं। इनमें से किसी एक पर कृष्ण विवर के बनने से पहले अन्तरिक्ष यात्री गुरुत्व-बल के द्वारा फाड़ नहीं डाला जाएगा। वस्तुतः जैसे ही क्रान्तिक त्रिज्या की स्थिति तक पहुँचेगा वह कुछ भी विशेष अनुभव नहीं करेगा, और कभी भी न लौटने की स्थिति से उस पर ध्यान दिए बिना गुजर सकता है। फिर भी, कुछ घंटों में ही, जैसे-जैसे वह क्षेत्र ध्वस्त होता जाएगा, उसके सिर और पैरों पर गुरुत्व-बलों का अन्तर इतना अधिक प्रबल हो जाएगा कि वह उसे फाड़ डालेगा।

सन् 1965 से 1970 के दौरान रोजर पेनरोज (Roger Penrose) और मेरे शोध-कार्य ने यह स्पष्ट कर दिया कि निश्चित रूप से सामान्य आपेक्षिकता सिद्धान्त के अनुसार कृष्ण विवर के अन्दर ही दिक्-काल की अनन्त वक्रता तथा अनन्त घनत्व वाले विलक्षणता बिन्दु (सिंगुलैरिटी) को होना चाहिए। यह काल की उत्पत्ति के क्षण पर हुए उस महाविस्फोट (big bang) के कुछ-कुछ समान है, बस ध्वस्त होते हुए पिण्ड तथा मात्र उस अन्तरिक्ष यात्री के लिए यह काल का अन्त होगा। इस विलक्षणता (सिंगुलैरिटी) की स्थिति पर विज्ञान के नियम विफल हो जाएँगे और भविष्य का पूर्वानुमान लगाने की हमारी योग्यता समाप्त हो जाएगी। बहरहाल, कोई भी प्रेक्षक जो कृष्ण विवर से बाहर रहा हो, पूर्वानुमेयता की इस असफलता से प्रभावित नहीं होगा, क्योंकि न तो प्रकाश और न कोई अन्य संकेत उस विलक्षणता बिन्दु (सिंगुलैरिटी) से उसके पास तक पहुँच सकता है। इस विलक्षण तथ्य ने रोजर पेनरोज को ब्रह्माण्डीय अवरोधन प्राक्कल्पना (cosmic censorship hypothesis) प्रस्तावित करने के लिए प्रेरित किया, जिसका भावार्थ इस प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है कि ईश्वर को 'सिंगुलैरिटी (विलक्षणता) के नग्न रूप से घृणा है।' दूसरे शब्दों में, गुरुत्वीय निपात द्वारा उत्पन्न विलक्षणता की स्थिति केवल कृष्ण विवरों जैसे स्थानों में ही घटित होती है, जहाँ घटना-क्षितिज (event horizon) उसे इस तरह छुपाए रहता है कि बाहर से कोई भी देख न पाए। सही तौर पर, यही वह अवधारणा है जिसे 'दुर्बल ब्रह्माण्डीय अवरोधन प्राक्कल्पना' (weak cosmic censorship hypothesis) के रूप में जाना जाता है। यह कृष्ण विवर से बाहर रहनेवाले प्रेक्षकों को तो विलक्षणता बिन्दु या सिंगुलैरिटी पर घटित होनेवाली पूर्वानुमेयता के भंग होने के निष्कर्षों से बचाती है, परन्तु उस बेचारे अन्तरिक्ष यात्री के लिए कुछ भी नहीं करती जो कृष्ण विवर में गिर जाता है।

सामान्य आपेक्षिकता सिद्धान्त के समीकरणों के कुछ ऐसे समाधान हैं, जिनमें हमारे

अन्तरिक्ष यात्री के लिए सिंगुलैरिटी के नग्न रूप को देखना सम्भव है : वह सिंगुलैरिटी से टकराने से बचने में समर्थ हो सकता है तथा उसके बजाय एक कृमि छिद्र (वर्म होल) से होकर गिर सकता है और ब्रह्माण्ड के एक दूसरे क्षेत्र में निकलकर आ सकता है। वह दिक् और काल में यात्रा की बड़ी सम्भावनाएँ प्रस्तुत करेगा, परन्तु दुर्भाग्यवश ऐसा लगता है कि ये समाधान अत्यन्त ही अस्थायी हो सकते हैं। अन्तरिक्ष यात्री की उपस्थिति जैसी अल्पतम बाधा इन्हें परिवर्तित कर सकती है, जिससे कि अन्तरिक्ष यात्री सिंगुलैरिटी को तब तक नहीं देख सकता, जब तक कि वह उससे टकरा न जाए और उसके काल का अन्त न हो जाए। दूसरे शब्दों में, सिंगुलैरिटी सदैव उसके भविष्य में निहित होगी, उसके अतीत में कभी नहीं। ब्रह्माण्डीय अवरोधन प्राक्कल्पना की प्रभावी व्याख्या यह व्यक्त करती है कि एक यथार्थवादी समाधान में सिंगुलैरिटी या तो पूर्णतः भविष्य में निहित होगी (जैसे गुरुत्वीय निपात की सिंगुलैरिटी), या फिर पूर्णतः अतीत में निहित होगी (बिग बैंग या महाविस्फोट के समान)। मेरा ब्रह्माण्डीय अवरोधन में दृढ़ विश्वास है, इसीलिए मैंने इन्स्टीट्यूट ऑफ कैलीफोर्निया टेक्नोलोजी के किप थॉर्न (Kip Thorne) और जॉन प्रेस्किल (John Preskill) से यह शर्त लगा ली कि यह सदैव प्रभावी रहेगा। मैं एक तकनीकी कारणवश शर्त हार गया, क्योंकि उदाहरण उस सिंगुलैरिटी, जो दूर से दृष्टिगोचर थी, से जुड़े समाधानों से लिए गए थे। अतः मुझे हर्जाना भरना पड़ा, जिसका शर्त के प्रतिबन्धों के अनुसार अर्थ यह था कि मुझे उनकी अनावृत्तता को ढँकना था। परन्तु मैं एक नैतिक विजय का दावा अवश्य कर सकता हूँ। अनावृत्त सिंगुलैरिटी अस्थायी थे : छोटी-से-छोटी बाधा भी उन्हें या तो अन्तर्धान कर सकती थी या फिर घटना-क्षितिज के पीछे छुपा सकती थी। इसलिए वास्तविक स्थितियों में वे घटित नहीं होते।

घटना-क्षितिज दिक्-काल क्षेत्र की परिसीमा है, जहाँ से बाहर निकलना सम्भव नहीं है और यह कृष्ण विवर के चारों ओर एक प्रकार से एकमार्गी झिल्ली की भाँति कार्य करता है : बेखबर अन्तरिक्ष यात्रियों की भाँति वस्तुएँ और पिण्ड घटना-क्षितिज से होकर कृष्ण विवर में गिर सकते हैं, परन्तु घटना-क्षितिज से होकर कोई भी वस्तु कृष्ण विवर से बाहर नहीं आ सकती। (याद रखिए कि दिक्-काल में घटना-क्षितिज उस प्रकाश का मार्ग है जो कृष्ण विवर के बाहर निकलने का प्रयास कर रहा है, और कोई वस्तु प्रकाश के वेग से तीव्र नहीं चल सकती।) कवि दान्ते (Dante) ने जो कुछ नरक में प्रवेश के सम्बन्ध में कहा था वही इस घटना-क्षितिज के सम्बन्ध में भी कहा जा सकता है : "परित्याग कर दो समस्त आशाओं का, तुम जो यहाँ प्रवेश करनेवाले हो।" कोई भी वस्तु अथवा कोई भी व्यक्ति, जो घटना-क्षितिज से होकर गिरेगा, शीघ्र ही अनन्त घनत्व तथा काल की समाप्ति के क्षेत्र में पहुँच जाएगा।

सामान्य आपेक्षिकता का सिद्धान्त यह यह पूर्वानुमान लगाता है कि गतिशील भारी पिण्ड गुरुत्वीय तरंगों के रूप में आकाश की वक्रता में प्रकाश के वेग से चलने वाली ऊर्मिकाओं के उत्सर्जन को प्रेरित करेंगे। ये प्रकाश-तरंगों के समान ही होती हैं, जो विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र की ऊर्मिकाएँ हैं, परन्तु इनका पता लगाना कठिन होता है। इनका प्रेक्षण उस पृथक्करण, जिसे वे आसपास के स्वतंत्र रूप से गतिशील पिण्डों के बीच उत्पन्न करते हैं, में थोड़े से परिवर्तन द्वारा किया जा सकता है। संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोप और जापान में बहुत सारे ऐसे संसूचक बनाए जा रहे हैं जो 10^{21} (1 के बाद 21 शून्य) के एक हिस्से का, या परमाणु के नाभिक से भी छोटे अंश के विस्थापन (displacement) का अनुमापन कर सकेंगे।

प्रकाश के समान ही, गुरुत्वीय तरंगें (gravitational waves) ऊर्जा को उन्हें उत्सर्जित करनेवाली वस्तुओं से दूर ले जाती हैं। इसलिए एक ऐसी प्रणाली की अपेक्षा की जा सकती है जिसमें महाकाय स्थूल पिण्ड अन्ततः एक स्थिर अवस्था में बने रहेंगे। क्योंकि किसी भी प्रकार की गति की अवस्था में ऊर्जा गुरुत्वीय तरंगों के उत्सर्जन द्वारा ले जाई जाएगी। [यह तर्क पानी में डाट (कॉर्क) गिराने के समान है : पहले तो ये बहुत डूबती-उतराती है, परन्तु जैसे ही विक्षोभ से उत्पन्न ऊर्मिकाएँ इसकी ऊर्जा को ले चलती हैं, तो यह अन्ततः एक स्थिर अवस्था में आ जाता है।] उदाहरण के लिए, सूर्य के चारों ओर की कक्षा में पृथ्वी की गति गुरुत्वीय तरंगें पैदा करती

है। इस ऊर्जा-हानि का प्रभाव यह होगा कि पृथ्वी का कक्ष बदल जाएगा जिससे धीरे-धीरे यह सूर्य के निकट आती जाएगी, और आखिर में इससे टकरा जाएगी और एक स्थिर अवस्था में आ जाएगी। पृथ्वी और सूर्य के मामले में ऊर्जा-हानि की दर बहुत कम है—एक छोटा-सा बिजली का हीटर जलाने लायक, बस। इसका अर्थ यह हुआ कि पृथ्वी सूर्य से टकराए इसमें लगभग 10^{27} (1 के बाद 27 शून्य) वर्ष लगेंगे, अतः फिलहाल चिन्ता की कोई बात नहीं है! पृथ्वी की कक्षा में परिवर्तन इतना धीमा है कि इसका प्रेक्षण नहीं किया जा सकता, परन्तु यही प्रभाव PSR 1913+16 नामक प्रणाली में घटित होते हुए पिछले कुछ वर्षों से देखा गया है। [PSR पल्सर तारे का प्रतीक है—यह एक विशेष प्रकार का न्यूट्रोन तारा होता है जो रेडियो तरंगों के नियमित स्पंदों (pulses) का उत्सर्जन करता है।] इस प्रणाली में एक-दूसरे की परिक्रमा करते हुए दो न्यूट्रोन तारे हैं और गुरुत्वीय तरंगों के उत्सर्जन से हो रही ऊर्जा की हानि उन्हें सर्पिल गति से एक-दूसरे की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित कर रही है। सामान्य आपेक्षिकता सिद्धान्त की इस पुष्टि के लिए जे. एच. टेलर और आर.ए. हल्स को सन् 1993 में नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया। उन न्यूट्रोन तारों को टकराने में लगभग तीस करोड़ वर्ष लगेंगे। टकराने से पहले वे इतनी तीव्र गति से परिक्रमा कर रहे होंगे, कि वे 'लीगो' (LIGO) जैसे संसूचकों के द्वारा संकेत ग्रहण करने के लिए पर्याप्त मात्रा में गुरुत्वीय तरंगों का उत्सर्जन करेंगे।

कृष्ण विवर में परिवर्तित होने के लिए एक तारे के गुरुत्वीय निपात के दौरान गतिविधियाँ बहुत तेज होंगी, इसलिए ऊर्जा-क्षय की दर भी बहुत अधिक होगी। अतः स्थिर अवस्था में आ जाने में इसे बहुत देर नहीं लगेगी। यह अन्तिम अवस्था कैसी दिखाई देगी? कोई शायद यह मान सकता है कि जिस तारे से इसका उद्‌भव हुआ है उसके तमाम जटिल अभिलक्षणों—उसके द्रव्यमान और घूर्णन की दर से लेकर उसके विभिन्न भागों के अलग-अलग घनत्व तथा उस तारे के अन्दर चल रही गैसों की जटिल गतिविधियों—पर भी यह आश्रित होगा। और यदि कृष्ण विवर भी इतने ही भिन्न हुए जितना कि वे पिण्ड जिनसे कि इनका निर्माण हुआ, तो कृष्ण विवरों के बारे में कोई भी सामान्य भविष्यवाणी करना शायद बहुत कठिन हो सकता है।

बहरहाल, सन् 1967 में, कनाडा के एक वैज्ञानिक वर्नर इजराइल (Werner Israel) ने कृष्ण विवरों के अध्ययन में एक क्रान्ति पैदा कर दी। (वर्नर इजराइल का जन्म बर्लिन में हुआ और पालन-पोषण दक्षिण अफ्रीका में। उन्होंने अपनी डॉक्टर की उपाधि आयरलैंड में प्राप्त की।) इजराइल ने यह मत प्रस्तुत किया कि सामान्य आपेक्षिकता सिद्धान्त के अनुसार, अघूर्णनशील कृष्ण विवर बहुत ही सादा होने चाहिए; पूर्णतः गोलाकार केवल द्रव्यमान पर निर्भर आकार और बराबर द्रव्यमान वाले ऐसे कोई से दो कृष्ण विवर बिल्कुल समरूप होने चाहिए। वस्तुतः इन्हें आइंस्टाइन के समीकरणों के एक विशिष्ट समाधान द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है जोकि सन् 1917 से ज्ञात है तथा जिसकी खोज सामान्य आपेक्षिकता सिद्धान्त की खोज के तुरन्त बाद कार्ल श्वार्त्सचाइल्ड (Karl Shwarzschild) द्वारा की गई थी। प्रारम्भ में तो स्वयं इजराइल समेत कई लोगों ने यह दलील रखी कि चूँकि कृष्ण विवर को पूर्णतः गोलाकार होना होता है, अतः कृष्ण विवर केवल पूर्ण गोलाकार पिण्ड के निपात से ही बन सकता है। अतः कोई भी वास्तविक तारा—जो कभी भी पूर्णतः गोलाकार नहीं होगा—मात्र एक नग्न सिंगुलैरिटी के निर्माण के लिए ही ध्वस्त हो सकता है।

हालाँकि इजराइल के निष्कर्ष की एक भिन्न व्याख्या भी थी, जिसका समर्थन विशेष रूप से रोजर पेनेरोज और जॉन व्हीलर ने किया था। उन्होंने यह तर्क दिया कि किसी तारे के निपात में शामिल तीव्र गतिविधियों का अर्थ यह होगा कि इसके द्वारा उत्सर्जित गुरुत्वीय तरंगें इसे और गोलाकार बना देंगी, और अपनी स्थिर अवस्था में आने तक यह बिल्कुल गोलाकार हो जाएगा। इस दृष्टिकोण के अनुसार, कोई भी अघूर्णनशील तारा, चाहे इसका आकार तथा आन्तरिक संरचना जटिल ही क्यों न हो, अपने गुरुत्वीय निपात के बाद पूर्ण गोलाकार कृष्ण विवर के रूप में समाप्त हो जाएगा। इसका आकार केवल उसके द्रव्यमान पर निर्भर करेगा। और, आगे की गणनाओं ने इस दृष्टिकोण का समर्थन किया, तथा इसे शीघ्र ही सामान्यतः स्वीकार कर लिया

गया।

इजराइल के निष्कर्ष केवल अघूर्णनशील पिण्डों से निर्मित कृष्ण विवरों के मामले से ही सम्बन्धित थे। सन् 1963 में न्यूजीलैण्ड के एक शोधकर्ता रॉय केर (Roy Kerr) ने सामान्य आपेक्षिकता सिद्धान्त के उन समीकरणों के समाधानों का एक समुच्चय खोज लिया जिन्होंने घूर्णन करनेवाले कृष्ण विवरों की व्याख्या की थी। ये 'केर (Kerr) कृष्ण विवर' एक नियत गति पर घूर्णन करते हैं; उनका आकार व रूप केवल उनके द्रव्यमान व घूर्णन की दर पर निर्भर करता है। यदि घूर्णन शून्य है, तो कृष्ण विवर पूर्णतः गोल होता है और समाधान श्वार्त्सचाइल्ड के समाधान के अनुरूप है। यदि घूर्णन शून्येतर है, तो कृष्ण विवर में उसकी मध्य रेखा के निकट बाहर की ओर उभार पैदा हो जाता है (ठीक वैसे ही जैसे कि पृथ्वी या सूर्य में उनके घूर्णन के कारण उभार उत्पन्न हो जाते हैं।) और जितनी अधिक तीव्रता से यह घूर्णन करता है उतना ही अधिक उभार इसमें उत्पन्न हो जाता है। अतः इजराइल के परिणाम को घूर्णनशील पिण्डों पर भी लागू करने के लिए, यह अनुमान लगाया गया कि कोई भी घूर्णन करनेवाला पिण्ड जो ध्वस्त होकर कृष्ण विवर में परिवर्तित हो गया हो, अन्ततः 'केर' समाधान द्वारा विवेचित स्थिर अवस्था में आ जाएगा।

सन् 1970 में कैम्ब्रिज में मेरे सहकर्मी तथा मेरे शोध-छात्र ब्रैनडन कार्टर (Brandon Carter) ने इस अनुमान को सिद्ध करने की दिशा में पहला कदम उठाया। उन्होंने यह बताया कि किसी स्थिर घूर्णनशील कृष्ण विवर (stationary rotating black hole) का आकार एवं स्वरूप केवल उसी दशा में ही उसके द्रव्यमान और घूर्णन दर पर निर्भर करेगा जब किसी प्रचक्रमान लट्टू (spinning top) की तरह इसका भी कोई सममिति अक्ष हो। फिर, सन् 1971 में, मैंने यह सिद्ध किया कि किसी स्थिर घूर्णन करनेवाले कृष्ण विवर का वास्तव में ऐसा एक सममिति अक्ष होगा। अन्ततः, सन् 1973 में, किंग्स कॉलेज लन्दन के डेविड रॉबिन्सन (David Robinson) ने कार्टर के तथा मेरे निष्कर्षों का यह सिद्ध करने के लिए उपयोग किया कि वह अनुमान ठीक था, ऐसे कृष्ण विवर के-वास्तव में 'केर' समाधान के अनुसार ही होना था। अतः गुरुत्वीय निपात के बाद किसी कृष्ण विवर को निश्चित रूप से एक ऐसी अवस्था में स्थित हो जाना चाहिए जिसमें यह घूर्णनशील तो हो सकता है, परन्तु स्पन्दनमान नहीं। इसके अतिरिक्त, इसका आकार व रूप केवल उसके द्रव्यमान और घूर्णन दर पर निर्भर करेगा, न कि उस पिण्ड की प्रकृति पर जो इसका निर्माण करने के लिए ध्वस्त हुआ। यह परिणाम इस सूक्ति के रूप में विख्यात हुआ : 'कृष्ण विवर केशहीन होता है' (A black hole has no hair) यह 'केशहीनता' प्रमेय ('no hair' theorem) बड़े व्यावहारिक महत्त्व का है, क्योंकि यह कृष्ण विवरों की सम्भावित किस्मों को दृढ़ता से सीमित कर देता है। अतः कोई भी उन पिण्डों के विस्तृत ब्यौरेवार मॉडल बना सकता है, जिनके कृष्ण विवर बन जाने की सम्भावना हो तथा उन मॉडलों से सम्बन्धित पूर्वानुमानों की वास्तविक प्रेक्षणों से तुलना कर सकता है। इसका तात्पर्य यह भी हुआ कि ध्वस्त होनेवाले उस पिण्ड से सम्बन्धित सूचनाएँ बहुत बड़ी मात्रा में उसी समय समाप्त हो जानी चाहिए जब कृष्ण विवर निर्मित हो जाता है। क्योंकि उसके बाद उस पिण्ड के बारे में जो कुछ भी हम सम्भावित रूप से माप सकते हैं, वह इसका द्रव्यमान तथा घूर्णन दर ही है। इसके महत्त्व पर अगले अध्याय में विचार किया जाएगा।

विज्ञान के इतिहास में कृष्ण विवर उन बहुत ही थोड़े से प्रकरणों में से एक हैं, जिनमें प्रेक्षणों से यह प्रमाण मिलने से पूर्व ही कि यह सही है, एक गणितीय मॉडल के रूप में गहन विस्तार के साथ एक सिद्धान्त विकसित कर लिया गया। वास्तव में, कृष्ण विवरों के विरोधियों का यही मुख्य तर्क हुआ करता था : कोई भी उन पिण्डों में कैसे विश्वास कर सकता था, जिनके अस्तित्व का एकमात्र प्रमाण सामान्य आपेक्षिकता सिद्धान्त के संदिग्ध सिद्धान्त पर आधारित गणनाएँ थीं? सन् 1963 में, जो भी हो, कैलिफोर्निया में पालोमर वेधशाला (Palomer Observatory) में शोधरत एक खगोलविद् मार्टेन श्मिट (Maarteen Schmidt) ने 3 C 273 नामक रेडियो तरंगों के स्रोत की दिशा में एक धुँधले तारे जैसे पिण्ड के अभिरक्त विस्थापन (रेड शिफ्ट) का

अनुमापन किया (3 C 273 का तात्पर्य रेडियो स्रोतों के तीसरे कैम्ब्रिज सूची-पत्र में स्रोत संख्या 273 से है)। उन्होंने यह पाया कि यह विस्थापन इतना विस्तृत था कि किसी गुरुत्वीय क्षेत्र से नहीं बन सकता था : यदि यह गुरुत्वीय अभिरक्त विस्थापन होता, तो वह पिण्ड इतना महाकाय व स्थूल होता तथा हमारे इतना निकट होता कि यह सौरमण्डल में ग्रहों की कक्षाओं की स्थिरता को भंग कर देता। इससे यह सम्मति बनी कि अभिरक्त विस्थापन इसके बजाय ब्रह्माण्ड के विस्तार से प्रेरित था, जिसका पुनः यह अर्थ हुआ कि वह पिण्ड अत्यधिक दूरी पर था। और इतनी अधिक दूरी पर भी इस पिण्ड का दिखाई पड़ना आश्चर्यजनक था। वह निश्चित रूप से बहुत चमकदार होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, उसे निश्चित रूप से ऊर्जा की एक विशाल मात्रा उत्सर्जित करनी चाहिए। एकमात्र प्रक्रिया जिसके बारे में लोग यह सोच सकते हैं कि वह इतने विशाल परिमाण में ऊर्जा उत्पन्न कर सकेगी, केवल किसी एक तारे का ही गुरुत्वीय निपात प्रतीत नहीं होती, बल्कि वह किसी मन्दाकिनी के सम्पूर्ण केन्द्रीय क्षेत्र का निपात प्रतीत होती है। इसी तरह के दूसरे कई तारे 'अर्ध-तारकीय पिण्ड' (quasi-stellar objects) या क्वासर (quasars) खोजे जा चुके हैं, सभी के अभिरक्त विस्थापन विस्तृत थे, परन्तु वे सभी बेहद दूर हैं और इसीलिए कृष्ण विवरों के बारे में कोई निर्णायक प्रमाण जुटाने हेतु इनका प्रेक्षण करना बहुत कठिन है।

कृष्ण विवरों के अस्तित्व के लिए और अधिक प्रोत्साहन सन् 1967 में कैम्ब्रिज की एक शोध-छात्रा जॉसलिन बैल-बर्नेल (Jocelyn Bell-Burnell) की आकाश में उन पिण्डों की खोज के साथ आया जो रेडियो तरंगों के नियमित स्पन्दों का उत्सर्जन कर रहे थे। पहले तो बैल और उनके गुरु एण्टोनी ह्यूइश (Antony Hewish) यह समझे कि शायद उन्होंने मन्दाकिनी में किसी अन्य ग्रह की सभ्यता से सम्पर्क बना लिया है! वास्तव में उस गोष्ठी में जिसमें उन्होंने अपनी खोज की घोषणा की थी, मुझे याद है कि, उन्होंने पाए जानेवाले प्रथम चार स्रोतों को LGM 1-4 कहा था (LGM, Little Green Men का प्रतीक है)। अन्त में, वे और हर कोई इस अपेक्षाकृत कम रोमांचकारी निष्कर्ष पर पहुँचे कि ये पिण्ड जिन्हें स्पन्दनशील तारे (पल्सर) नाम दिया गया था, वास्तव में घूर्णी न्यूट्रॉन तारे थे, जो अपने चुम्बकीय क्षेत्रों तथा अपने चारों ओर के पदार्थ के मध्य एक जटिल अन्योन्यक्रिया के कारण रेडियो तरंगों के स्पन्दों का उत्सर्जन कर रहे थे। अन्तरिक्षीय पटकथाओं के लेखकों के लिए यह एक बुरी खबर थी, परन्तु हम जैसे अल्पसंख्यकों के लिए जो उस समय कृष्ण विवरों के अस्तित्व में विश्वास करते थे, यह समाचार आशाओं से भरा हुआ था। यह इस बात का प्रथम ठोस प्रमाण था कि न्यूट्रॉन तारों का अस्तित्व होता है। एक न्यूट्रॉन तारे की त्रिज्या लगभग दस मील होती है, उस क्रान्तिक त्रिज्या से मात्र कुछ गुना बड़ी जिस पर कोई तारा एक कृष्ण विवर बन जाता है। यदि कोई तारा ध्वस्त होकर इतना छोटा आकार ग्रहण कर सकता है, तो यह अपेक्षा करना भी पूर्णतः तर्कसंगत है कि अन्य तारे ध्वस्त होकर और भी छोटे आकार के हो सकते हैं तथा कृष्ण विवर बन सकते हैं।

कृष्ण विवर का पता लगाने की आशा हम कर भी कैसे सकते थे, जबकि अपनी परिभाषा के अनुसार ही यह कोई प्रकाश उत्सर्जित नहीं करता? यह तो शायद काजल की कोठरी में काली बिल्ली को ढूँढ़ने जैसा होगा। सौभाग्यवश एक तरीका है। जैसाकि जॉन मिशेल (John Michell) ने सन् 1783 में अपने अग्रणी लेख में स्पष्ट किया था कि कृष्ण विवर अपने आसपास के पिण्डों पर अपने गुरुत्व-बल का प्रभाव डालता है। खगोलविदों ने ऐसी कई प्रणालियों का प्रेक्षण किया है, जिनमें दो तारे एक-दूसरे की ओर गुरुत्व-बल से आकृष्ट होकर, एक-दूसरे की परिक्रमा करते हैं। उन्होंने ऐसी प्रणालियों का भी प्रेक्षण किया है, जिनमें दृश्य तारा केवल एक ही है, जो किसी अदृश्य साथी के चारों ओर चक्कर लगा रहा है। निस्सन्देह कोई भी तत्काल यह निष्कर्ष नहीं निकाल सकता कि वह अदृश्य साथी एक कृष्ण विवर ही है : यह मात्र इतना धुँधला तारा भी हो सकता है जिसे देखा न जा सकता हो। बहरहाल, 'सिग्नस एक्स-1' (Cygnus X-1) नामक तारक योजना के समान ही कुछ अन्य प्रणालियाँ भी एक्स-किरणों के प्रबल स्रोत हैं (चित्र 6.2)। इस अद्‌भुत घटना की सर्वोत्तम व्याख्या यह है कि कृष्ण विवर इस

दृश्य तारे की गैसीय द्रव्यराशि को उसके पृष्ठ-तल से अपने में खींचता रहेगा। जैसे ही यह द्रव्यराशि अत्यधिक त्वरण के साथ उस अदृश्य साथी की ओर गिरती है, वह एक सर्पिल गति विकसित कर लेती है और बहुत गर्म होकर एक्स-किरणों का उत्सर्जन करने लगती है (चित्र 6.3)। यह प्रक्रिया इसी तरह काम करे, इसके लिए उस पिण्ड को अदृश्य, बहुत छोटा होना चाहिए—श्वेत-वामन, न्यूट्रोन तारे या कृष्ण विवर के समान। उस दृश्य तारे के प्रेक्षित कक्षा-पथ से, उस अदृश्य पिण्ड के निम्नतम सम्भावित द्रव्यमान को सुनिश्चित किया जा सकता है। 'सिग्नस एक्स-1' के मामले में, इसका द्रव्यमान छह सूर्यों के बराबर है, जो चन्द्रशेखर के निष्कर्ष के अनुसार इतना अधिक बड़ा है कि यह अदृश्य पिण्ड कोई श्वेत-वामन नहीं हो सकता। इसका द्रव्यमान इतनी अधिक मात्रा में है कि यह एक न्यूट्रोन तारा भी नहीं हो सकता। अतः यह प्रतीत होता है कि यह निश्चित रूप से एक कृष्ण विवर ही होना चाहिए।

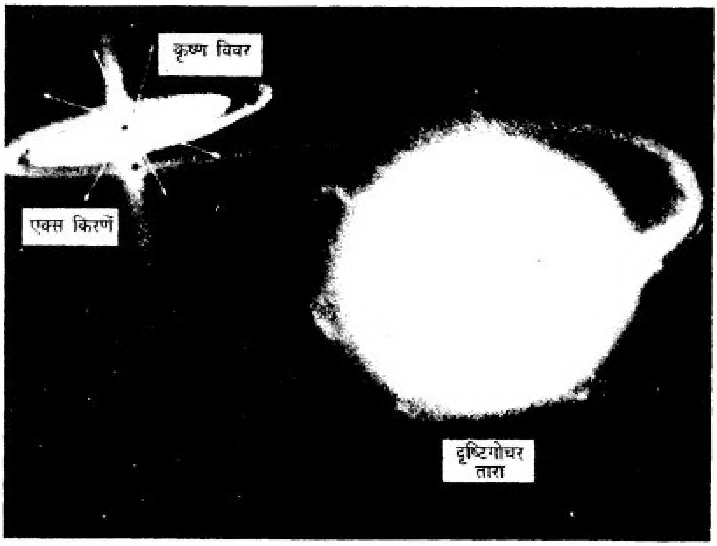
'सिग्नस एक्स-1' की पहेली को सुलझाने के लिए ऐसे दूसरे मॉडल भी हैं जिनमें कृष्ण विवर सम्मिलित नहीं है, परन्तु वे सभी काफी क्लिष्ट-कल्पित हैं। केवल कृष्ण विवर ही सारे प्रेक्षणों का वास्तव में एकमात्र स्वाभाविक स्पष्टीकरण लगता है। इसके बावजूद, कैलिफोर्निया इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलोजी के किप थॉर्न (Kip Thorne) के साथ मेरी एक शर्त लगी थी कि 'सिग्नस एक्स-1' में वस्तुतः कोई कृष्ण विवर नहीं है! यह मेरे लिए एक प्रकार की बीमा-पॉलिसी है। मैंने कृष्ण विवरों पर बहुत शोध कार्य किया है, और यह सब व्यर्थ चला जाएगा यदि निष्कर्ष यह निकला कि कृष्ण विवरों का अस्तित्व नहीं है। परन्तु उस स्थिति में, मुझे अपनी शर्त जीतने का सन्तोष होगा जिससे मुझे चार वर्ष तक 'प्राइवेट आई' (Private Eye) पत्रिका प्राप्त होती रहेगी। हालाँकि सन् 1975 से, जब हमने यह शर्त लगाई थी, अब तक 'सिग्नस एक्स-1' की स्थिति में अधिक परिवर्तन नहीं हुआ है, बल्कि कृष्ण विवरों के पक्ष में अब इतने अधिक अन्य प्रेक्षणात्मक प्रमाण उपलब्ध हैं कि मैंने अपनी शर्त हारी हुई मान ली। मैंने शर्त में तय जुर्माना अदा कर दिया जो 'पेण्ट हाउस' पत्रिका का एक वर्ष का चन्दा था, फिर भले ही किप की गरममिजाज पत्नी ने इस अश्लील पत्रिका को मँगाने पर उसे लताड़ा हो।



चित्र 6.2 : उक्त चित्र के केन्द्र के निकट दोनों तारों में अधिक चमकदार तारा 'सिग्नस एक्स-1' है, जिसके बारे में यह सोचा जाता है कि ये एक-दूसरे की परिक्रमा करते हुए एक कृष्ण विवर व एक सामान्य तारे का बना है।

हमारी आकाशगंगा में 'सिग्नस एक्स-1' के समान तारक-योजनाओं में तथा मेजल्लानी मेघ (Magellanic clouds) कही जानेवाली पास ही की दो मन्दाकिनियों में अब हमारे पास भी कई दूसरे कृष्ण विवरों के प्रमाण हैं। बहरहाल, कृष्ण विवरों की संख्या काफी अधिक हो गई है;

ब्रह्माण्ड के लम्बे इतिहास में कई तारों ने निश्चित रूप से अपना समस्त नाभिकीय ईंधन जला डाला होगा और उन्हें ध्वस्त होना पड़ा होगा। कृष्ण विवरों की संख्या दृश्य तारों की संख्या की अपेक्षा काफी अधिक भी हो सकती है, जिनकी कुल संख्या अकेले हमारी अपनी आकाशगंगा में ही लगभग एक खरब है। इतनी बड़ी संख्या में कृष्ण विवरों का अतिरिक्त गुरुत्वाकर्षण यह स्पष्ट कर सकता है कि हमारी आकाशगंगा अपनी इस गति पर क्यों घूर्णन करती है : दृश्य तारों की द्रव्यराशि इसकी स्पष्ट व्याख्या करने के लिए अपर्याप्त है। हमारे पास इस तथ्य के भी कुछ प्रमाण हैं कि हमारी आकाशगंगा के केन्द्र में ही, हमारे सूर्य से लाखों गुना अधिक द्रव्यराशि वाला एक बहुत विशाल कृष्ण विवर है। मन्दाकिनी में मौजूद जो भी तारे इस कृष्ण विवर के अत्यन्त निकट आ जाएँगे, वे अपने निकट तथा दूर के अंशों के मध्य गुरुत्व-बल में अंतर के कारण खंड-खंड हो जाएँगे। उनके अवशेष और दूसरे तारों से खींची गई गैसीय द्रव्यराशि कृष्ण विवर में गिर जाएगी। 'सिग्नस एक्स-1' की तरह यहाँ भी गैसीय द्रव्यराशि सर्पिल गति से गिरती जाएगी और गरम हो जाएगी, हालाँकि इतनी अधिक नहीं, जितनी कि 'सिग्नस एक्स-1' के मामले में। यह पर्याप्त रूप से इतनी गरम नहीं हो पाएगी कि एक्स-किरणों का उत्सर्जन कर सके, परन्तु यह रेडियो तरंगों तथा अवरक्त किरणों के उस बहुत ठोस स्रोत का कारण स्पष्ट कर सकती है, जिसका प्रेक्षण आकाशगंगा के केन्द्र में किया गया है।



चित्र 6.3

यह समझा जाता है कि इसी के सदृश बल्कि सूर्य की द्रव्यराशि से लगभग दसियों करोड़ गुना अधिक द्रव्यराशि वाले और भी विशाल कृष्ण विवर क्वासारों (quasars) के केन्द्र में मिलते हैं। 'एम 87' नामक मन्दाकिनी के हब्बल दूरदर्शी से किए गए प्रेक्षण यह रहस्योद्घाटन करते हैं कि यह सूर्य से 2 अरब गुना अधिक द्रव्यराशि वाले केन्द्रीय पिण्ड के चारों ओर घूमती हुई 130 प्रकाश वर्ष व्यास की एक गैस-चक्रिका धारण किए हुए है। यह केवल एक कृष्ण विवर ही हो सकता है। ऐसे परम स्थूलकाय कृष्ण विवरों में गिरनेवाली द्रव्यराशि ही उस शक्ति-स्रोत का मुख्य आधार होगी जो इन पिण्डों द्वारा उत्सर्जित की जा रही ऊर्जा की विशाल मात्रा को स्पष्ट करने के लिए यथेष्ट रूप से बड़ा है। जैसे ही द्रव्यराशि कृष्ण विवर में गिरेगी, यह कृष्ण विवर को भी उसी दिशा में घुमा देगी और इस प्रकार से कुछ-कुछ पृथ्वी के समान ही चुम्बकीय क्षेत्र विकसित करेगी। इस गिरती हुई द्रव्यराशि द्वारा कृष्ण विवर के निकट बहुत ही उच्च ऊर्जायुक्त कण पैदा हो जाएँगे। चुम्बकीय क्षेत्र इतना अधिक प्रबल होगा कि यह इन कणों को कृष्ण विवर के घूर्णन के

अक्ष के एक छोर से दूसरे छोर तक पार्श्व में अर्थात् इसके उत्तरी व दक्षिणी ध्रुव की दिशा में, बाहर की ओर तेज धार के रूप में उत्क्षिप्त करने के लिए उनको संकेन्द्रित कर सकता है। उत्तरी व दक्षिणी ध्रुव की दिशा में उच्च ऊर्जायुक्त इन कणों की तेज धारों का वास्तव में बहुत सारे क्वासार और मन्दाकिनियों में प्रेक्षण किया गया है। इस सम्भावना पर भी विचार किया जा सकता है कि शायद सूर्य की द्रव्यराशि से भी काफी कम द्रव्यराशि वाले कृष्ण विवर हो सकते हैं। ऐसे कृष्ण विवर गुरुत्वीय निपात के द्वारा निर्मित नहीं हो सकते, क्योंकि उनके द्रव्यमान चन्द्रशेखर द्रव्यमान क्रान्तिक सीमा से कम हैं : इतनी कम द्रव्यराशि वाले तारे गुरुत्व-बल के विरुद्ध उस समय भी अपना सन्तुलन बनाए रख सकते हैं, जबकि उन्होंने अपना नाभिकीय ईंधन समाप्त कर लिया हो। कम द्रव्यमान वाले कृष्ण विवर केवल उसी दशा में बन सकते हैं, जब पदार्थ बहुत बड़े बाह्य दाब से बृहद् घनत्व की सीमा तक सम्पीडित (comperessed) हो जाए। ऐसी स्थितियाँ एक बहुत बड़े हाइड्रोजन बम में घटित हो सकती हैं : एक भौतिकीविद जॉन व्हीलर ने एक बार यह गणना की थी कि यदि कोई संसार के सारे महासागरों में से सारा 'भारी-जल' (heavy water) निकाल ले, तो वह एक ऐसा हाइड्रोजन बम बना सकता है, जो अपने केन्द्र में पदार्थ को इतना अधिक सम्पीडित कर दे कि वह कृष्ण विवर बन जाए (निस्सन्देह, इसका प्रेक्षण करने के लिए कोई नहीं बचेगा!)। एक और व्यावहारिक सम्भावना यह है कि इतनी कम द्रव्यराशि वाले कृष्ण विवर शायद बहुत ही प्रारम्भिक ब्रह्माण्ड के उच्च ताप एवं दाब में ही बने होंगे। कृष्ण विवर केवल उसी दशा में निर्मित होते, जब प्रारम्भिक ब्रह्माण्ड पूर्णतः मसृण (smooth) एवं समरूप (uniform) नहीं होता, क्योंकि औसत की अपेक्षा अधिक घनत्व का केवल एक छोटा-सा क्षेत्र ही एक कृष्ण विवर का निर्माण करने के लिए इस प्रकार से सम्पीडित हो सकता था। परन्तु हम यह जानते हैं कि कुछ अनियमितताएँ अवश्य ही रही होंगी, नहीं तो ब्रह्माण्ड में इस समय समस्त पदार्थ, तारों तथा मन्दाकिनियों में जमा होने की बजाय पूर्ण समान रूप से वितरित होता।

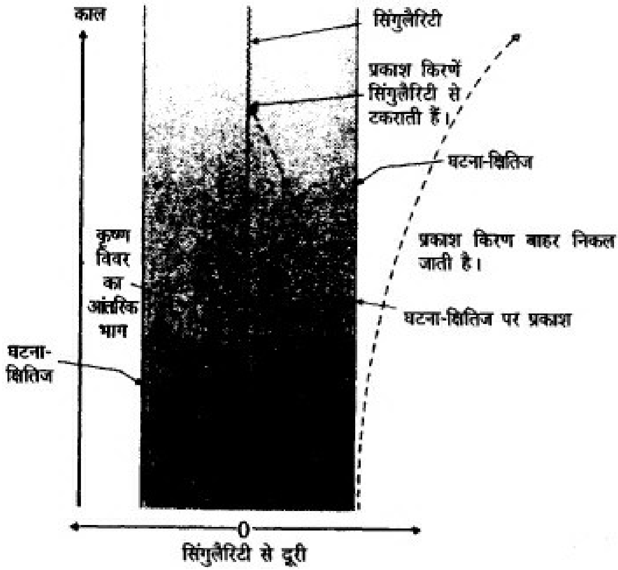
तारों और मन्दाकिनियों के निर्माण के रहस्य को स्पष्ट करने के लिए आवश्यक अनियमितताओं ने क्या आद्य कृष्ण विवरों की महत्त्वपूर्ण संख्या के निर्माण में योगदान दिया, यह स्पष्ट रूप से प्रारम्भिक ब्रह्माण्ड में व्याप्त अवस्था पर निर्भर करता है। इसलिए, यदि हम यह सुनिश्चित कर सकें कि ब्रह्माण्ड में अब कितने आद्य कृष्ण विवर हैं, तो हम ब्रह्माण्ड की बहुत प्रारम्भिक अवस्थाओं के बारे में बहुत कुछ ज्ञात कर सकते हैं। एक अरब टन से अधिक द्रव्यराशि (एक बड़े पर्वत की द्रव्यराशि) वाले आद्य कृष्ण विवर का पता तभी लगाया जा सकेगा, जब ब्रह्माण्ड के विस्तार पर या दृश्य पदार्थ या किसी अन्य वस्तु पर, उसका गुरुत्वीय प्रभाव मापा जाए। बहरहाल, जैसाकि हम अगले अध्याय में जानेंगे, कृष्ण विवर यह सब होने के बावजूद, वास्तव में, काला नहीं है : वे एक तप्त पिण्ड के समान दमकते हैं, और वे जितने अधिक छोटे होते हैं उतने ही ज्यादा दमकते हैं। अतः विरोधाभासस्वरूप, बड़े कृष्ण विवरों की अपेक्षा छोटे कृष्ण विवरों का पता लगाना वास्तव में अधिक आसान होगा!

अध्याय 7

कृष्ण विवर इतने काले नहीं

सन् 1970 से पहले, सामान्य आपेक्षिकता सिद्धान्त पर मेरा शोध-कार्य मुख्यतः इस प्रश्न पर केन्द्रित था कि महाविस्फोट विलक्षणता (big bang singularity) की स्थिति कभी रही थी या नहीं। बहरहाल, अपनी बेटी लूसी के जन्म के कुछ दिन बाद उस वर्ष नवम्बर में एक शाम को जब मैं अपने बिस्तर में जाने की तैयारी कर रहा था, मैंने कृष्ण विवरों के बारे में सोचना शुरू कर दिया। मेरी अपंगता के कारण यह थोड़ी धीमी प्रक्रिया हो जाती है, इसलिए मेरे पास प्रचुर समय था। उस समय तक ऐसी कोई निश्चित परिभाषा उपलब्ध नहीं थी जो यह स्पष्ट कर सके कि दिक्-काल में कौन से बिन्दु कृष्ण विवर के अन्दर हैं और कौन से इसके बाहर। मैं रोजर पेनरोज से इस बिन्दु पर पहले ही विचार-विमर्श कर चुका था कि कृष्ण विवर की घटनाओं के ऐसे समुच्चय के रूप में परिभाषित किया जाए, जिसमें से लम्बी दूरियों के लिए पलायन करना सम्भव नहीं था, जोकि अब सामान्य रूप से स्वीकृत परिभाषा है। इसका मतलब यह हुआ कि किसी कृष्ण विवर की परिसीमा—उसका घटना-क्षितिज—दिक्-काल में उन प्रकाश-किरणों के मार्गों से बना होता है जो कृष्ण विवर से बाहर निकलने में नितान्त असमर्थ रहती हैं और सदा के लिए इसके किनारों पर मँडराती रहती हैं (चित्र 7.1)। यह कुछ-कुछ इस तरह है जैसे कोई पुलिस की गिरफ्त से भाग निकले और पीछा करनेवालों से किसी तरह एक कदम आगे तो रहे, मगर उनसे अपना पीछा न छुड़ा पाए।

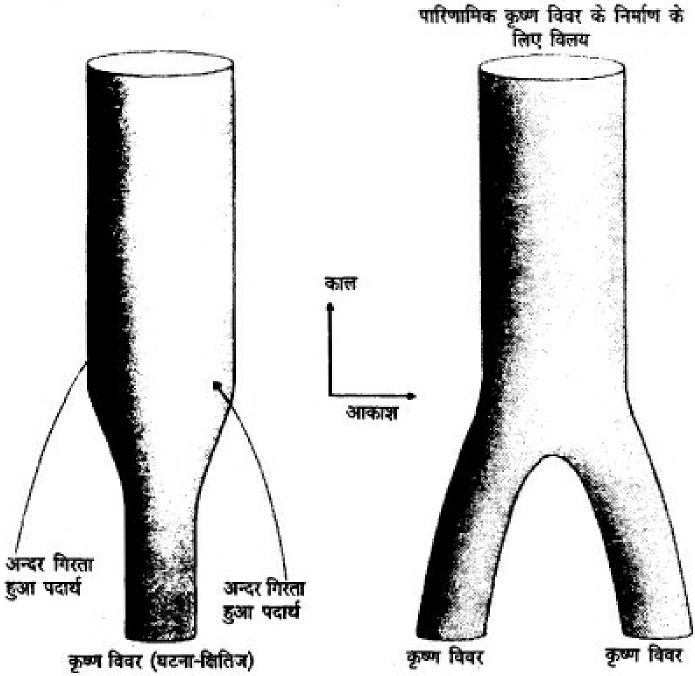
अचानक मैंने यह अनुभव किया कि इन प्रकाश-किरणों के मार्ग कभी भी एक-दूसरे के पास नहीं आ सकते। यदि वे आए, तो यह तय है कि वे एक-दूसरे में मिल जाएँगे। यह कुछ इस तरह होगा जैसे पुलिस की गिरफ्त से निकलकर भागते हुए किसी व्यक्ति से आप टकरा जाएँ—आप दोनों ही पकड़े जाएँगे! (या, इस स्थिति में कृष्ण विवर में गिर पड़ेंगे।) परन्तु यदि ये प्रकाश-किरणें कृष्ण विवर द्वारा आत्मसात कर ली गई थीं, तब तो वे कृष्ण विवर की परिसीमा पर नहीं हो सकती थीं। इसलिए घटना-क्षितिज में प्रकाश-किरणों के मार्ग सदैव एक-दूसरे से दूर या समान्तर चलने थे। इसे समझने का एक और तरीका यह है कि कृष्ण विवर की परिसीमा—उसका घटना-क्षितिज—एक परछाईं के किनारे के समान मान लिया जाए—आसन्न सर्वनाश की परछाईं। यदि आप किसी बहुत दूर के स्रोत, जैसेकि सूर्य से पड़ रही परछाईं को देखें तो आप यह पाएँगे कि किनारे पर प्रकाश की किरणें एक-दूसरे के समीप नहीं आ रही हैं।



चित्र 7.1

यदि प्रकाश की वे किरणें, जो घटना-क्षितिज का अर्थात् कृष्ण विवर की परिसीमा का निर्माण करती हैं, कभी एक-दूसरे के समीप नहीं आ सकतीं, तो घटना-क्षितिज का क्षेत्रफल सम्भवत: या तो स्थिर रहेगा या समय के साथ इसमें वृद्धि हो जाएगी, परन्तु यह कभी घट नहीं सकता था—क्योंकि इसका अर्थ यह होगा कि कृष्ण विवर की परिसीमा में कम-से-कम कुछ प्रकाश की किरणें एक-दूसरे के समीप आ रही होंगी। वास्तव में, जब कभी भी पदार्थ या विकिरण कृष्ण विवर में गिरेगा तो घटना-क्षितिज के क्षेत्रफल में वृद्धि हो जाएगी (चित्र 7.2)। या फिर दो कृष्ण विवर एक-दूसरे से टकरा जाते हैं तथा एक-दूसरे में विलीन होकर दोनों एक ही कृष्ण विवर का रूप धारण कर लेते हैं, तो अन्तिम कृष्ण विवर के घटना-क्षितिज का क्षेत्रफल मूल कृष्ण विवरों के घटना-क्षितिजों के क्षेत्रफलों के योग के या तो बराबर होगा या उससे अधिक होगा (चित्र 7.3)। घटना-क्षितिज के क्षेत्रफल के इस न घटनेवाले गुणधर्म ने कृष्ण विवरों के सम्भावित व्यवहार पर महत्वपूर्ण प्रतिबंध आरोपित कर दिया। अपनी खोज से मैं इतना उत्तेजित था कि उस रात मुझे ढंग से नींद नहीं आई। अगले दिन ही मैंने रोजर पेनरोज को फोन किया। वह मुझसे सहमत थे। मेरे विचार में वह वास्तव में घटना-क्षितिज के क्षेत्र की इस विशेषता से अवगत थे। परन्तु वह कृष्ण विवर की एक थोड़ी-सी भिन्न परिभाषा का उपयोग कर रहे थे। उन्होंने यह नहीं सोचा था कि दोनों परिभाषाओं के अनुसार भी कृष्ण विवर की परिसीमाएँ एक-सी होंगी और इसीलिए उनके क्षेत्र भी, बस यह शर्त है कि कृष्ण विवर एक ऐसी अवस्था में स्थिर हो चुका हो जिसमें वह समय के साथ बदल न सके।

एक कृष्ण विवर के क्षेत्रफल का यह न घटनेवाला व्यवहार 'एण्ट्रोपी' नामक भौतिक राशि के व्यवहार के बिल्कुल समान था जोकि किसी भौतिक निकाय की अराजकता या अव्यवस्था की मात्रा का अनुमापन करती है। यह एक सामान्य अनुभव की बात है कि यदि चीजें अपने ही हाल पर छोड़ दी जाएँ तो अराजकता या अव्यवस्था बढ़ेगी। (इसका अनुभव करने के लिए बस आपको अपने मकान की मरम्मत करना बन्द करना पड़ेगा!) आप अव्यवस्था से व्यवस्था उत्पन्न कर सकते हैं (जैसेकि कोई अपने मकान को पेण्ट कर सकता है)। परन्तु इसके लिए प्रयत्न या ऊर्जा के व्यय की आवश्यकता है और इसलिए उपलब्ध व्यवस्थित ऊर्जा की मात्रा का ह्रास हो जाता है।



चित्र 7.2 और चित्र 7.3

इस अवधारणा का एक सही और सूक्ष्म कथन ऊष्मागतिकी (Thermodynamics) के दूसरे नियम के रूप में जाना जाता है। यह इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि किसी वियुक्त निकाय (isolated system) की 'एण्ट्रोपी' सदा बढ़ती जाती है, और यह कि जब दो भौतिक निकाय आपस में मिलते हैं, तो इस संयुक्त निकाय की एण्ट्रोपी व्यष्टिगत निकायों की एण्ट्रोपियों के योग से अधिक होती है। उदाहरण के लिए, किसी डिब्बे में भरी गैस के बोर में विचार करें। गैस के अणुओं की लगातार एक-दूसरे से टकराती हुई और डिब्बे की दीवारों से टप्पा खाकर उछलती हुई छोटी-छोटी बिलियर्ड गेन्द के रूप में कल्पना की जा सकती है। गैस का ताप जितना अधिक होगा, उतना ही अधिक उसके अणुओं की गति होगी, और जितनी अधिक बारम्बारता व कठोरता से वे डिब्बों की दीवारों से टकराएँगे, वे दीवारों पर उतना ही अधिक बाहरी दाब डालेंगे। मान लीजिए कि शुरू में गैस के सारे अणु किसी विभाजक दीवार द्वारा डिब्बे के बाएँ हिस्से तक सीमित रहते हैं, अब यदि विभाजक दीवार हटा दी जाए, तो गैस के अणु फैल जाएँगे और डिब्बे के दोनों अर्ध भागों का स्थान घेर लेंगे। बाद में किसी समय, संयोगवश, वे सब दाहिने अर्ध भाग में या फिर बाएँ अर्ध भाग में हो सकते हैं, परन्तु सबसे अधिक सम्भावना इस बात की है कि दोनों अर्ध भागों में अणुओं की संख्या मोटे तौर पर समान होगी। उस मूल अवस्था की अपेक्षा जिसमें सारे अणु केवल एक ही अर्ध भाग में थे, यह अवस्था कम व्यवस्थित या अधिक अव्यवस्थापूर्ण होती है। इसी को यों कह सकते हैं कि गैस की एण्ट्रोपी बढ़ गई है। इसी प्रकार, मान लीजिए कोई दो डिब्बे लेता है। एक डिब्बे में ऑक्सीजन गैस भरी है और दूसरे में नाइट्रोजन गैस। यदि कोई दोनों डिब्बों को जोड़ दे और बीच की विभाजक दीवार हटा दे, तो ऑक्सीजन व नाइट्रोजन गैसों के अणु मिश्रित होना शुरू हो जाएँगे। कुछ समय बाद सबसे अधिक सम्भावित अवस्था दोनों डिब्बों में ऑक्सीजन व नाइट्रोजन के अणुओं के बिल्कुल समान मिश्रण की होगी। यह अवस्था दोनों पृथक डिब्बों की प्रारम्भिक अवस्था की अपेक्षा कम व्यवस्थित होगी और इसीलिए इसकी 'एण्ट्रोपी' अधिक होगी।

ऊष्मागतिकी के दूसरे नियम की स्थिति न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण नियम की तरह विज्ञान के

दूसरे नियमों की अपेक्षा कुछ भिन्न है, क्योंकि बहुत सारी परिस्थितियों में यह सदैव ठीक नहीं ठहरता। हमारे प्रथम डिब्बे में भरे गैस के अणु कभी बाद में डिब्बे के किसी एक अर्ध भाग में ही पाए जाएँ इसकी सम्भावना या प्रायिकता करोड़ों-अरबों में से एक है, परन्तु ऐसा घटित हो सकता है। बहरहाल, यदि आसपास कोई कृष्ण विवर हो, तो ऊष्मागतिकी के दूसरे नियम का उल्लंघन कुछ आसान प्रतीत होता है : बस गैस के डिब्बे-जैसे बड़ी मात्रा में 'एण्ट्रोपी' वाले किसी पदार्थ को कृष्ण विवर में फेंक दीजिए। कृष्ण विवर से बाहर पदार्थ की सम्पूर्ण 'एण्ट्रोपी' समाप्त हो जाएगी। निस्सन्देह, कोई अभी भी यह कह सकता है कि कृष्ण विवर की आन्तरिक 'एण्ट्रोपी' सहित सम्पूर्ण 'एण्ट्रोपी' घटी नहीं है—परन्तु क्योंकि कृष्ण विवर के भीतरी भाग को देखने का कोई तरीका नहीं है, इसलिए हम नहीं देख सकते कि कृष्ण विवर के अन्दर पदार्थ की 'एण्ट्रोपी' की मात्रा कितनी है। तब तो यह अच्छा होता यदि कृष्ण विवर का कोई ऐसा लक्षण होता, जिसके द्वारा कृष्ण विवर से बाहर प्रेक्षक इसकी 'एण्ट्रोपी' बता सकते, और जिसमें उस समय जब कभी भी 'एण्ट्रोपी' वाला कोई पदार्थ कृष्ण विवर में गिरता, वृद्धि होती जाती। उपर्युक्त वर्णित उस खोज का अनुसरण करते हुए कि घटना-क्षितिज का क्षेत्रफल भी उस समय बढ़ जाता है, जब कभी पदार्थ किसी कृष्ण विवर में गिरता है, प्रिन्सटन विश्वविद्यालय में जैकब बेकेंस्टीन (Jacob Bakenstein) नामक एक शोध छात्र ने यह सुझाव दिया कि घटना-क्षितिज का क्षेत्रफल ही कृष्ण विवर की 'एण्ट्रोपी' का माप है। जैसे ही एण्ट्रोपीयुक्त पदार्थ किसी कृष्ण विवर में गिरेगा, घटना-क्षितिज का क्षेत्रफल बढ़ता जाएगा, जिससे कि कृष्ण विवर से बाहर के पदार्थ की 'एण्ट्रोपी' तथा घटना-क्षितिज के क्षेत्रफल का योग कभी भी कम नहीं होगा।

इस सुझाव से यह प्रतीत हुआ कि अधिकांश स्थितियों में ऊष्मागतिकी के दूसरे नियम का उल्लंघन रुक जाएगा, लेकिन इसमें एक गहरी कमी भी थी। यदि किसी कृष्ण विवर की कोई 'एण्ट्रोपी' होती है, तो इसका एक तापमान भी होना चाहिए। परन्तु फिर एक विशिष्ट तापमान वाले किसी पिण्ड को एक निश्चित गति पर विकिरण भी उत्सर्जित करना चाहिए। यह एक सामान्य अनुभव की बात है कि यदि कोई लोहे की सींक को आग पर गरम करता है, तो वह लाल होकर दमकने लगती है और विकिरण उत्सर्जित करती है। परन्तु कम तापमान पर भी वस्तुएँ विकिरण उत्सर्जित करती हैं। कोई उनकी ओर सामान्यतः ध्यान नहीं देता, क्योंकि इस विकिरण का परिमाण बहुत ही कम होता है। ऊष्मागतिकी के दूसरे नियम के उल्लंघन को रोकने के लिए इसी विकिरण की आवश्यकता है। अतः कृष्ण विवरों को विकिरण का उत्सर्जन करना चाहिए। परन्तु अपनी परिभाषा के अनुसार ही, कृष्ण विवर ऐसे पिण्ड हैं जिनके सम्बन्ध में यह माना जाता है कि वे किसी भी चीज का उत्सर्जन नहीं करते। अतः यह प्रतीत होने लगा कि कृष्ण विवर के घटना-क्षितिज के क्षेत्रफल को इसकी 'एण्ट्रोपी' नहीं माना जा सकता। सन् 1972 में, ब्रैण्डन कार्टर (Brandon Carter) और एक अमरीकी सहकर्मी जिम बार्डीन (Jim Bardeen) के साथ मैंने एक शोध-पत्र लिखा, जिसमें हमने यह स्पष्ट किया कि हालाँकि 'एण्ट्रोपी' तथा घटना-क्षितिज के क्षेत्रफल में कई समानताएँ हैं, तो भी उसमें स्पष्ट रूप से गहरी कठिनाई भी है। मैं यह मानता हूँ कि इस शोध-पत्र को लिखने में, मैं आंशिक रूप से बेकेंस्टीन (Bakenstein) के प्रति अपनी झुँझलाहट से प्रेरित हुआ था। मैं यह अनुभव करता था कि घटना-क्षितिज के क्षेत्रफल में वृद्धि की मेरी खोज का उन्होंने दुरुपयोग किया था। हालाँकि अन्त में यह निष्कर्ष निकला कि मूलतः वे सही थे, परन्तु एक ऐसे ढंग से, जिसकी उन्होंने निश्चित रूप से अपेक्षा नहीं की थी।

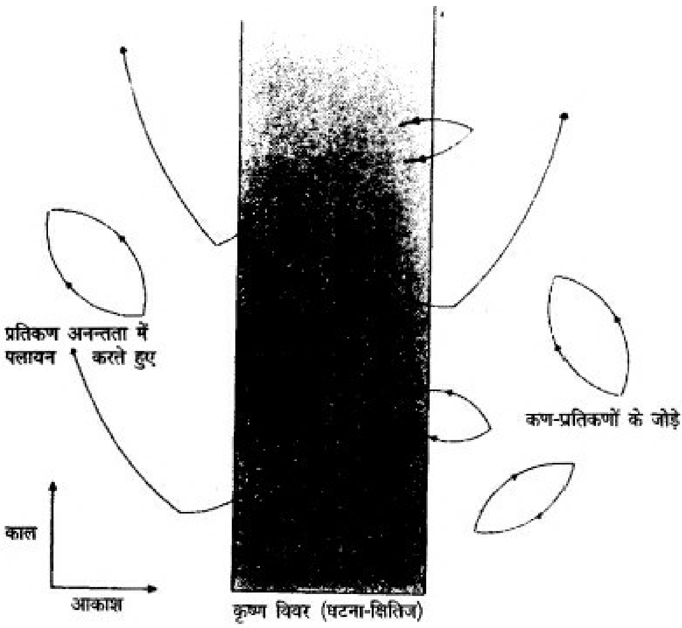
सन् 1973 के सितम्बर की बात है। मैं मास्को की यात्रा पर था, तो मैंने दो अग्रणी सोवियत विशेषज्ञों याकोव जेल्दोविच (Yakov Zeldovich) और अलेक्जैण्डर स्टारोबिन्स्की (Alexander Starobinsky) से कृष्ण विवरों के सम्बन्ध में विचार-विमर्श किया। उन्होंने मुझे यह विश्वास दिलाया कि क्वाण्टम यान्त्रिकी के अनिश्चितता के सिद्धान्त के अनुसार घूर्णी कृष्ण विवरों को कण पैदा करके उनका उत्सर्जन करना चाहिए। भौतिक विज्ञान की दृष्टि से मैंने उनके तर्कों पर विश्वास कर लिया। परन्तु गणितीय ढंग से विकिरण का उन्होंने जो परिकलन किया, वह मुझे कुछ ऊँचा नहीं। अतः मैं एक बेहतर गणितीय निरूपण की योजना बनाने के कार्य पर लग

गया। इसके बारे में मैंने सन् 1973 के नवम्बर के अन्त में ऑक्सफोर्ड में एक अनौपचारिक गोष्ठी में बताया था। उस समय तक मैंने उत्सर्जित कणों के परिणाम का पता लगाने के लिए कोई गणना नहीं की थी। मैं तो घूर्णी कृष्ण विवरों से केवल उसी विकिरण की अपेक्षा कर रहा था, जिसकी जेल्दोविच तथा स्टारोबिन्स्की ने भविष्यवाणी की थी। बहरहाल, जब मैंने गणना की, तो बड़े आश्चर्य और झुँझलाहट के साथ मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि अघूर्णी कृष्ण विवरों को भी नियमित गति से कण पैदा करके उनका उत्सर्जन करना चाहिए। पहले तो मैंने यह सोचा कि इस उत्सर्जन का संकेत यह है कि मेरे द्वारा प्रयुक्त अनुमानों में से कोई एक अनुमान प्रामाणिक नहीं है। मुझे यह आशंका थी कि यदि बेकेंस्टीन ने इसे खोज लिया तो वह कृष्ण विवरों की 'एण्ट्रोपी' के बारे में अपने विचारों को समर्थन देने के लिए इसे और आगे के तर्क के रूप में उपयोग करेंगे जो मुझे नापसंद था। लेकिन जितना अधिक मैंने इस बारे में सोचा, उतना ही अधिक मुझे यह लगा कि प्रयुक्त अनुमान वास्तव में सही होने चाहिए। लेकिन जिस तथ्य ने मुझे यह विश्वास दिलाया कि यह उत्सर्जन वास्तविक है, वह यह था कि उत्सर्जित कणों के वर्णक्रम की किसी तप्त पिण्ड से उत्सर्जित कणों के वर्णक्रम के साथ सटीक समानता थी, और इस प्रकार कृष्ण विवर ऊष्मागतिकी के दूसरे नियम के उल्लंघनों से बचने के लिए बिल्कुल सही दर से कणों का उत्सर्जन कर रहा था। तब से दूसरे वैज्ञानिकों द्वारा इन गणनाओं की अनेकानेक प्रकार से पुनरावृत्ति की जा चुकी है। वे सभी इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि कृष्ण विवर को कणों तथा विकिरण का उत्सर्जन इसी प्रकार से करना चाहिए, मानो यह कोई तप्त पिण्ड हो, जिसका तापमान केवल कृष्ण विवर की द्रव्यराशि पर निर्भर करता हो; जितनी अधिक द्रव्यराशि, उतना ही कम तापमान।

यह किस प्रकार सम्भव है कि कृष्ण विवर कणों को उत्सर्जित करता हुआ लगे, जबकि हम यह जानते हैं कि इसमें से कोई भी वस्तु बाहर नहीं निकल सकती? क्वाण्टम सिद्धान्त के अनुसार, इसका उत्तर यह है कि कण कृष्ण विवर के अन्दर से निकलकर नहीं आते हैं, बल्कि कृष्ण विवर के घटना-क्षितिज के ठीक बाहर के 'रिक्त' आकाश से आते हैं। हम यह तथ्य इस प्रकार से समझ सकते हैं : जिसे हम रिक्त आकाश के रूप में जानते हैं, वह पूर्णतः रिक्त नहीं हो सकता, क्योंकि इसका अर्थ तो फिर यह होगा कि सभी क्षेत्रों जैसेकि गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र और विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र को पूर्णतः शून्य होना पड़ेगा। बहरहाल, किसी क्षेत्र का मान तथा समय के साथ इसके परिवर्तन की दर, किसी कण की स्थिति और वेग के समान होते हैं : अनिश्चितता के सिद्धान्त का अर्थ यह है कि इन राशियों में से किसी एक को जितनी परिशुद्धता से कोई जानता है, उतनी ही कम परिशुद्धता से वह दूसरे के बारे में जान सकता है। अतः रिक्त आकाश में क्षेत्रों को पूर्णतः शून्य निर्धारित नहीं किया जा सकता, क्योंकि तब इसका सुनिश्चित मान और सुनिश्चित परिवर्तन दर दोनों ही शून्य होंगे। जबकि क्षेत्र के मान में क्वाण्टम घट-बढ़ (quantum fluctuations) या अनिश्चितता का एक निश्चित निम्नतम परिमाण अनिवार्य रूप से होना चाहिए। कोई इन परिवर्तनों या उतार-चढ़ावों को प्रकाश या गुरुत्व बल के कण युग्म के रूप में सोच सकता है जो कभी साथ-साथ दिखाई पड़ते हैं, फिर दूर हो जाते हैं, और फिर पुनः समीप आते हैं तथा एक-दूसरे को नष्ट कर देते हैं। सूर्य के गुरुत्व-बल के वाहक कणों के समान ही ये कण आभासी (virtual) कण हैं; वास्तविक कणों से भिन्न, उनका किसी भी कण संसूचक द्वारा प्रत्यक्ष प्रेक्षण नहीं किया जा सकता। फिर भी इनके अप्रत्यक्ष प्रभावों, जैसेकि किसी परमाणु में इलेक्ट्रोन कक्षाओं की ऊर्जा में मामूली परिवर्तन, का अनुमापन किया जा सकता है, और यह अनुमापन सैद्धान्तिक पूर्वानुमानों से विलक्षण परिशुद्धता के साथ मेल खाते हैं। अनिश्चितता का सिद्धान्त यह भी पूर्वानुमान लगाता है कि इलेक्ट्रोनों या क्वार्कों जैसे पदार्थ-कणों के भी इसी के समान वर्चुअल या आभासी जोड़े होंगे। बहरहाल, इस स्थिति में जोड़े का एक सदस्य एक कण होगा तथा दूसरा एक प्रतिकण। (गुरुत्व-बल और प्रकाश के प्रतिकण, कणों के समान ही होते हैं।)

क्योंकि ऊर्जा शून्य से उत्पन्न नहीं की जा सकती, अतः किसी कण-प्रतिकण के जोड़े में से

कोई एक धनावेशित होगा तथा दूसरा ऋणावेशित। ऋणावेशित कण एक अल्पकालिक आभासी कण होने के लिए अभिशप्त है, क्योंकि सामान्य परिस्थितियों में वास्तविक कण सदैव धनावेशित होते हैं। अतः यह अनिवार्य रूप से अपने साथी कण को ढूँढ़ता है और आपस में मिलकर वे एक-दूसरे का पूर्ण विनाश कर देते हैं। बहरहाल, एक उच्च द्रव्यमान वाले पिण्ड के निकट किसी वास्तविक कण में उस स्थिति की अपेक्षा कम ऊर्जा होती है, जब वह उस पिण्ड से दूर होता है, क्योंकि उस पिण्ड के गुरुत्वाकर्षण बल के विरुद्ध दूर जाने के लिए वह अधिक ऊर्जा लेगा। सामान्यतः कण का आवेश अब भी धनात्मक ही होता है, परन्तु कृष्ण विवर के अन्दर गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र इतना प्रबल होता है कि वहाँ एक वास्तविक कण का भी ऋणात्मक आवेश हो सकता है। अतः यदि कृष्ण विवर मौजूद हैं, तो ऋणावेश वाले आभासी कणों के लिए यह सम्भव है कि वे कृष्ण विवर में गिर जाएँ और वास्तविक कण या प्रतिकण बन जाएँ। इस स्थिति में, इन्हें अपने साथी से मिलकर एक-दूसरे का विनाश नहीं करना पड़ेगा। इनका परित्यक्त साथी भी इसी प्रकार से कृष्ण विवर में गिर सकता है या धनावेशित होने के कारण यह एक वास्तविक कण अथवा प्रतिकण के रूप में कृष्ण विवर के आसपास से पलायन भी कर सकता है (चित्र 7.4)। किसी दूरस्थ प्रेक्षक को ऐसा प्रतीत होगा मानो यह उत्सर्जन कृष्ण विवर में से हो रहा है। कृष्ण विवर आकार में जितना छोटा होगा, एक वास्तविक कण बनने से पूर्व ऋणावेशित कण को उतनी ही कम दूरी तय करनी पड़ेगी, और इस प्रकार से उत्सर्जन दर तथा कृष्ण विवर का ऊपरी तापमान भी उतना ही अधिक होगा।



चित्र 7.4

उत्सर्जित विकिरण की धनात्मक ऊर्जा (positive energy) कृष्ण विवर में ऋणात्मक ऊर्जायुक्त कणों के प्रवाह द्वारा सन्तुलित हो जाएगी। आइंस्टाइन के समीकरण $E=mc^2$ के द्वारा (जिसमें E—ऊर्जा है, m—द्रव्यमान है, तथा c—प्रकाश का वेग है) ऊर्जा द्रव्यमान के समानुपाती होती है। अतः कृष्ण विवर में ऋणात्मक ऊर्जा का प्रवाह इसके द्रव्यमान को कम कर देता है। ज्यों-ज्यों कृष्ण विवर अपने द्रव्यमान का ह्रास करता जाता है, इसके घटना-क्षितिज का क्षेत्रफल घटता जाता है। परन्तु कृष्ण विवर की एण्ट्रोपी में यह ह्रास उत्सर्जित विकिरण की एण्ट्रोपी द्वारा की गई प्रतिपूर्ति से अधिक है। अतः ऊष्मागतिकी के दूसरे नियम का उल्लंघन कभी

नहीं होता।

इसके अतिरिक्त कृष्ण विवर का द्रव्यमान जितना कम होगा, इसका तापमान उतना ही अधिक होगा। इसलिए ज्यों-ज्यों कृष्ण विवर की द्रव्यराशि का ह्रास होता जाता है, इसके तापमान और उत्सर्जन की दर में वृद्धि होती जाती है, इसलिए यह अपनी द्रव्यराशि को और तीव्रता से खोता जाता है। यह बिल्कुल स्पष्ट नहीं है कि उस समय क्या होता है, जब कृष्ण विवर की द्रव्यराशि अन्ततः बेहद कम हो जाती है, परन्तु सर्वाधिक तर्कसंगत अनुमान यह है कि यह उत्सर्जन के एक भयंकर अन्तिम विस्फोट के साथ पूर्णतः विलुप्त हो जाएगा। यह विस्फोट करोड़ों हाइड्रोजन बमों के विस्फोट के समतुल्य होगा।

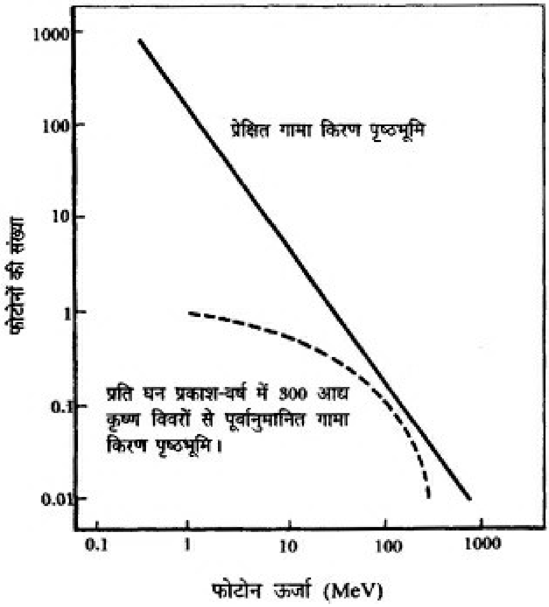
सूर्य से कई गुना द्रव्यराशि वाले कृष्ण विवर का तापमान परम शून्य से ऊपर एक डिग्री का केवल दस करोड़वाँ अंश होगा। यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त सूक्ष्म तरंग विकिरण के तापमान से काफी कम है [सूक्ष्म तरंग विकिरण का तापमान परम शून्य (absolute Zero) से 2.7 अंश ऊपर है], इसलिए ऐसे कृष्ण विवर तो जितना वे आत्मसात करते हैं, उससे भी कम उत्सर्जित करेंगे। यदि ब्रह्माण्ड की नियति सदैव विस्तृत होते रहना ही है, तो सूक्ष्म तरंगों के विकिरण का तापमान भी अन्त में ऐसे कृष्ण विवरों के तापमान से कम हो जाएगा जो उस समय अपना द्रव्यमान खोना प्रारम्भ कर देंगे। परन्तु तब भी इसका तापमान इतना कम होगा कि इसे पूरी तरह से वाष्पित हो जाने में 10^{66} (1 के बाद 66 शून्य) वर्षों का समय लगेगा। यह काल ब्रह्माण्ड की आयु के काल से भी लम्बा है जो लगभग दस या बीस अरब वर्ष (1 या 2 के बाद दस शून्य) है। दूसरी ओर, जैसाकि अध्याय-6 में बताया गया है, बहुत ही कम द्रव्यराशि वाले आद्य कृष्ण विवर भी सम्भवतः हो सकते हैं, जोकि ब्रह्माण्ड की बिल्कुल प्रारम्भिक अवस्था में अनियमितताओं के निपात द्वारा बने थे। ऐसे कृष्ण विवरों का तापमान भी काफी अधिक होगा तथा वे विकिरण भी काफी तीव्र गति से उत्सर्जित कर रहे होंगे। एक अरब टन प्रारम्भिक द्रव्यराशि वाले आद्य कृष्ण विवर का जीवनकाल मोटे तौर पर ब्रह्माण्ड की आयु के बराबर होगा। इस परिमाण से कम प्रारम्भिक द्रव्यराशि वाले आद्य कृष्ण विवर पहले ही पूर्णतः वाष्पित हो चुके होंगे, परन्तु थोड़ा अधिक द्रव्यराशि वाले कृष्ण विवर अब भी एक्स-किरणों और गामा-किरणों के रूप में विकिरण उत्सर्जित कर रहे होंगे। ये एक्स-किरणें तथा गामा-किरणें प्रकाश तरंगों के समान हैं, परन्तु इनका तरंग-दैर्घ्य अपेक्षाकृत काफी कम होता है। ऐसे 'विवर' तो मुश्किल से ही 'कृष्ण' विशेषण के योग्य हैं; वे वस्तुतः 'श्वेत तप्त' होते हैं और लगभग दस हजार मेगावाट की दर से ऊर्जा का उत्सर्जन कर रहे हैं।

यदि हम केवल इसकी शक्ति का उपयोग कर सकें तो ऐसा एक कृष्ण विवर दस विशाल बिजलीघरों को चला सकता है। हालाँकि यह जरा मुश्किल होगा : कृष्ण विवर में एक पर्वत की द्रव्यराशि एक इंच के दस खरबवें हिस्से से भी कम, यानी एक परमाणु के नाभिक के आकार के बराबर, क्षेत्र में समाई होगी! यदि हमारे पास इन कृष्ण विवरों में से एक भी पृथ्वी के धरातल पर है, तो इस स्थान से पृथ्वी के केन्द्र में इसके जा गिरने से रोकने का कोई तरीका नहीं होगा। और यह उस समय तक पृथ्वी के केन्द्र के दोनों तरफ दोलन करता रहेगा जब तक कि यह अन्ततः इसके केन्द्र में स्थिर होकर टिक नहीं जाता। अतः ऐसे कृष्ण विवरों को स्थापित करने का एकमात्र उपयुक्त स्थान जहाँ से इसके द्वारा उत्सर्जित ऊर्जा का दोहन किया जा सके, पृथ्वी के चारों ओर की कक्षा में होगा। और पृथ्वी की कक्षा में इसको स्थापित करने का एकमात्र तरीका यह होगा कि इसके सम्मुख एक विशाल द्रव्यराशि को खींचकर इसे आकृष्ट किया जाए—कुछ इस तरह जैसेकि एक गधे को गाजर दिखाकर आकृष्ट किया जाता है। यह कोई बहुत व्यावहारिक प्रस्ताव नहीं लगता, कम-से-कम निकट भविष्य में तो बिल्कुल भी नहीं।

परन्तु चाहे हम इन आद्य कृष्ण विवरों के उत्सर्जन का उपयोग न कर सकें, प्रश्न यह है कि इनका प्रेक्षण करने की हमारी सम्भावनाएँ क्या हैं? हम उन गामा-किरणों की तलाश कर सकते है जिन्हें ये आद्य कृष्ण विवर अपने अधिकांश जीवनकाल के दौरान उत्सर्जित करते रहे हैं। यद्यपि ऐसे अधिकांश कृष्ण विवरों से उत्सर्जित विकिरण बहुत ही क्षीण होगा, क्योंकि वे बहुत दूर हैं,

फिर भी उन सबसे उत्सर्जित कुल विकिरण सम्भवतः संसूचित करने योग्य होगा। गामा किरणों की ऐसी एक पृष्ठभूमि का प्रेक्षण किया गया है : चित्र 7.5 यह प्रदर्शित करता है कि विभिन्न आवृत्तियों (प्रति सेकिण्ड तरंगों की संख्या) पर प्रेक्षित तीव्रता में कितना अन्तर हो जाता है। बहरहाल, यह पृष्ठभूमि आद्य कृष्ण विवरों की अपेक्षा किन्हीं दूसरी प्रक्रियाओं से बनी होगी और शायद ऐसा हुआ भी था। चित्र 7.5 में बिन्दुकित रेखा यह प्रदर्शित करती है कि यदि प्रति घन प्रकाश वर्ष (per cubic light-year) में औसतन 300 कृष्ण विवर हों तो इनके द्वारा उत्सर्जित गामा किरणों की आवृत्ति से तीव्रता में कितना अन्तर होना चाहिए। अतः यह कहा जा सकता है कि गामा किरणों की पृष्ठभूमि के प्रेक्षण आद्य कृष्ण विवरों का कोई सकारात्मक प्रमाण नहीं जुटाते, परन्तु वे हमें यह अवश्य बताते हैं कि ब्रह्माण्ड में प्रत्येक घन प्रकाश वर्ष में औसतन 300 से अधिक कृष्ण विवर नहीं हो सकते। इस सीमा का अर्थ यह हुआ कि आद्य कृष्ण विवर ब्रह्माण्ड के कुल पदार्थ का अधिक-से-अधिक दस लाखवाँ अंश समाहित कर सकते हैं।

आद्य कृष्ण विवर इतने दुर्लभ हैं कि यह बिल्कुल असम्भव लगता है कि कोई कृष्ण विवर हमारे इतना निकट हो कि हम गामा किरणों के एक व्यष्टिगत स्रोत के रूप में उसका प्रेक्षण कर सकें। परन्तु चूँकि गुरुत्व-बल आद्य कृष्ण विवरों को किसी भी पदार्थ की ओर आकृष्ट कर देगा, इसलिए हमारी आकाशगंगा में तथा इसके चारों तरफ वे अपेक्षाकृत अधिक संख्या में पाए जाने चाहिए। इसलिए हालाँकि गामा किरणों की पृष्ठभूमि हमें यह बताती है कि प्रति घन प्रकाश वर्ष में औसतन 300 से अधिक आद्य कृष्ण विवर नहीं हो सकते, यह हमें इस सम्बन्ध में कुछ नहीं बताती कि हमारी अपनी आकाशगंगा में वे कितने परिमाण में होंगे। यदि वे कहें कि इसकी अपेक्षा दस लाख गुना ज्यादा हुए, तो हमसे निकटतम कृष्ण विवर, सम्भवतः लगभग दस अरब किलोमीटर की दूरी पर होगा या लगभग इतनी दूरी पर जितनी दूरी पर हमसे सबसे दूर का ग्रह प्लूटो स्थित है। इस दूरी पर, किसी कृष्ण विवर के नियमित उत्सर्जन का पता लगाना अब भी बहुत कठिन होगा चाहे यह दस हजार मेगावाट ही क्यों न हो। किसी आद्य कृष्ण विवर का प्रेक्षण करने के लिए हमें एक सप्ताह जैसे तर्कसंगत समय के अन्तराल पर एक ही दिशा से आनेवाली गामा किरणों के अनेक क्वांटा (quanta) का पता लगाना पड़ेगा। नहीं तो, वे मात्र पृष्ठभूमि का हिस्सा ही प्रतीत होंगे। परन्तु प्लांक (Planck) का क्वाण्टम सिद्धान्त हमें यह बताता है कि प्रत्येक गामा किरण क्वांटम (quantum) में बहुत उच्च ऊर्जा होती है, क्योंकि गामा किरणों की आवृत्ति बहुत अधिक होती है इसलिए दस हजार मेगावाट को भी विकिरित करने के लिए बहुत अधिक क्वांटा नहीं लगेंगे और प्लूटो ग्रह की दूरी से आनेवाले ऐसे क्वांटा का प्रेक्षण करने के लिए, अब तक बनाए गए किसी भी संसूचक की अपेक्षा काफी बड़े गामा किरण संसूचक की आवश्यकता पड़ेगी। इसके अतिरिक्त, उस संसूचक को अंतरिक्ष में स्थापित करना पड़ेगा, क्योंकि गामा किरणें पृथ्वी के वातावरण को वेध नहीं सकतीं।



चित्र 7.5

निस्सन्देह, यदि प्लूटो के बराबर की दूरी पर स्थित कोई कृष्ण विवर अपने जीवन की अन्तिम घड़ी पर पहुँचनेवाला हो और उसका विस्फोट हो जाए, तो उत्सर्जन के अन्तिम विस्फोट का पता लगाना आसान होगा। परन्तु यदि कोई कृष्ण विवर विगत 10 या 20 अरब वर्षों से निरन्तर उत्सर्जन कर रहा है, तो अतीत या भविष्य के लाखों वर्षों की अपेक्षा, अगले कुछ वर्षों में इसके अपने जीवन की अन्तिम घड़ी तक पहुँचने की सम्भावना वास्तव में काफी कम होगी!

अतः अपने शोध-कार्य के लिए स्वीकृत अनुदान राशि समाप्त होने से पूर्व ही ऐसे एक विस्फोट को देखने की तार्किक सम्भावना प्राप्त करने के लिए, आपको लगभग एक प्रकाश वर्ष की दूरी के अन्दर किसी भी विस्फोट का पता लगाने का कोई तरीका ढूँढ़ना पड़ेगा। वास्तव में आकाश से गामा किरणों की बौछार का पता उन उपग्रहों द्वारा लगाया जा चुका है जो मूलतः परमाणु परीक्षण निषेध सन्धि (Test Ban Treaty) के उल्लंघन का पता लगाने के लिए बनाए गए थे। ये बौछारें एक माह में लगभग सोलह बार होती हैं तथा आकाश में हर दिशा में ही लगभग समान रूप से वितरित मालूम पड़ती हैं। इससे यह संकेत मिलता है कि ये बौछारें सौरमण्डल के बाहर से आती हैं, नहीं तो ग्रहों के कक्षा-तलों की ओर हम उनके संकेन्द्रित होने की अपेक्षा करते। इनका समान वितरण यह संकेत भी करता है कि गामा किरणों के ये स्रोत या तो हमारी आकाशगंगा में हमारे बहुत निकट हैं या आकाशगंगा से बाहर ब्रह्माण्डिकीय दूरियों पर स्थित हैं, नहीं तो वे आकाशगंगा के तल की ओर संकेन्द्रित होते। बाद वाली स्थिति में इन बौछारों को अस्तित्व में आने के लिए आवश्यक ऊर्जा इतनी अधिक उच्च होगी कि यह नन्हें कृष्ण विवरों द्वारा उत्पन्न नहीं की जा सकती, परन्तु आकाशगंगा सम्बन्धी शब्दावली में यदि ये स्रोत समीप थे, तब यह सम्भव हो सकता है कि ये विस्फोटित होते हुए कृष्ण विवर ही थे। मैं तो यही पसन्द करूँगा कि ऐसा ही हो, परन्तु मुझे यह पहचान करनी है कि क्या गामा किरण बौछारों के दूसरे सम्भावित स्पष्टीकरण भी हैं, जैसे टकराते हुए न्यूट्रोन तारे। अगले कुछ वर्षों में नए-नए प्रेक्षण, विशेष रूप से LIGO जैसे गुरुत्वीय तरंग संसूचक द्वारा किए हुए प्रेक्षण, हमें गामा किरण बौछारों के मूल स्रोत को खोजने में सम्भवतः समर्थ बना देंगे।

भले ही आद्य कृष्ण विवर की खोज बेकार ही सिद्ध हो, परन्तु जैसाकि लगता है, ब्रह्माण्ड की बहुत प्रारम्भिक अवस्थाओं के बारे में वे हमें अब भी महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रदान कर सकते हैं।

यदि प्रारम्भिक ब्रह्माण्ड अव्यवस्थित या अनियमित रहा होता या पदार्थ का दाब बहुत कम होता, तो गामा किरण पृष्ठभूमि के हमारे प्रेक्षण द्वारा पहले से नियत सीमा से कहीं अधिक आद्य कृष्ण विवरों के उत्पन्न होने की आशा की जा सकती थी। यदि प्रारम्भिक ब्रह्माण्ड अति मसृण (smooth) तथा समरूपी (uniform) व उच्च दाबयुक्त होता, केवल तभी आद्य कृष्ण विवरों की प्रेक्षणीय संख्या की अनुपस्थिति को स्पष्ट किया जा सकता था।

कृष्ण विवरों से विकिरण की अवधारणा उस पूर्वानुमान का प्रथम उदाहरण थी जो इस शताब्दी के दो महान सिद्धान्तों—सामान्य आपेक्षिकता सिद्धान्त और क्वाण्टम यान्त्रिकी, पर आवश्यक रूप से निर्भर था। प्रारम्भ में तो इसने बहुत बड़ा विवाद खड़ा कर दिया था क्योंकि इसने प्रचलित दृष्टिकोण को उलट दिया था :

"कृष्ण विवर कोई उत्सर्जन कैसे कर सकता है?" ऑक्सफोर्ड के निकट रदरफोर्ड-एपलेटन (Rutherford-Appleton) प्रयोगशाला में आयोजित एक सम्मेलन में जब मैंने सर्वप्रथम अपनी गणनाओं के निष्कर्ष घोषित करते हुए यह कहा, तो किसी ने भी मेरा विश्वास नहीं किया। मेरे व्याख्यान के अन्त में उस सत्र के अध्यक्ष किंग्स कॉलेज, लन्दन के जॉन जी. टेलर (John G. Taylor) ने कहा कि यह बकवास है। उन्होंने अपने विचार की पुष्टि में एक शोध-पत्र भी लिखा। फिर भी अन्त में, जॉन टेलर सहित अधिकांश लोग इस निष्कर्ष पर पहुँच गए कि यदि सामान्य आपेक्षिकता सिद्धान्त और क्वाण्टम यान्त्रिकी के सम्बन्ध में हमारी अन्य अवधारणाएँ सही हैं तो कृष्ण विवरों को, तप्त पिण्डों की भाँति, निश्चित रूप से विकिरण करना चाहिए। इस प्रकार से, हालाँकि, हम अभी तक किसी भी आद्य कृष्ण विवर को खोज पाने में सफल नहीं हुए हैं, परन्तु इस बिन्दु पर एक सामान्य सहमति है कि यदि हमने इन्हें खोज लिया तो यह प्रचुर गामा किरणें और एक्स-किरणें उत्सर्जित कर रहे होंगे।

कृष्ण विवरों से विकिरण के अस्तित्व का यह आशय प्रतीत होता है कि गुरुत्वीय निपात इतना अन्तिम एवं अनुत्क्रमणीय (irreversible) नहीं है जितना कि हमने कभी सोचा था। यदि कोई अन्तरिक्ष यात्री किसी कृष्ण विवर में गिर जाता है तो इसकी द्रव्यराशि बढ़ जाएगी, परन्तु अन्ततः उस अतिरिक्त द्रव्यराशि के समतुल्य ऊर्जा ब्रह्माण्ड में विकिरण के रूप में वापस कर दी जाएगी। इस प्रकार से, अन्तरिक्ष यात्री, एक अर्थ में, 'पुनर्चक्रित' (recycled) हो जाएगा। यह एक निकृष्ट प्रकार का अमरत्व होगा क्योंकि अन्तरिक्ष यात्री के लिए काल की कोई भी व्यष्टिगत अवधारणा उसी समय समाप्त हो जाएगी जब वह कृष्ण विवर में टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा! कृष्ण विवर द्वारा अन्ततः उत्सर्जित कणों के प्रकार भी उन कणों से सामान्यतः भिन्न होंगे, जिनसे अन्तरिक्ष यात्री बना हुआ था : अन्तरिक्ष यात्री का एकमात्र अभिलक्षण जो जीवित बचेगा, वह केवल उसकी द्रव्यराशि या ऊर्जा होगी।

कृष्ण विवरों से उत्सर्जन प्राप्त करने के लिए मैंने जिन सन्निकटनों (approximations) का उपयोग किया था उन्हें उस समय भी सही निष्कर्ष देने चाहिए जब कृष्ण विवर का द्रव्यमान एक ग्राम के छोटे से अंश से अधिक हो। बहरहाल, कृष्ण विवर के जीवन के अन्त में जब इसकी द्रव्यराशि बहुत ही कम रह जाएगी, तो ये सन्निकटन भंग हो जाएँगे। सबसे अधिक सम्भावित निष्कर्ष यह लगता है कि कृष्ण विवर अपने साथ उस अंतरिक्ष यात्री तथा इस विलक्षणता, जो यदि वास्तव में है तो संभवतः उसके अंदर ही है, को लेकर ब्रह्माण्ड के कम-से-कम हमारे क्षेत्र से विलुप्त हो जाएगा। यह इस तथ्य का प्रथम संकेत था कि क्वाण्टम यान्त्रिकी उन विलक्षणताओं को शायद समाप्त कर सकती है जिनका पूर्वानुमान सामान्य आपेक्षिकता सिद्धान्त ने प्रस्तुत किया था। बहरहाल, सन् 1974 में मैं तथा अन्य लोग जिन विधियों का प्रयोग कर रहे थे वे ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने में असमर्थ थीं कि क्या क्वाण्टम गुरुत्व (quantum gravity) विलक्षणता को जन्म देगी। अतः सन् 1975 के बाद मैंने क्वाण्टम गुरुत्व के बारे में रिचर्ड फाइनमैन (Richard Feynman) की 'इतिवृत्तों के योगफल' (sum over histories) पर आधारित अधिक प्रभावी दृष्टिकोण अपनाया। ब्रह्माण्ड के जन्म और नियति तथा इसकी अंतर्वस्तु (contents) के बारे में जो उत्तर यह नया दृष्टिकोण अन्तरिक्ष यात्री आदि के प्रतीकों से प्रस्तुत करता है; उनका

वर्णन अगले दो अध्यायों में किया जाएगा। हम यह देखेंगे कि यद्यपि अनिश्चितता का सिद्धान्त हमारे समस्त पूर्वानुमानों की सुनिश्चितता पर प्रश्नचिह्न लगाता है, तो भी साथ ही यह उस मूलभूत अननुमेयता (unpredictability) को दूर कर सकता है जो दिक्-काल की विलक्षणता में उत्पन्न होती है।

अध्याय *8*

ब्रह्माण्ड का उद्‌भव और उसकी नियति

आइंस्टाइन के सामान्य आपेक्षिकता सिद्धान्त ने अपनी ही सामर्थ्य पर यह पूर्वानुमान लगाया था कि दिक्-काल की उत्पत्ति एक असीमित घनत्व और ताप वाले महानाद से हुई थी तथा इसका अन्त (यदि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का पुनः निपात हुआ) एक असीमित रूप से सम्पीडित विलक्षणता (सिंगुलैरिटी) पर होगा या (यदि किसी स्थानीय क्षेत्र, जैसे कि तारे, का निपात हुआ हो) किसी कृष्ण विवर की आन्तरिक सिंगुलैरिटी पर होगा। कोई भी पदार्थ जो उस विवर में गिरेगा, विलक्षणता के बिन्दु पर नष्ट हो जाएगा, और इसके द्रव्यमान का केवल गुरुत्वीय प्रभाव ही बाहर अनुभव किया जा सकेगा। दूसरी ओर, जब क्वाण्टम प्रभावों पर ध्यान केन्द्रित किया गया, तब ऐसा लगा कि द्रव्यराशि अथवा पदार्थ की ऊर्जा अन्ततः शेष ब्रह्माण्ड में वापस कर दी जाएगी, तथा कृष्ण विवर अपने अन्दर की विलक्षणता के साथ ही वाष्पित हो जाएगा और अन्त में विलुप्त हो जाएगा। क्या क्वाण्टम-यान्त्रिकी आद्य-परमाणु के महाविस्फोट (big bang) या महानाद तथा असीमित रूप से सम्पीडित विलक्षणता पर इसी प्रकार का कोई नाटकीय प्रभाव रख सकती थी? ब्रह्माण्ड की बहुत ही प्रारम्भिक और बाद की अवस्थाओं में उस समय वास्तव में क्या होता है, जब गुरुत्वीय क्षेत्र इतने अधिक प्रबल हो जाते हैं कि क्वाण्टम प्रभावों की उपेक्षा नहीं की जा सकती? क्या सचमुच ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति या इसका अन्त होता है? और यदि होता है, तब ये आदि या अन्त किस प्रकार के होते हैं?

सन् 1970 के पूरे दशक में, मैं मुख्यतः कृष्ण विवरों का अध्ययन करता रहा था, परन्तु सन् 1981 में ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति और नियति से सम्बन्धित प्रश्नों में उस समय मेरी अभिरुचि पुनः जाग्रत हो गई जब मैंने वैटिकन में जेसूइट्स (एक ईसाई सम्प्रदाय) द्वारा ब्रह्माण्डिकी के सम्बन्ध में आयोजित एक सम्मेलन में भाग लिया। कैथोलिक चर्च ने उस समय गैलीलियो के साथ एक बहुत बड़ा अन्याय किया था, जब उसने विज्ञान के एक प्रश्न पर नियम बनाने का प्रयास किया था और यह घोषित कर दिया था कि सूर्य पृथ्वी की परिक्रमा करता है। अब, शताब्दियों बाद, ब्रह्माण्डिकी पर परामर्श देने के लिए इसने बहुत सारे विशेषज्ञों को आमन्त्रित किया था। सम्मेलन के अन्त में, इसमें भाग लेनेवाले सभी विद्वज्जनों को पोप के प्रवचन सुनने की अनुमति दी गई। उन्होंने हमें यह बताया कि आद्य परमाणु के महाविस्फोट के बाद ब्रह्माण्ड के विकास का अध्ययन करना तो उचित है, परन्तु हम महाविस्फोट की पड़ताल में न पड़ें, तो अच्छा हो, क्योंकि वह सृष्टि की रचना का क्षण था और ईश्वरीय कार्य था। उस समय मैं बड़ा प्रसन्न था कि उन्हें मेरे उस व्याख्यान की विषय-वस्तु की जानकारी नहीं थी जो मैंने सम्मेलन में दिया था और बताया था कि दिक्-काल अनन्त नहीं है, परन्तु इसकी कोई परिसीमा भी नहीं है, जिसका यह अर्थ निकलता है कि इसका कोई आदि नहीं था, किसी ने इसकी सृष्टि नहीं की थी। मैं नहीं चाहता था कि मेरा भी वही हाल हो जो गैलीलियो का हुआ, हालाँकि मुझे गैलीलियो के साथ हमेशा एक अपनापन-सा महसूस हुआ है। और हो भी क्यों न! मेरा जन्म गैलीलियो की मृत्यु के ठीक 300 साल बाद हुआ है।

ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति और नियति की अवधारणा को क्वाण्टम यान्त्रिकी किस प्रकार प्रभावित कर सकती है, इस सम्बन्ध में अपने तथा अन्य लोगों के विचारों को स्पष्ट करने के लिए,

सर्वप्रथम 'हॉट बिग बैंग मॉडल' (तप्त महाविस्फोट मॉडल) के नाम से ज्ञात मॉडल के अनुसार ब्रह्माण्ड के सामान्यतः स्वीकृत इतिहास को समझना बहुत आवश्यक है। इस मॉडल में यह माना जाता है कि आद्य परमाणु के महाविस्फोट की स्थिति के बाद ब्रह्माण्ड का स्वरूप एक फ्रीडमैन मॉडल (Friedmann Model) के अनुसार है। ऐसे मॉडलों में यह पाया जाता है कि ज्यों-ज्यों ब्रह्माण्ड का विस्तार होता जाता है, इसके अन्दर का समस्त पदार्थ या विकिरण ठण्डा होता जाता है। (जब ब्रह्माण्ड अपने आकार का दो गुना हो जाएगा, तब इसका तापमान आधा रह जाएगा।) चूँकि तापमान पदार्थ-कणों की औसत ऊर्जा—या गति—का माप मात्र है, इसलिए ब्रह्माण्ड के ठण्डे होते जाने का मुख्य प्रभाव इसके अन्दर के पदार्थ पर पड़ेगा। अत्यन्त ही उच्च तापमान पर कणों का वेग इतना तीव्र होगा कि वे नाभिकीय या विद्युत चुम्बकीय बलों के कारण एक-दूसरे की ओर किसी भी प्रकार के आकर्षण से बचकर निकल सकते हैं, परन्तु जैसे ही वे ठण्डे होते जाएँगे, तब पिण्डों का निर्माण प्रारम्भ करने के लिए कण एक-दूसरे को आकर्षित करने लगेंगे। इसके अतिरिक्त, ब्रह्माण्ड में उपस्थित कणों के प्रकार भी इस तापमान पर ही निर्भर करेंगे। अत्यन्त उच्च तापमान पर, कणों में इतनी अधिक ऊर्जा होती है कि जब कभी भी वे टकराएँगे, तब कई विभिन्न कण/प्रतिकण के जोड़े उत्पन्न हो जाएँगे—और यद्यपि इनमें से कुछ कण अपने प्रतिकणों से टकराकर नष्ट हो जाएँगे, फिर भी वे टकराकर नष्ट होने की अपेक्षा और अधिक तीव्र गति से बनते जाएँगे। टकरानेवाले कणों में कम तापमान पर कम ऊर्जा होती है। उस समय कण/प्रतिकण के जोड़े पैदा कम होंगे और नष्ट ज्यादा होंगे। उत्पादन की तुलना में उनका विनाश तेजी से होगा।

यह समझा जाता है कि महाविस्फोट के समय ब्रह्माण्ड शून्य आकार का था, और इसीलिए यह असीमित रूप से तप्त था। परन्तु ज्यों-ज्यों ब्रह्माण्ड फैलता गया, विकिरण का तापमान घटता गया। महाविस्फोट के एक सेकिण्ड बाद यह लगभग 10 अरब डिग्री घट गया होगा। यह सूर्य के केन्द्र के तापमान से लगभग एक हजार गुना अधिक है, परन्तु इतना उच्च तापमान हाइड्रोजन बम विस्फोट से प्राप्त किया जा सकता है। इस समय ब्रह्माण्ड में, बहुत अल्प मात्रा में प्रोटोनों तथा न्यूट्रोनों के साथ-साथ, अधिकांशतः फोटोन, इलेक्ट्रोन तथा न्यूट्रिनों (अत्यन्त ही हल्के कण जो केवल क्षीण बल तथा गुरुत्व-बल से प्रभावित होते हैं) और उनके प्रतिकण रहे होंगे। ज्यों-ज्यों ब्रह्माण्ड फैलता गया और इसका तापमान घटता गया, कणों की टक्करों से इलेक्ट्रोन और प्रति-इलेक्ट्रोन जोड़ों के पैदा होने की दर उनके टकराकर पूर्ण विनाश की दर से नीचे आ गई होगी। इस प्रकार अधिकांश इलेक्ट्रोनों और प्रति-इलेक्ट्रोनों ने एक-दूसरे का पूर्ण विनाश कर दिया होगा तथा शेष बचे थोड़े से इलेक्ट्रोनों को छोड़कर अधिकाधिक मात्रा में फोटोन पैदा हुए होंगे। बहरहाल, न्यूट्रिनों तथा प्रति-न्यूट्रिनों ने एक-दूसरे का पूर्ण विनाश नहीं किया होगा, क्योंकि ये कण परस्पर तथा दूसरे कणों के साथ बहुत ही क्षीण अंतःक्रिया करते हैं। इसलिए वे आज भी हमारे चारों ओर होने चाहिए। यदि हम उनका प्रेक्षण कर सकें, तो ब्रह्माण्ड की एक बहुत ही तप्त प्रारम्भिक अवस्था की इस तस्वीर का अच्छा परीक्षण हो सकेगा। दुर्भाग्यवश इनकी ऊर्जाएँ आजकल इतनी कम होंगी कि हम उनका प्रत्यक्ष रूप से प्रेक्षण नहीं कर सकते। यदि न्यूट्रिनों द्रव्यमानरहित नहीं होते हैं, बल्कि अपना थोड़ा सा द्रव्यमान रखते हैं जैसाकि हाल ही में किए गए कुछ प्रयोगों ने सुझाया था, तब हम अप्रत्यक्ष रूप से उनका पता लगाने में समर्थ हो सकेंगे : वे अदीप्त या कृष्ण पदार्थ (dark matter) का स्वरूप हो सकते हैं जिनमें पर्याप्त रूप से इतना गुरुत्व-बल है कि वे ब्रह्माण्ड का प्रसार रोककर इसका संकुचन प्रारम्भ कर सकते हैं।

आद्य परमाणु महाविस्फोट के लगभग एक सौ सेकिण्ड बाद ब्रह्माण्ड का तापमान लगभग एक अरब डिग्री तक कम हो गया होगा। यह वह तापमान है जो सबसे अधिक तप्त तारों के अन्दर होता है। इस तापमान पर प्रोटोनों तथा न्यूट्रोनों में इतनी अधिक ऊर्जा नहीं होगी कि वे दृढ़ नाभिकीय बलों के आकर्षण से बच सकें, और उन्होंने ड्यूटीरियम (भारी हाइड्रोजन), जिसमें एक प्रोटोन तथा एक न्यूट्रोन होता है, के परमाणुओं के नाभिकों का निर्माण करने के लिए परस्पर संयोजन करना प्रारम्भ कर दिया होगा। ड्यूटीरियम के नाभिकों ने फिर, अन्य प्रोटोनों और

न्यूट्रोनों को साथ मिलाकर हीलियम के नाभिक, जिसमें दो प्रोटोन और दो न्यूट्रोन होते हैं, का निर्माण किया होगा। इसके साथ ही अल्प मात्रा में लीथियम तथा बेरीलियम जैसे दो अपेक्षाकृत भारी तत्त्व भी बने होंगे। कोई भी यह गणना कर सकता है कि 'तप्त महाविस्फोट मॉडल' में लगभग एक चौथाई प्रोटोन और न्यूट्रोन, बहुत ही अल्प मात्रा में भारी हाइड्रोजन तथा अन्य तत्त्वों के साथ हीलियम नाभिकों में परिवर्तित हो चुके होंगे। शेष बचे हुए न्यूट्रोन क्षय द्वारा प्रोटोन, जो सामान्य हाइड्रोजन परमाणुओं के नाभिक होते हैं, में बदल गए होंगे।

ब्रह्माण्ड की असीमित रूप से तप्त प्रारम्भिक अवस्था की यह तस्वीर सर्वप्रथम प्रसिद्ध वैज्ञानिक जॉर्ज गैमो (George Gamow) द्वारा अपने विद्यार्थी राल्फ एल्फर (Ralph Alpher) के सहयोग से सन् 1948 में लिखित एक प्रसिद्ध शोध-पत्र में प्रस्तुत की गई थी। गैमो असाधारण रूप से विनोदी स्वभाव के थे—उन्होंने परमाणु वैज्ञानिक हेंस बेथे को उनका नाम अपने शोध-पत्र में जोड़ने के लिए मनाया, जिससे कि एल्फर, बेथे, गैमो, इन लेखकों की सूची का क्रम यूनानी वर्णमाला के प्रथम तीन अक्षरों एल्फा, बीटा व गामा के समान हो जाए, जो ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति पर लिखे उनके शोध-पत्र के लिए विशेष रूप से उचित था। इस शोध-पत्र में उन्होंने यह विलक्षण पूर्वानुमान प्रस्तुत किया कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के अत्यन्त प्रारम्भिक पलों में विकिरण की प्रधानता थी और उस विकिरण का अवशेष (फोटोनों के रूप में) आज भी सभी दिशाओं में व्याप्त होना चाहिए, परन्तु इसका तापमान घटकर परम शून्य (-273 सेल्सियस) से केवल बहुत ही कम अंश ऊपर होना चाहिए। यही वह विकिरण था जिसको पेंजियास और विल्सन ने सन् 1965 में खोजा था। जिस समय एल्फर, बेथे और गैमो ने अपना शोध-पत्र तैयार किया था, उस समय प्रोटोनों और न्यूट्रोनों की नाभिकीय अभिक्रियाओं के सम्बन्ध में अधिक जानकारी नहीं थी। इसलिए प्रारम्भिक ब्रह्माण्ड में विभिन्न तत्त्वों के अनुपात के सम्बन्ध में किए गए पूर्वानुमान सही नहीं थे परन्तु अब बेहतर जानकारी उपलब्ध हो जाने के बाद पुनः गणनाओं द्वारा जो पूर्वानुमान सामने आए हैं वे वर्तमान प्रेक्षणों से मेल खाते हैं। इसके अतिरिक्त, किसी दूसरे तरीके से यह स्पष्ट करना बहुत कठिन है कि आखिर ब्रह्माण्ड में हीलियम की ही मात्रा इतनी अधिक क्यों है? अतः हम पूर्णतः आश्वस्त हैं कि महाविस्फोट के कम-से-कम लगभग एक सेकिण्ड के बाद की ब्रह्माण्ड की एक सही तस्वीर हमारे सामने है।

महाविस्फोट के केवल कुछ ही घण्टों के अन्दर, हीलियम तथा अन्य तत्त्वों का निर्माण रुक गया होगा। और, उसके बाद अगले करोड़ों वर्षों तक, बिना कुछ विशेष घटित हुए ब्रह्माण्ड बस फैलता रहा होगा। आखिर में जब तापमान एक बार कुछ हजार डिग्री कम हो गया, तब इलेक्ट्रोनों और नाभिकों में इतनी ऊर्जा नहीं रही कि वे अपने बीच विद्युत चुम्बकीय बल के आकर्षण से बच पाते, अतः उन्होंने परमाणुओं का निर्माण करने के लिए संयोजन करना प्रारम्भ कर दिया होगा। ब्रह्माण्ड समग्र रूप में तो विस्तृत होता रहा होगा तथा इसका तापमान कम होता रहा होगा परन्तु उन क्षेत्रों में जिनका घनत्व औसत से थोड़ा अधिक था, अतिरिक्त गुरुत्व-बल के कारण विस्तार की यह प्रक्रिया धीमी हो गई होगी। यह प्रक्रिया अन्ततः कुछ क्षेत्रों में विस्तार को रोक देगी तथा उन्हें पुनः ध्वस्त होने की प्रक्रिया प्रारम्भ करने के लिए प्रेरित करेगी। जब यह औसत से अधिक घनत्व का विशेष क्षेत्र सम्पीडित होकर और अधिक संघनित हो जाएगा तथा ध्वस्त होने लगेगा, तब सम्भवतः इन क्षेत्रों से बाहर उपस्थित पदार्थ का गुरुत्वाकर्षण इनका कुछ-कुछ घूर्णन प्रारम्भ कर देगा। ज्यों-ज्यों यह ध्वस्त होता हुआ क्षेत्र छोटा होता जाएगा, वह अपेक्षाकृत तीव्र गति से प्रचक्रण (स्पिन) करने लगेगा—ठीक जैसे बर्फ पर फिरकनेवाले स्केटर (skaters) ज्यों-ज्यों अपनी बाँहें समेटते जाते हैं, उनकी प्रचक्रण गति और अधिक तीव्र होती जाती है। अन्ततः जब वह क्षेत्र काफी छोटा हो गया, तब अपने गुरुत्व-बल को सन्तुलित करने के लिए पर्याप्त तीव्र गति से प्रचक्रण करने लगा, और इस प्रकार से डिस्कनुमा घूर्णनशील मन्दाकिनियों का जन्म हुआ। दूसरे क्षेत्र, जो घूर्णन गति नहीं पकड़ पाए, वे अण्डाकार पिण्ड बन गए जिन्हें दीर्घवृत्ताकार (elliptical) मन्दाकिनी कहा जाता है। ऐसी मन्दाकिनियों के क्षेत्र इसलिए ध्वस्त होने से रुक जाएँगे क्योंकि मन्दाकिनी के व्यष्टिगत भाग स्थिरता से अपने केन्द्र की परिक्रमा कर रहे होंगे,

परन्तु समग्र रूप में मन्दाकिनी की अपनी कोई घूर्णन गति नहीं होगी।

ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, इन मन्दाकिनियों में हाइड्रोजन और हीलियम गैस के पृथक संघनित छोटे-छोटे बादल बन गए जो अपने ही गुरुत्व-बल के दाब के कारण ध्वस्त होने लगे। जब ये संकुचित होने लगे, और उनके अन्दर के परमाणु एक-दूसरे से टकराने लगे, तब गैस के तापमान में उस समय तक वृद्धि होती रही जब तक कि ये नाभिकीय संलयन अभिक्रियाएँ प्रारम्भ करने के लिए पर्याप्त रूप से तप्त नहीं हो गईं। इन अभिक्रियाओं ने हाइड्रोजन को और अधिक हीलियम में बदल दिया तथा इस प्रक्रिया से उत्पन्न ऊष्मा ने दाब बढ़ा दिया तथा इस प्रकार गैस के उन बादलों को और अधिक संकुचित होने से रोक दिया। हमारे सूर्य के समान तारों के रूप में वे लम्बे समय तक इसी अवस्था में स्थिर रहेंगे और हाइड्रोजन को जलाकर हीलियम में बदलते रहेंगे तथा इसके परिणामस्वरूप ऊर्जा को ऊष्मा व प्रकाश के रूप में विकीरित करते रहेंगे। महाकाय तारों को अपने अपेक्षाकृत अधिक प्रबल गुरुत्व-बल को सन्तुलित करने के लिए और भी अधिक तप्त होने की आवश्यकता होगी, इससे नाभिकीय संलयन की अभिक्रियाएँ इतनी अधिक तीव्र गति से घटित होंगी कि वे अपने हाइड्रोजन को केवल दस करोड़ वर्षों के अल्पकाल में ही पूरी तरह समाप्त कर लेंगे। फिर वे थोड़ा-सा संकुचित हो जाएँगे, और जैसे ही उनके ताप में और वृद्धि होगी, वे हीलियम को कार्बन तथा ऑक्सीजन जैसे और अधिक भारी तत्त्वों में बदलना प्रारम्भ कर देंगे। बहरहाल, यह प्रक्रिया और अधिक ऊर्जा को मुक्त नहीं करेगी, इसलिए एक संकट की स्थिति उत्पन्न होगी, जैसाकि कृष्ण विवरों के अध्याय में वर्णित किया गया है। इससे आगे क्या होता है, यह अभी पूर्णतः स्पष्ट नहीं है, परन्तु सम्भावना यही प्रतीत होती है कि तारे का केन्द्रीय क्षेत्र ध्वस्त होकर किसी न्यूट्रोन तारे या कृष्ण विवर के रूप में अत्यधिक संघनित हो जाएगा। एक प्रचण्ड विस्फोट के साथ ही तारे की बाहरी परतें कभी-कभी आकाश में छिटक सकती हैं। इन्हें अधिनवतारा (supernova) कहते हैं तथा इनमें इतना अधिक प्रकाश तथा विकिरण उत्पन्न होता है कि ये अपनी मन्दाकिनी में अन्य सभी तारों की अपेक्षा कहीं अधिक तेजी से चमकते हैं। तारे के जीवन के अन्त के निकट संलयन की आखिरी कड़ी के रूप में उत्पन्न कुछ भारी तत्त्व मन्दाकिनी में विद्यमान गैस में वापस छिटक जाएँगे और अगली पीढ़ी के तारों के लिए कुछ कच्ची सामग्री की व्यवस्था कर देंगे। हमारे सूर्य में इन भारी तत्त्वों की मात्रा लगभग दो प्रतिशत है क्योंकि यह दूसरी या तीसरी पीढ़ी का तारा है, जिसकी उत्पत्ति लगभग पाँच अरब वर्ष पूर्व एक ऐसे घूर्णन करनेवाले गैस के बादल से हुई थी, जिसमें किसी पूर्ववर्ती सुपरनोवा का कचरा शामिल था। उस बादल की गैस की अधिकांश मात्रा से सूर्य की उत्पत्ति हो गई या वह बाहर अन्तरिक्ष में फिंक गई, परन्तु उन अपेक्षाकृत भारी तत्त्वों की थोड़ी-सी मात्रा ने एकत्रित होकर उन पिण्डों का निर्माण कर दिया जो अब पृथ्वी के समान ग्रहों के रूप में सूर्य की परिक्रमा करते हैं।

प्रारम्भ में पृथ्वी बहुत गरम थी और इसका कोई वातावरण नहीं था। समय बीतने के साथ धीरे-धीरे इसका तापमान कम होता गया और यह ठण्डी होती गई और चट्टानों से उत्सर्जित गैसों से इसका वातावरण बनता गया। यह प्रारम्भिक वातावरण ऐसा नहीं था जिसमें हम जीवित रह पाते। इसमें ऑक्सीजन की कोई मात्रा नहीं थी, बल्कि बहुत सारी ऐसी दूसरी गैसें थीं जो हमारे लिए विषैली हैं, जैसे हाइड्रोजन सल्फाइड (वह गैस जिसकी गन्ध हमें सड़े अण्डों से आती है)। बहरहाल, जीवन के ऐसे अनेक प्रारम्भिक स्वरूप हैं जो ऐसी विषम परिस्थितियों में भी विकसित हो सकते हैं। ऐसा समझा जाता है कि उनका विकास महासागरों में हुआ तथा यह सम्भवतः परमाणुओं के आकस्मिक संयोजन का परिणाम था जिससे बड़ी संरचनाएँ बनीं जिन्हें मैक्रो-मौलिक्यूल्स (महाअणु) कहते हैं तथा जो महासागर के दूसरे परमाणुओं का संयोजन करके इसी प्रकार की संरचनाएँ बनाने में सक्षम थे। इस प्रकार उन्होंने प्रजनन कर अपना पुनरुत्पादन तथा वृद्धि की होगी। कुछ स्थितियों में पुनरुत्पादन में त्रुटियाँ हुई होंगी। अधिकांशतः ये त्रुटियाँ इस प्रकार की रही होंगी कि नए महाअणु अपना पुनरुत्पादन नहीं कर सके होंगे और अन्ततः नष्ट हो गए होंगे। बहरहाल, कुछ त्रुटियों ने ऐसे नए महाअणुओं को बनाया होगा जो अपना पुनरुत्पादन

करने में ज्यादा सक्षम थे। अतएव वे एक लाभकारी स्थिति में रहे होंगे तथा उन्होंने मूल महाअणुओं का स्थान ले लिया होगा। इस प्रकार क्रमिक विकास की एक प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई जिसने और भी अधिक जटिल, स्व-जनन करनेवाले जीवों के विकास का मार्ग प्रशस्त कर दिया। जीवन के पहले अतिप्रारम्भिक स्वरूप हाइड्रोजन सल्फाइड सहित विभिन्न पदार्थों का उपभोग कर लेते थे तथा ऑक्सीजन मुक्त करते थे। इससे धीरे-धीरे वातावरण बदल गया तथा इसका वह स्वरूप बन गया जो आज विद्यमान है तथा इसने मछली, सरीसृप, स्तनधारी जीव और अन्ततः मानवजाति जैसे जीवन के उन्नत स्वरूपों के विकास का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

ब्रह्माण्ड की यह तस्वीर कि यह शुरू में बड़ा गरम था और अपने विस्तार के साथ ठण्डा होता चला गया, आज हमारे पास उपलब्ध सभी प्रेक्षणात्मक साक्ष्यों के अनुरूप है। फिर भी, यह बहुत सारे महत्त्वपूर्ण प्रश्नों को अनुत्तरित ही छोड़ देती है जैसे :

(1) अपनी प्रारम्भिक अवस्था में ब्रह्माण्ड इतना अधिक तप्त क्यों था?

(2) ब्रह्माण्ड विशाल स्तर पर एक समान क्यों प्रतीत होता है? आकाश के प्रत्येक बिन्दु और प्रत्येक दिशा में यह एक समान क्यों दिखाई देता है? विशेष रूप से, अन्तरिक्ष के पृष्ठभूमि-विकिरण की तीव्रता और तापमान हर दिशा में एक जैसा क्यों है? यह किसी सीमा तक बहुत सारे विद्यार्थियों से परीक्षा के प्रश्न पूछने जैसा है। यदि वे सभी बिल्कुल एक-से उत्तर देते हैं, तब आप पूरी तरह आश्वस्त हो सकते हैं कि उन्होंने एक-दूसरे से विचारों का आदान-प्रदान किया है। फिर भी, उपर्युक्त मॉडल में, महाविस्फोट के समय से, प्रकाश एक दूरस्थ क्षेत्र से दूसरे दूरस्थ क्षेत्र तक नहीं पहुँच सकता था, हालाँकि ये क्षेत्र प्रारम्भिक ब्रह्माण्ड में परस्पर निकट थे। आपेक्षिकता के सिद्धान्त के अनुसार, यदि प्रकाश एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र तक नहीं जा सकता, तो कोई अन्य सूचना भी सम्प्रेषित नहीं हो सकती। इसलिए यदि किन्हीं अस्पष्ट कारणों के चलते ब्रह्माण्ड के सभी क्षेत्रों की उत्पत्ति एक समान तापमान व विकिरण की तीव्रता के साथ न हुई होती, तब ब्रह्माण्ड के विभिन्न क्षेत्रों के तापमान के एक समान रहने का और कोई मार्ग नहीं हो सकता था।

(3) ब्रह्माण्ड विस्तार की क्रान्तिक दर की इतनी निकटता के साथ ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति क्यों हुई कि यह ब्रह्माण्ड के प्रसार के बाद संकुचन व पुनः ध्वस्त होनेवाले मॉडलों को उन मॉडलों से पृथक करता है जिनमें ब्रह्माण्ड का प्रसार सदैव होता रहेगा, जैसाकि यह अब 10 अरब वर्षों बाद भी लगभग क्रान्तिक दर से विस्तृत हो रहा है। यदि महाविस्फोट के एक सेकिण्ड बाद भी विस्तार की दर दस लाख खरब के एक अंश के हिसाब से कम हो गई होती, तब अपने वर्तमान स्वरूप तक पहुँचने से पहले ही ब्रह्माण्ड संकुचित होकर पुनः ध्वस्त हो गया होता।

(4) इस तथ्य के बावजूद कि ब्रह्माण्ड विशाल स्तर पर इतना समरूप एवं समांगी है, इसमें तारों तथा मन्दाकिनियों जैसी स्थानीय अनियमितताएँ विद्यमान हैं। इनके सम्बन्ध में यह समझा जाता है कि ब्रह्माण्ड की प्रारम्भिक अवस्था में, एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र तक इसके घनत्व में छोटी-छोटी असमानताएँ थीं, जिनसे इन अनियमितताओं का विकास हुआ। अब प्रश्न यह है कि घनत्व की इन असमानताओं का मूल कारण क्या था?

आपेक्षिकता का सामान्य सिद्धान्त अपने इस पूर्वानुमान के कारण कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति अनन्त घनत्व वाले महाविस्फोट विलक्षणता से हुई, केवल अपनी ही परिधि में, इन अभिलक्षणों की व्याख्या नहीं कर सकता या इन प्रश्नों के उत्तर नहीं दे सकता। सिंगुलैरिटी की स्थिति पर सामान्य आपेक्षिकता सिद्धान्त तथा भौतिकी के सभी सिद्धान्त अर्थहीन हो जाते हैं। कोई भी यह पूर्वानुमान नहीं लगा सकता कि उस विलक्षणता पर क्या होनेवाला है। जैसाकि पहले स्पष्ट किया जा चुका है, इसका अर्थ यह हुआ कि इस सिद्धान्त से महाविस्फोट तथा इससे भी पूर्व की घटनाओं को निस्सारित किया जा सकता है क्योंकि वे हमारे वर्तमान प्रेक्षण को प्रभावित नहीं कर सकतीं। दिक्-काल की एक परिसीमा होगी—तथा महाविस्फोट के साथ उत्पत्ति भी।

ऐसा प्रतीत होता है कि विज्ञान ने सिद्धान्तों के एक समुच्चय को अनावृत्त कर दिया है जो, अनिश्चितता के सिद्धान्त द्वारा निर्धारित सीमाओं के अन्दर ही, हमें यह बताते हैं कि समय के साथ-साथ ब्रह्माण्ड का विकास किस प्रकार होगा, बशर्ते हम यह जानते हों कि किसी निश्चित समय पर

इसकी स्थिति क्या थी। यह हो सकता है कि मूलतः ईश्वर ने ही यह विधान बनाया हो, परन्तु अब तो यह जान पड़ता है कि ईश्वर ने उस विधान के अनुसार ही ब्रह्माण्ड को अपने विकास-क्रम की यात्रा पर आगे बढ़ने के लिए छोड़ दिया है और अब वह इसमें किसी भी प्रकार का कोई हस्तक्षेप नहीं करता। परन्तु प्रश्न यह है कि उसने आद्य स्थिति या ब्रह्माण्ड के संरूपण को किस प्रकार चुना? काल की उत्पत्ति के समय 'सीमा-स्थितियाँ' क्या थीं?

इसका एक सम्भावित उत्तर यह हो सकता है कि ईश्वर ने ब्रह्माण्ड का आद्य संरूपण उन कारणों के चलते चुना जिन्हें हम समझने की आशा नहीं कर सकते। यह निश्चित रूप से किसी सर्वशक्तिमान की सामर्थ्य के अन्तर्गत रहा होगा, परन्तु यदि उसने इसकी उत्पत्ति इतने अबूझ ढंग से की थी, तब उसने यह व्यवस्था क्यों चुनी कि ब्रह्माण्ड को उन नियमों के अनुसार विकसित होने दिया जाए, जिन्हें हम समझ सकते हैं? विज्ञान का सम्पूर्ण इतिहास इस तथ्य का क्रमिक-बोध रहा है कि घटनाक्रम कभी भी मनमाने ढंग से घटित नहीं होते, बल्कि वे एक निश्चित अन्तःव्यवस्था को प्रतिबिम्बित करते हैं जो दिव्य प्रेरणा से अभिप्रेरित हो भी सकते हैं और नहीं भी। अतः यह मानना स्वाभाविक ही होगा कि यह व्यवस्था न केवल नियमों पर ही लागू होनी चाहिए, बल्कि दिक्-काल की परिसीमा पर विद्यमान उन स्थितियों पर भी लागू होनी चाहिए, जिनमें ब्रह्माण्ड की आद्य स्थिति का विशिष्ट ब्यौरा समाहित है। विभिन्न आद्य स्थितियोंवाले ब्रह्माण्ड के ऐसे बहुत सारे मॉडल हो सकते हैं जो सभी सिद्धान्तों का पालन करते हों। परन्तु कोई ऐसा सिद्धान्त अवश्य होना चाहिए जो हमारे ब्रह्माण्ड का चित्रण करने के लिए एक मॉडल के रूप में किसी एक आद्य स्थिति को चुनकर अलग कर ले।

ऐसी ही एक सम्भावना वह है जिसे अव्यवस्थित सीमा-स्थितियाँ (chaotic boundry conditions) कहा जाता है। ये स्थितियाँ निर्विवाद रूप से मानती हैं कि या तो ब्रह्माण्ड आकाशीय रूप में असीमित है या फिर यह कि असीमित रूप से कई सारे ब्रह्माण्ड हैं। अव्यवस्थित सीमा-स्थितियों में, महाविस्फोट के ठीक बाद किसी निर्दिष्ट संरूपण में आकाश के किसी विशेष क्षेत्र के पता लगाने की सम्भावना; किन्हीं अर्थों में, ठीक वैसी ही है जैसी किसी दूसरे संरूपण में इसके पता लगाने की सम्भावना यानी ब्रह्माण्ड की आद्य स्थिति को विशुद्ध मनमाने ढंग से चुना गया है। इसका अर्थ यह होगा कि ब्रह्माण्ड अपनी आद्य स्थिति में सम्भवतः बहुत ही अव्यवस्थित तथा अनियमित रहा होगा क्योंकि मसृण (smooth) तथा व्यवस्थित संरूपणों की अपेक्षा ब्रह्माण्ड के अव्यवस्थित तथा अस्त-व्यस्त संरूपण कहीं अधिक हैं। (यदि प्रत्येक संरूपण समान रूप से सम्भव है, तब यह सम्भावित है कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति एक अव्यवस्थित तथा अस्त-व्यस्त स्थिति में हुई हो, केवल इसलिए क्योंकि वे संख्या में और भी हैं।) यह पता लगाना कठिन है कि इतनी अव्यवस्थित आद्य परिस्थितियाँ किस प्रकार एक ऐसे ब्रह्माण्ड के अस्तित्व को सम्भव बना सकती थीं जो बड़े स्तर पर इतना निर्बाध एवं नियमित हो जैसाकि हमारा ब्रह्माण्ड आज है। यह अपेक्षा भी की गई होगी कि ऐसे मॉडल में घनत्व की असमानताओं ने, गामा किरण पृष्ठभूमि के प्रेक्षण द्वारा निर्धारित उच्च सीमा की अपेक्षा कहीं अधिक आद्य कृष्ण विवरों के निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया हो।

यदि ब्रह्माण्ड वास्तव में आकाशीय रूप में अनन्त है, या अनन्त रूप से कई ब्रह्माण्ड हैं, तब सम्भवतः कहीं-न-कहीं कुछ ऐसे विशाल क्षेत्र अवश्य होंगे जिनकी उत्पत्ति चिकने और समरूप ढंग से हुई थी। यह किसी सीमा तक टंकण मशीनों पर बन्दरों द्वारा की बोर्ड के बटन दबाने जैसा है—जो कुछ भी वे टाइप करेंगे उसका अधिकांश हिस्सा तो निरर्थक होगा, परन्तु पूर्णतः संयोगवश कभी-कभी वे शेक्सपियर का कोई सॉनेट (sonnet) भी टाइप कर सकते हैं। इसी प्रकार ब्रह्माण्ड के मामले में, क्या यह सम्भव हो सकता है कि हम एक ऐसे क्षेत्र में रह रहे हैं जो मात्र संयोगवश मसृण और समरूप हो गया हो? प्रथम दृष्टि में शायद यह बहुत असम्भव प्रतीत होगा, क्योंकि ऐसे मसृण और समरूप क्षेत्रों की अपेक्षा अव्यवस्थित तथा अनियमित क्षेत्रों की संख्या काफी अधिक होगी। बहरहाल, मान लीजिए कि केवल मसृण क्षेत्रों में ही मन्दाकिनियों तथा तारों का निर्माण हुआ था तथा इन्हीं क्षेत्रों में हमारे समान जटिल स्व-जनन करनेवाले जीवों के विकास

के लिए सही परिस्थितियाँ थीं, जो यह प्रश्न पूछने में सक्षम थे : ब्रह्माण्ड इतना चिकना या मसृण क्यों है? यह नृ-सिद्धान्त के अनुप्रयोग का एक उदाहरण है जिसकी व्याख्या इस प्रकार भी की जा सकती है—'हम ब्रह्माण्ड को अपने वास्तविक स्वरूप में इसलिए देख पाते हैं क्योंकि हमारा अस्तित्व है।'

नृ-सिद्धान्त के दो रूप हैं—क्षीण और सबल। क्षीण नृ-सिद्धान्त यह व्याख्या करता है कि ऐसे किसी ब्रह्माण्ड में जो दिक् और/या काल में अनन्त या विशाल है, प्रज्ञावान जीवन के विकास के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ केवल उन निश्चित क्षेत्रों में ही उपलब्ध हो सकेंगी जो दिक् और काल में सीमित हों। इसलिए इन क्षेत्रों में बुद्धिमान प्राणी यदि यह प्रेक्षण करते हैं कि ब्रह्माण्ड में उनका स्थानीय क्षेत्र उन शर्तों को पूरा करता है जो उनके अस्तित्व के लिए आवश्यक हैं, तब इससे उन्हें आश्चर्यचकित नहीं होना चाहिए। यह किसी सीमा तक ठीक ऐसा है जैसाकि धनी-मानी लोगों के पड़ोस में कोई ऐसा अमीर आदमी भी रहता हो जिसे कहीं गरीबी नजर न आए।

क्षीण नृ-सिद्धान्त के उपयोग का एक उदाहरण इस प्रश्न की व्याख्या है कि महाविस्फोट लगभग दस अरब वर्षों पूर्व क्यों घटित हुआ—बुद्धिमान प्राणियों को विकसित होने के लिए लगभग इतना लम्बा समय जरूरी था। जैसाकि पहले स्पष्ट किया जा चुका है, सर्वप्रथम तारों की प्रारम्भिक पीढ़ी का निर्माण हुआ। इन तारों ने मूल हाइड्रोजन तथा हीलियम के कुछ भाग को कार्बन तथा ऑक्सीजन जैसे तत्त्वों में बदल दिया, जिनसे हमारी रचना हुई है। फिर इन तारों के विस्फोट से अधिनव तारों की उत्पत्ति हुई, और उनके मलबे से दूसरे तारों तथा ग्रहों का निर्माण हुआ, हमारे सौर-परिवार की उत्पत्ति भी इसी प्रकार हुई जो लगभग पाँच अरब वर्ष पुराना है। पृथ्वी के अस्तित्व के पहले एक या दो अरब वर्षों तक पृथ्वी इतनी अधिक तप्त थी कि किसी भी प्रकार की जटिल वस्तु का विकास सम्भव नहीं था। शेष लगभग तीन अरब वर्ष जैविक विकास-क्रम की उस मन्द प्रक्रिया में व्यतीत हो गए, जिसने सबसे सादा जीवों से लेकर ऐसे जटिल बुद्धिमान प्राणियों तक का विकास कर दिया जो महाविस्फोट से अब तक के समय का मापन करने में सक्षम हैं।

क्षीण नृ-सिद्धान्तों की उपयोगिता या प्रामाणिकता पर शायद ही कुछ लोग तर्क-वितर्क करें। बहरहाल, कुछ लोग और भी आगे बढ़कर इस सिद्धान्त का एक कठोर रूप प्रस्तावित करते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार, या तो विभिन्न प्रकार के अनेक ब्रह्माण्डों का अस्तित्व है या फिर एक ही ब्रह्माण्ड में अनेक विभिन्न प्रकार के क्षेत्र हैं जिनमें प्रत्येक का अपना आद्य संरूपण है तथा शायद, विज्ञान के नियमों का अपना निजी समुच्चय भी। इन ब्रह्माण्डों में से अधिकांश में जटिल जीवों के विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ नहीं होंगी, हमारे जैसे केवल कुछ थोड़े से ब्रह्माण्डों में ही बुद्धिमान प्राणी विकसित होंगे और वे यह प्रश्न पूछेंगे : 'ब्रह्माण्ड का स्वरूप ऐसा ही क्यों है जैसाकि हम इसे देखते हैं?' इसका उत्तर बहुत सरल है : यदि ब्रह्माण्ड का स्वरूप भिन्न होता, तब हम यहाँ नहीं होते!

जैसाकि हम अब जानते हैं, विज्ञान के नियमों में इलेक्ट्रोन के विद्युत आवेश का परिमाण तथा इलेक्ट्रोन व प्रोटोन की संहति का अनुपात जैसी अनेक आधारभूत संख्याएँ या नियतांक समाविष्ट हैं। कम-से-कम इस समय सैद्धान्तिक तौर पर हम इन नियतांकों के मानों का पूर्वानुमान नहीं लगा सकते—हमें प्रेक्षण की सहायता से उनका पता लगाना पड़ता है। परन्तु एक दिन यह सम्भव हो सकता है कि हम एक ऐसा पूर्ण एकीकृत सिद्धान्त खोज लें जो उन सभी का पूर्वानुमान कर सके, परन्तु साथ ही यह सम्भावना भी है कि उन मानों में से कुछ या फिर सभी हर ब्रह्माण्ड के लिए या फिर एक ही ब्रह्माण्ड के अन्दर भिन्न-भिन्न हों। एक विलक्षण तथ्य यह है कि जीवन के विकास को सम्भव बनाने के लिए इन नियतांकों के मान बहुत ही उत्कृष्टता से समायोजित किए हुए प्रतीत होते हैं। उदाहरण के लिए, इलेक्ट्रोन का विद्युत आवेश यदि थोड़ा-सा भी भिन्न होता, तब या तो तारे हाइड्रोजन व हीलियम को जलाने में असमर्थ रहते, या फिर उनमें विस्फोट नहीं होता। निस्सन्देह, प्रज्ञावान जीवन के अन्य स्वरूपों की सम्भावनाएँ भी हो सकती हैं जिनके बारे में विज्ञान कथा-साहित्य के लेखकों ने भी अभी तक कल्पना न की हो तथा जिन्हें सूर्य जैसे

किसी तारे के प्रकाश की या उन अपेक्षाकृत भारी रासायनिक तत्त्वों की आवश्यकता न पड़ती हो जिनकी उत्पत्ति तारों में होती है और जब इन तारों में विस्फोट होता है तब ये पदार्थ वापस आकाश में फिंक जाते हैं। फिर भी इतना तो स्पष्ट लगता है कि प्रज्ञावान जीवन के किसी भी स्वरूप के विकास को सम्भव बनानेवाली संख्याओं या नियतांकों के मानों के अपेक्षाकृत कुछ थोड़े-से ही परिसर हैं। इन मानों के अधिकांश समुच्चय ऐसे ब्रह्माण्डों के विकास में सहायक होंगे जोकि, हालाँकि, सम्भवतया बहुत ही सुन्दर हो सकते हैं, फिर भी उस सौन्दर्य पर सुखद आश्चर्य प्रकट करने में समर्थ कोई प्राणी उनमें नहीं होगा। इस तथ्य को कोई या तो सृष्टि की उत्पत्ति के दिव्य प्रयोजन के प्रमाण के रूप में तथा विज्ञान के नियमों के विकल्प के रूप में अथवा सबल नृ-सिद्धान्त के समर्थन के रूप में स्वीकार कर सकता है।

ब्रह्माण्ड की प्रेक्षित स्थिति के स्पष्टीकरण के रूप में सबल नृ-सिद्धान्त के सम्बन्ध में बहुत-सी आपत्तियाँ उठाई जा सकती हैं। सर्वप्रथम, किस अर्थ में यह कहा जा सकता है कि इन सभी विभिन्न प्रकार के ब्रह्माण्डों का अस्तित्व है? यदि वे वास्तव में एक-दूसरे से पृथक हैं, तब जो कुछ भी किसी दूसरे ब्रह्माण्ड में घटित होता है उसका हमारे अपने ब्रह्माण्ड में कोई भी प्रेक्षणात्मक परिणाम प्रकट नहीं हो सकता। अतः हमें मितव्ययिता के सिद्धान्त का प्रयोग करना चाहिए तथा इन अवधारणाओं को सिद्धान्त से छाँट देना चाहिए। दूसरी तरफ, यदि वे एक ही ब्रह्माण्ड के विभिन्न क्षेत्र हैं, तब हर क्षेत्र में विज्ञान के नियमों को भी एक समान ही होना होगा नहीं तो कोई भी एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र तक निरन्तर नहीं चल सकता। इय मामले में विभिन्न क्षेत्रों के मध्य एकमात्र अन्तर उनके आद्य संरूपण का होगा और इसीलिए यह सबल नृ-सिद्धान्त क्षीण सिद्धान्त में परिणत हो जाएगा।

सबल नृ-सिद्धान्त के सम्बन्ध में दूसरी आपत्ति यह है कि यह विज्ञान के सम्पूर्ण इतिहास की धारा के विरुद्ध चलता है। हमने टॉलेमी तथा उनके पूर्ववर्तियों की भू-केन्द्रित ब्रह्माण्डिकी से प्रारम्भ करके तथा कॉपर्निकस और गैलीलियो की सूर्य-केन्द्रित ब्रह्माण्डिकी से होते हुए अपनी अवधारणाओं का विकास ब्रह्माण्ड के इस आधुनिक स्वरूप तक किया है जिसमें पृथ्वी एक मध्यम आकार का ग्रह है जो एक साधारण सर्पिल आकाशगंगा के बाह्य परिसर में स्थित एक साधारण तारे की परिक्रमा करती है तथा यह आकाशगंगा स्वयं प्रेक्षणीय ब्रह्माण्ड में लगभग दस खरब मन्दाकिनियों में से केवल एक है। लेकिन फिर भी सबल नृ-सिद्धान्त यह दावा करेगा कि इस सम्पूर्ण विशाल संरचना का अस्तित्व केवल हमारे वास्ते है। इस पर विश्वास करना बड़ा कठिन है। हमारा सौरमण्डल निश्चित रूप से हमारे अस्तित्व के लिए एक पूर्वापेक्षा है, और अपेक्षाकृत भारी तत्त्वों की उत्पत्ति करनेवाले तारों की एक पूर्ववर्ती पीढ़ी तक पहुँचने के लिए इस तर्क का विस्तार हमारी सम्पूर्ण आकाशगंगा तक किया जा सकता है। परन्तु उन समस्त दूसरी मन्दाकिनियों की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती, और न ही विशाल स्तर पर ब्रह्माण्ड के समरूप व समदैशिक होने की आवश्यकता है।

यदि यह प्रमाणित किया जा सके कि ब्रह्माण्ड के बहुत से विभिन्न प्रकार के आद्य संरूपणों का विकास एक ऐसे ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के लिए ही हुआ होगा जो ठीक वैसा ही होगा जैसाकि हम अपने चारों ओर देखते हैं, तब नृ-सिद्धान्त का कम-से-कम यह क्षीण रूप काफी प्रसन्नतावर्धक होगा। यदि वस्तुस्थिति यही है, तब उस ब्रह्माण्ड में, जो एक प्रकार की यादृच्छिक आद्य परिस्थितियों से विकसित हुआ, बहुत से ऐसे क्षेत्र भी होने चाहिए जो मसृण तथा समरूप हों और प्रज्ञावान जीवन के क्रमिक विकास के लिए अनुकूल हों। दूसरी ओर, यदि ब्रह्माण्ड की आद्य स्थिति अत्यन्त सावधानीपूर्वक किसी ऐसी संरचना के क्रमिक विकास के लिए चुनी जाती जैसाकि हमारा ब्रह्माण्ड है, तब सम्भवतः ब्रह्माण्ड में ऐसा कोई क्षेत्र नहीं होता, जिसमें जीवन प्रकट हो पाता। उपर्युक्त तप्त महाविस्फोट मॉडल में, प्रारम्भिक ब्रह्माण्ड में ऊष्मा का प्रवाह एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र तक होने के लिए पर्याप्त समय नहीं था। इसका अर्थ यह हुआ कि ब्रह्माण्ड की आय स्थिति में इसके प्रत्येक क्षेत्र में बिल्कुल एक-सा तापमान रहा होगा, तभी इस तथ्य को स्पष्ट किया जा सकता है कि अन्तरिक्ष पृष्ठभूमि विकिरण का तापमान प्रत्येक दिशा में, जहाँ हम

देखते हैं, एक समान है। विस्तार की आद्य गति भी बहुत परिशुद्धता से चुनी गई होगी, क्योंकि आज भी विस्तार की गति पुनः ध्वस्त होने से बचने के लिए आवश्यक क्रान्तिक दर के बहुत निकट है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि यदि तप्त महाविस्फोट मॉडल विपरीत दिशा में समय की उत्पत्ति तक सही था, तब ब्रह्माण्ड की आद्य स्थिति निश्चित रूप से बहुत सावधानीपूर्वक चुनी गई होगी। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति ठीक इसी प्रकार क्यों होनी चाहिए थी, इस रहस्य को किसी अन्य विधि से स्पष्ट करना बहुत कठिन होगा, सिवाय इसके कि यह ईश्वर का कृत्य था जो हमारे जैसे प्राणियों की सृष्टि करना चाहता था।

ब्रह्माण्ड के एक ऐसे मॉडल की खोज के प्रयास में, जिसमें अनेक भिन्न-भिन्न प्रकार के आद्य संरूपण लगभग इस वर्तमान ब्रह्माण्ड के समान ही क्रमिक रूप से विकसित हो सकें, मैसाचुसेट्स प्रौद्योगिकी संस्थान के एक वैज्ञानिक एलन गथ ने यह सुझाव दिया कि प्रारम्भिक ब्रह्माण्ड सम्भवतः बहुत ही तीव्र विस्तार के एक काल से गुजरा होगा। इस विस्तार को 'स्फीतिकारी' कहा जाता है अर्थात् एक निश्चित समय पर ब्रह्माण्ड का विस्तार वर्द्धमान दर (increasing rate) से हुआ न कि ह्रासमान दर (decreasing rate) से जैसेकि इसका अब विस्तार हो रहा है। गथ के अनुसार ब्रह्माण्ड के अर्द्धव्यास में एक सेकिण्ड के अत्यल्प अश में ही 10^{30} (1 के बाद 30 शून्य) गुना वृद्धि हो गई थी।

गथ का यह सुझाव था कि महाविस्फोट से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति एक अत्यन्त तप्त, परन्तु थोड़ी अव्यवस्थित दशा में हुई। इन उच्च तापमानों का अर्थ यह होगा कि ब्रह्माण्ड में कण बहुत तीव्र वेग से गतिमान हो रहे होंगे तथा वे उच्च ऊर्जायुक्त होंगे। जैसाकि हम पहले चर्चा कर चुके हैं, कोई यह अपेक्षा करेगा कि इतने उच्च तापमानों पर दृढ़ तथा क्षीण नाभिकीय बल और विद्युत चुम्बकीय बल, सभी एक अकेले बल में एकीकृत हो जाएँगे। ज्यों-ज्यों ब्रह्माण्ड का विस्तार होगा, यह ठण्डा होता जाएगा तथा कणों की ऊर्जा का ह्रास हो जाएगा। अन्ततः एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाएगी, जिसे प्रावस्था संक्रमण (phase trasition) कहते हैं जिससे बलों के बीच सममिति टूट जाएगी : दृढ़ नाभिकीय बल क्षीण बलों से तथा विद्युत चुम्बकीय बलों से भिन्न हो जाएँगे। प्रावस्था संक्रमण का एक सामान्य उदाहरण ठण्डा करने पर पानी का जम जाना है। तरल जल सममित होता है, प्रत्येक बिन्दु तथा प्रत्येक दिशा में एक समान। बहरहाल, जब बर्फ के रवे या क्रिस्टल निर्मित होंगे, तब उनकी कुछ निश्चित स्थितियाँ होंगी तथा वे किसी दिशा में पंक्तिबद्ध होंगे। यह स्थिति जल की सममिति को भंग कर देती है।

जल के मामले में, यदि प्रक्रिया सावधानीपूर्वक संचालित की जाए तो जल को अतिशीतित किया जा सकता है, अर्थात् बिना बर्फ जमे जल का तापमान हिमांक (0°C) से भी कम किया जा सकता है। गथ का यह सुझाव था कि सम्भवतः ब्रह्माण्ड ने भी इसी भाँति आचरण किया होगा : बलों के बीच सममिति को बिना भंग किए ही ब्रह्माण्ड का तापमान सम्भवतः क्रान्तिक मान से नीचे आ गया होगा। यदि ऐसा हुआ होगा तो ब्रह्माण्ड एक अस्थिर अवस्था में रहा होगा तथा सममिति भंग होने की स्थिति की अपेक्षा इसमें उस स्थिति में अधिक ऊर्जा रही होगी। इस विशेष अतिरिक्त ऊर्जा को एक प्रति-गुरुत्वीय प्रभाव से युक्त सिद्ध किया जा सकता है : हमने ठीक उस ब्रह्माण्डिकीय स्थिरांक के समान कार्य किया होगा, जोकि आइंस्टाइन ने उस समय सामान्य आपेक्षिकता सिद्धान्त में समाविष्ट किया था, जब वह ब्रह्माण्ड का एक स्थिर मॉडल बनाने का प्रयास कर रहे थे। क्योंकि ब्रह्माण्ड का पहले से ही ठीक इसी प्रकार से विस्तार हो रहा होगा जिस प्रकार की परिकल्पना तप्त महाविस्फोट मॉडल में की गई थी, इसलिए इस ब्रह्माण्डिकीय स्थिरांक के प्रतिकर्षी प्रभाव ने ब्रह्माण्ड को एक सतत वर्द्धमान दर से विस्तारित करना आरम्भ कर दिया होगा। उन क्षेत्रों में भी, जहाँ सामान्य औसत से अधिक पदार्थ-कण थे, पदार्थ का गुरुत्व-बल प्रभावी ब्रह्माण्डिकीय स्थिरांक के प्रतिकर्षण से दब गया होगा। इस तरह ये क्षेत्र भी एक त्वरणशील स्फीतिकारी ढंग से फैले होंगे। ज्यों-ज्यों ये क्षेत्र विस्तृत हुए होंगे और पदार्थ-कण अपेक्षाकृत दूर होते गए होंगे, एक ऐसा विस्तृत होता हुआ ब्रह्माण्ड शेष बचा होगा जिसमें पदार्थ-कण मुश्किल से ही विद्यमान होंगे तथा यह फिर भी अतिशीतित अवस्था में होगा। ब्रह्माण्ड में कोई

भी अनियमितता बड़ी सरलता से इसके विस्तार द्वारा ठीक उसी प्रकार से दूर कर दी गई होगी जैसे गुब्बारे की सिलवटें उस समय दूर हो जाती हैं, जब आप उसे फुलाते हैं। इस प्रकार, ब्रह्माण्ड के वर्तमान चिकने और एक समान स्वरूप का क्रमिक विकास विभिन्न प्रकार की अनेक असमान आद्य परिस्थितियों से हुआ हो सकता है।

एक ऐसे ब्रह्माण्ड में, जिसमें विस्तार की गति पदार्थ के गुरुत्व-बल से धीमी नहीं की गई थी, बल्कि ब्रह्माण्डिकीय स्थिरांक द्वारा तेज की गई थी, इसकी प्रारम्भिक अवस्था में प्रकाश को एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में यात्रा करने के लिए पर्याप्त समय रहा होगा। यह पहले उठाई गई इस समस्या का समाधान प्रस्तुत कर सकता था कि प्रारम्भिक ब्रह्माण्ड में विभिन्न क्षेत्रों की विशेषताएँ एक समान क्यों थीं? इसके अतिरिक्त, ब्रह्माण्ड की विस्तारण दर स्वतः ही ब्रह्माण्ड के ऊर्जा-घनत्व द्वारा निर्धारित क्रान्तिक दर के बहुत निकट आ जाएगी। इस प्रकार बिना यह माने कि ब्रह्माण्ड के विस्तार की आद्य दर को बहुत सावधानीपूर्वक चुना गया था, यह तथ्य इस पहेली का स्पष्टीकरण कर सकता है कि विस्तारण दर अब भी क्रान्तिक दर के इतने निकट क्यों है?

ब्रह्माण्ड की फैलाव की अवधारणा यह भी स्पष्ट कर सकती थी कि ब्रह्माण्ड में पदार्थ की इतनी अधिक मात्रा क्यों है? ब्रह्माण्ड के जिस क्षेत्र का हम प्रेक्षण कर सकते हैं उसमें लगभग 10^{85} (1 के बाद 85 शून्य) कण हैं। वे सब कहाँ से आए? क्वाण्टम सिद्धान्त में इसका उत्तर यह है कि कण/प्रतिकण के जोड़ों के रूप में ऊर्जा से कण उत्पन्न किए जा सकते हैं। परन्तु इससे फिर यह प्रश्न उठता है कि ऊर्जा कहाँ से आई? इसका उत्तर यह है कि ब्रह्माण्ड की सम्पूर्ण ऊर्जा ठीक शून्य के बराबर है। ब्रह्माण्ड में मौजूद पदार्थ धनात्मक ऊर्जा से बना हुआ है। बहरहाल, समस्त पदार्थ स्वयं को गुरुत्व-बल से आकृष्ट करता है। समान द्रव्यराशि वाले थोड़े दूरस्थ दो पिण्डों की अपेक्षा समीप स्थित उन्हीं दोनों पिण्डों में कम ऊर्जा होती है, क्योंकि उन्हें आकृष्ट करनेवाले गुरुत्व-बल के विरुद्ध उन्हें पृथक करने के लिए आपको ऊर्जा व्यय करनी पड़ती है। इस प्रकार, एक अर्थ में, गुरुत्व-क्षेत्र में ऋणात्मक ऊर्जा होती है। एक ऐसे ब्रह्माण्ड के मामले में जो आकाश में लगभग एक समान है, यह सिद्ध किया जा सकता है कि यह ऋणात्मक गुरुत्व-ऊर्जा पदार्थ की धनात्मक ऊर्जा को पूर्णतः निरस्त कर देती है। अतः ब्रह्माण्ड की सम्पूर्ण ऊर्जा शून्य है।

अब, दो शून्यों का योग भी शून्य ही होता है। इस प्रकार, ऊर्जा संरक्षण के नियम का उल्लंघन किए बिना ही, ब्रह्माण्ड धनात्मक पदार्थ-ऊर्जा के परिमाण को तथा साथ ही ऋणात्मक गुरुत्वीय ऊर्जा को भी दोगुना कर सकता है। ऐसा ब्रह्माण्ड के सामान्य विस्तार की स्थिति में घटित नहीं होता है, जिसमें पदार्थ-ऊर्जा का घनत्व ब्रह्माण्ड के विस्तार के साथ-साथ कम होता जाता है। बहरहाल, स्फीतिकारी विस्तार में ऐसा घटित होता है, क्योंकि अतिशीतित अवस्था का ऊर्जा घनत्व स्थिर रहता है, जबकि ब्रह्माण्ड का विस्तार होता रहता है : जब ब्रह्माण्ड आकार में दोगुना हो जाता है, तब धनात्मक पदार्थ-ऊर्जा व ऋणात्मक गुरुत्वीय ऊर्जा, दोनों ही दोगुनी हो जाती हैं, इस तरीके से सम्पूर्ण ऊर्जा शून्य ही रहती है। स्फीतिकारी अवस्था के दौरान, ब्रह्माण्ड बहुत विशाल परिमाण में अपने आकार में वृद्धि करता है। अतः कणों की उत्पत्ति के लिए उपलब्ध ऊर्जा का कुल परिमाण बहुत विशाल हो जाता है। जैसाकि गथ ने टिप्पणी की है : 'कहा जाता है कि मुफ्त के भोजन जैसी कोई चीज नहीं होती। परन्तु ब्रह्माण्ड तो जैसे एक तरह का परम निःशुल्क भोजन है।'

आज ब्रह्माण्ड का विस्तार स्फीतिकारी ढंग से नहीं हो रहा है। अतः एक ही क्रियाविधि (mechanism) होनी आवश्यक है जो बहुत ही विशाल व प्रभावशाली ब्रह्माण्डिकीय स्थिरांक को हटा दे तथा इस प्रकार से, बढ़ती हुई विस्तारण दर को गुरुत्व-बल द्वारा मन्द की गई दर में परिवर्तित कर दे जैसीकि ब्रह्माण्ड की वर्तमान स्थिति है। स्फीतिकारी विस्तार में कोई सम्भवतः यह अपेक्षा करेगा कि अन्ततः बलों के बीच की सममिति ठीक उसी प्रकार भंग हो जाएगी जैसेकि अतिशीतित जल अन्त में जम जाता है। उस दशा में, उस अखण्डित सममित अवस्था की अतिरिक्त ऊर्जा मुक्त हो जाएगी तथा ब्रह्माण्ड को पुनः उस तापमान तक गर्म कर देगी जो बलों के बीच सममिति के लिए आवश्यक क्रान्तिक तापमान से कुछ कम होगा। फिर तप्त महाविस्फोट

मॉडल के समान ब्रह्माण्ड का विस्तार भी होता रहेगा तथा वह ठण्डा भी होता रहेगा, परन्तु अब इस प्रश्न का एक उत्तर उपलब्ध होगा कि ब्रह्माण्ड का विस्तार ठीक क्रान्तिक दर पर ही क्यों हो रहा है तथा विभिन्न क्षेत्रों का तापमान एक समान क्यों है?

गथ के मूल प्रस्ताव में यह माना गया था कि प्रावस्था संक्रमण, बहुत ठण्डे जल में रवे या क्रिस्टलों के प्रकट होने के समान नहीं, बल्कि अचानक घटित होगी। अवधारणा यह थी कि पुरानी अवस्था में ही भंग सममिति की नई अवस्था के 'बुलबुले' उबलते हुए पानी से घिरे हुए भाप के बुलबुलों की तरह ही निर्मित हो जाएँगे। बुलबुलों के बारे में यह माना गया कि वे उस समय तक विस्तारित होते रहेंगे तथा एक-दूसरे से मिलते रहेंगे जब तक कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एक नई अवस्था में नहीं आ जाता। जैसाकि मैंने तथा कई अन्य दूसरे वैज्ञानिकों ने ध्यान आकर्षित किया था, परेशानी यह थी कि ब्रह्माण्ड का विस्तार इतनी तीव्र गति से हो रहा था कि यदि बुलबुलों का विकास प्रकाश के वेग पर भी हो रहा होता तब भी वे एक-दूसरे से दूर भाग रहे होते और इसलिए वे आपस में मिलकर एकाकार नहीं हो सकते थे। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की स्थिति बहुत ही असमान (non-uniform) होती जिसमें कुछ क्षेत्रों में विभिन्न बलों के मध्य अब भी सममिति होती। ब्रह्माण्ड का ऐसा मॉडल हमारे द्वारा प्रेक्षित किए जानेवाले मॉडल के अनुरूप नहीं होता।

सन् 1981 के अक्टूबर माह में, मैं क्वाण्टम गुरुत्व पर एक सम्मेलन में भाग लेने के लिए मास्को गया था। सम्मेलन के बाद मैंने स्टर्नबर्ग खगोलीय संस्थान में स्फीतिकारी मॉडल तथा इसकी समस्याओं पर एक विचार-गोष्ठी को सम्बोधित किया। इससे पहले, मेरे स्थान पर मेरा व्याख्यान पढ़ने के लिए मुझे किसी व्यक्ति की सहायता मिल गई थी, क्योंकि अधिकांश लोग मेरी आवाज नहीं समझ सकते थे। लेकिन इस विचार-गोष्ठी की तैयारी के लिए मुझे कोई समय नहीं मिला, इसलिए मैंने यह सेमिनार स्वयं ही सम्बोधित किया, बस अपने शब्दों को दोहराने के लिए मैंने अपने एक स्नातक विद्यार्थी की सहायता ली। यह युक्ति काम कर गई तथा मैंने अपने श्रोताओं से और गहरा सम्बन्ध स्थापित कर लिया। श्रोताओं में मास्को के लेबदेव संस्थान (Lebedev Institute) से एक युवा रूसी वैज्ञानिक आन्द्रे लिन्दे (Andrei Linde) भी थे। उन्होंने कहा कि यदि बुलबुले इतने बड़े हों कि ब्रह्माण्ड का हमारा क्षेत्र एक अकेले बुलबुले के अन्दर समा जाए, तो बुलबुले के विस्तारित होकर परस्पर न मिलने की कठिनाई से बचा जा सकता है। इस अवधारणा के कार्य करने के लिए, सममिति से खण्डित सममिति में परिवर्तन बुलबुले के अन्दर बहुत धीमी गति से हुआ होगा, लेकिन महाएकीकृत सिद्धान्तों के अनुसार यह बिल्कुल सम्भव है। धीमी गति से सममिति के खण्डित होने का लिन्दे का विचार बहुत अच्छा था, परन्तु बाद में मैंने यह अनुभव किया कि उनके बुलबुलों को इस समय ब्रह्माण्ड के आकार से भी काफी बड़ा होना पड़ेगा! मैंने यह सुझाया कि इसके स्थान पर, सममिति केवल बुलबुलों के अन्दर ही नहीं, बल्कि प्रत्येक क्षेत्र में एक साथ खण्डित हुई होगी। इससे ब्रह्माण्ड के एक समान होने का मार्ग प्रशस्त हो जाएगा, जैसाकि हम इसे देखते हैं। मैं इस विचार से बहुत उत्तेजित था। मैंने अपने एक विद्यार्थी इयान मॉस से भी इसकी चर्चा की। लिन्दे के मित्र के रूप में, बहरहाल, मैं उस समय थोड़ा-सा लज्जित भी हुआ, जब एक विज्ञान-पत्रिका द्वारा बाद में मुझे उसका शोध-निबन्ध भेजा गया और यह पूछा गया कि क्या यह प्रकाशन के योग्य है! मैंने उत्तर दिया कि इस शोध-पत्र में प्रस्तावित बुलबुलों में केवल यही दोष है कि वे ब्रह्माण्ड से भी बड़े हैं, परन्तु धीमी गति से सममिति के खण्डित होने का मूल विचार बहुत अच्छा था। मैंने उस शोध-निबन्ध को यथावत् प्रकाशित किए जाने की सिफारिश भेज दी, क्योंकि लिन्दे को इसे संशोधित करने में कई माह लग जाते, क्योंकि उन दिनों उनके द्वारा पश्चिम को भेजी गई हर सामग्री को सोवियत सेंसर व्यवस्था से होकर गुजरना पड़ता और यह व्यवस्था वैज्ञानिक शोध-निबधों के मामले में न तो बहुत सक्षम थी और न ही बहुत द्रुत। इसके स्थान पर, मैंने उसी पत्रिका में इयान मॉस के साथ एक छोटा-सा निबन्ध लिखा जिसमें हमने बुलबुलों सम्बन्धी इस समस्या पर ध्यान आकर्षित किया और यह बताया कि इसका समाधान किस प्रकार हो सकता है।

अगले दिन मैं मास्को से वापस चला आया। मैंने फिलाडेल्फिया के लिए प्रस्थान किया,

जहाँ मुझे फ्रैंकलिन इन्स्टीट्यूट से एक पदक प्राप्त करना था। मेरी सचिव जूडी फेला ने अपने आकर्षक व्यक्तित्व से प्रभावित करके ब्रिटिश एयरवेज को इस बात के लिए राजी कर लिया कि वे अपने प्रचार के रूप में मुझे तथा जूडी को अपने एक कॉन्कॉर्ड वायुयान में निःशुल्क स्थान प्रदान कर दें। बहरहाल, भारी वर्षा के कारण मुझे हवाई अड्डे जाते समय मार्ग में ही रुकना पड़ा और हवाई जहाज छूट गया। फिर भी, मैं अन्त में फिलाडेल्फिया पहुँच गया तथा अपना पदक प्राप्त किया। तब मुझसे फिलाडेल्फिया में ड्रेक्सेल विश्वविद्यालय में स्फीतिकारी ब्रह्माण्ड पर एक सेमिनार को सम्बोधित करने के लिए कहा गया। मैंने उस विचार-गोष्ठी में स्फीतिकारी यानी फैलते ब्रह्माण्ड की समस्या पर वही व्याख्यान दिया जो मास्को में दिया था।

कुछ महीने बाद लिन्दे के विचारों के सदृश ही एक विचार पेनसिल्वेनिया विश्वविद्यालय के पॉल स्टीनहार्ट (Paul Steinhardt) तथा एन्ड्रियास अलब्रेख्त (Andreas Albrecht) द्वारा रखा गया। धीमी गति से सममिति के खण्डित होने की अवधारणा पर आधारित 'नए स्फीतिकारी मॉडल' के लिए उन्हें अब लिन्दे के साथ संयुक्त श्रेय दिया जाता है। (बुलबुलों के निर्माण के साथ ही सममिति के तीव्र गति से खण्डित होने का पुराना स्फीतिकारी मॉडल गथ का मूल सुझाव था।)

नया स्फीतिकारी मॉडल इस प्रश्न को सुलझाने का एक अच्छा प्रयास था कि ब्रह्माण्ड का स्वरूप ऐसा ही क्यों है। बहरहाल, मैंने तथा कई दूसरे लोगों ने यह सिद्ध कर दिया था कि कम-से-कम अपने मूल स्वरूप में, यह मॉडल सूक्ष्म तरंग पृष्ठभूमि विकिरण के तापमान में प्रेक्षण के परिणामों से काफी अधिक असमानताओं का पूर्वानुमान प्रस्तुत करता है। बाद के शोध-कार्य ने भी यह सन्देह प्रकट किया है कि क्या अति प्रारम्भिक ब्रह्माण्ड में इस तरह की आवश्यक प्रावस्था संक्रमण हो सकती थी। मेरी व्यक्तिगत राय में, नया स्फीतिकारी मॉडल एक वैज्ञानिक सिद्धान्त के रूप में अब मर चुका है, हालाँकि ऐसा लगता है कि बहुत सारे लोगों ने इसकी समाप्ति के बारे में नहीं सुना है तथा वे इस पर अब भी अपने शोध-पत्र लिख रहे हैं, मानो यह व्यवहार्य हो। सन् 1983 में लिन्दे द्वारा 'अव्यवस्थित स्फीतिकारी मॉडल' के नाम से एक बेहतर मॉडल प्रस्तुत किया गया। इस मॉडल में कोई प्रावस्था संक्रमण या अतिशीतलन नहीं है। इसके स्थान पर, 0 प्रचक्रण या स्पिन (spin) का एक क्षेत्र है, जिसमें, क्वाण्टम घट-बढ़ों के कारण, प्रारम्भिक ब्रह्माण्ड के कुछ क्षेत्रों में बहुत अधिक मान होंगे। उन क्षेत्रों में 0 स्पिन के क्षेत्र की ऊर्जा एक ब्रह्माण्डिकीय स्थिरांक की तरह व्यवहार करेगी। इसका प्रतिकर्षी गुरुत्वीय प्रभाव होगा तथा इस तरह यह उन क्षेत्रों को एक स्फीतिकारी ढंग से विस्तारित कर देगा। ज्यों-ज्यों ये क्षेत्र विस्तारित होते जाएँगे, इनके अन्दर के 0 स्पिन क्षेत्र की ऊर्जा धीरे-धीरे उस समय तक घटती जाएगी जब तक कि यह स्फीतिकारी विस्तार तप्त महाविस्फोट मॉडल में परिकल्पित विस्तार में परिवर्तित न हो जाए। इनमें से एक क्षेत्र ऐसे स्वरूप में विकसित हो जाएगा जिसे प्रेक्षणात्मक ब्रह्माण्ड के रूप में हम अब देखते हैं। इस मॉडल में पूर्ववर्ती स्फीतिकारी मॉडलों के सभी लाभ निहित हैं, परन्तु यह संदिग्ध प्रावस्था संक्रमण पर निर्भर नहीं करता और इसके अतिरिक्त यह सूक्ष्म तरंग पृष्ठभूमि के तापमान में उन घट-बढ़ों को एक तर्कसंगत मान या परिमाण दे सकता है जो प्रेक्षण के अनुरूप हैं।

स्फीतिकारी मॉडलों पर किए गए इस शोध-कार्य ने यह दिखा दिया कि ब्रह्माण्ड की वर्तमान अवस्था की उत्पत्ति विभिन्न प्रकार के अनेक आद्य संरूपणों में सम्भव हो सकती थी। यह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है क्योंकि इससे यह सिद्ध होता है कि ब्रह्माण्ड के उस भाग की आद्य स्थिति, जिसमें हम रहते हैं, बहुत सावधानीपूर्वक नहीं चुनी गई थी। अतः इस प्रश्न को स्पष्ट करने के लिए कि ब्रह्माण्ड का स्वरूप ऐसा ही क्यों दिखाई देता है, यदि हम चाहें तो क्षीण नृ-सिद्धान्त का उपयोग कर सकते हैं। बहरहाल, ऐसी स्थिति नहीं हो सकती कि हर आद्य संरूपण एक ऐसे ब्रह्माण्ड के विकास का मार्ग प्रशस्त कर दे जैसाकि हम अपने चारों ओर देखते हैं। वर्तमान समय में ब्रह्माण्ड की एक बहुत ही भिन्न प्रकार की, यूँ कहिए, एक बहुत ही आकारविहीन पिण्डोंवाली और अनियमित अवस्था मानकर इस तथ्य को दिखाया जा सकता है। प्रारम्भिक समय में ब्रह्माण्ड के संरूपण को निर्धारित करने के उद्देश्य से, विज्ञान के नियमों का उपयोग गहन अतीत में ब्रह्माण्ड को क्रमिक रूप से विकसित होने के लिए किया जा सकता था। चिरसम्मत सामान्य

आपेक्षिकता सिद्धान्त के विलक्षणता प्रमेयों के अनुसार, तब भी अत्यंत सघनता वाले महाविस्फोट विलक्षणता की स्थिति रही होगी। विज्ञान के नियमों के अनुसार यदि आप ऐसे ब्रह्माण्ड को काल में आगे की दिशा में विकसित करें तो आप उसी आकारविहीन पिण्डोंवाली और अनियमित स्थिति पर आकर रुक जाएँगे जहाँ से आपने प्रारम्भ किया था। अतः ऐसे आद्य संरूपण अवश्य रहे होंगे, जिन्होंने किसी ऐसे ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति नहीं की होगी जैसाकि उसे हम आज देखते हैं। इसलिए स्फीतिकारी मॉडल भी हमें यह नहीं बताता कि आद्य संरूपण ऐसा क्यों नहीं था, जो हमारे वर्तमान प्रेक्षणात्मक ब्रह्माण्ड से बिल्कुल भिन्न किसी अन्य स्वरूप की उत्पत्ति कर सके। क्या इसके स्पष्टीकरण के लिए हमें नृ-सिद्धान्त की ओर मुड़ना चाहिए? क्या यह सब केवल दैविक सुयोग था? यह तो एक अत्यन्त निराशा-भरी स्थिति होगी जो ब्रह्माण्ड की अन्तर्निहित व्यवस्था को समझने की हमारी समस्त आशाओं पर पानी फेर देगी।

यह पूर्वानुमान लगाने के लिए कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति किस प्रकार होनी चाहिए थी, उन नियमों की आवश्यकता पड़ती है, जो काल की उत्पत्ति के बिन्दु पर प्रभावशाली रहे हों। यदि चिरसम्मत सामान्य आपेक्षिकता का सिद्धान्त सही था, तो विलक्षणता प्रमेय (singularity theorems), जिन्हें रोजर पेनरोज और मैंने सिद्ध किया था, यह दिखाते हैं कि समय की उत्पत्ति अनन्त घनत्व तथा दिक्-काल की अनन्त वक्रता वाले बिन्दु पर रही होगी। विज्ञान के सभी ज्ञात नियम इस बिन्दु पर विफल हो जाएँगे। कोई सम्भवतः यह मान सकता है कि विलक्षणता के बिन्दुओं पर विज्ञान के नए नियम प्रभावशाली थे, परन्तु इस दुर्व्यवस्थापूर्ण स्थिति में ऐसे नियमों का निरूपण करना भी बहुत कठिन होगा, और हमें अपने प्रेक्षणों से भी ऐसा कोई मार्गदर्शन नहीं मिलेगा कि वे नियम क्या रहे होंगे। बहरहाल, विलक्षणता प्रमेय वस्तुतः जो कुछ भी संकेत करते हैं, वह यह है कि गुरुत्वीय क्षेत्र इतना प्रबल हो जाता है कि क्वाण्टम गुरुत्वाकर्षी प्रभाव महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं : चिरसम्मत सिद्धान्त अब ब्रह्माण्ड का अच्छा वर्णन करने में सक्षम नहीं हैं। इस कारण ब्रह्माण्ड की बहुत ही प्रारम्भिक अवस्थाओं का विवेचन करने के लिए गुरुत्व के क्वाण्टम सिद्धान्त का उपयोग करना पड़ेगा। जैसाकि हम देखेंगे, क्वाण्टम सिद्धान्त में यह सम्भव है कि विज्ञान के साधारण नियम काल की उत्पत्ति के बिन्दु सहित हर जगह प्रभावशाली रहेंगे : विलक्षणताओं के लिए नए नियमों की अवधारणा करना आवश्यक नहीं है, क्योंकि क्वाण्टम सिद्धान्त में किसी भी प्रकार की विलक्षणताओं की आवश्यकता नहीं है।

हमारे पास अभी तक ऐसा एक पूर्ण तथा संगत सिद्धान्त नहीं है जो गुरुत्व-बल तथा क्वाण्टम यान्त्रिकी का मिलान कर दे। बहरहाल, हम कुछ अभिलक्षणों के प्रति पूर्णतः आश्वस्त हैं, जोकि ऐसे एकीकृत सिद्धान्त में होने चाहिए। एक तो यह है कि इतिवृत्तों के इस योगफल को इकाई के रूप में प्रयोग करते हुए क्वाण्टम सिद्धान्त को निरूपित करने के लिए फाइनमैन के प्रस्ताव को समाविष्ट करना चाहिए। उसके अनुसार किसी कण का केवल एक ही इतिवृत्त या दिक्-काल में एक ही पथ नहीं होता, जैसाकि चिरसम्मत सिद्धान्त में इसके सम्बन्ध में परिकल्पना है। इसके स्थान पर, यह माना जाता है कि दिक्-काल में कण हर सम्भव पथ का अनुसरण कर सकता है, और इन इतिवृत्तों (दिक्-काल में पथगमन) में से हर एक के साथ कुछ युगल संख्याएँ जुड़ी हुई हैं; पहली, तरंग के आकार का प्रतिनिधित्व करती है तथा दूसरी, आवर्तन (cycle) में इसकी स्थिति (इसकी कला) का प्रतिनिधित्व करती है। किसी विशेष बिनु से होकर गुजरने की किसी कण की प्रायिकता उस बिन्दु से गुजरनेवाले हर सम्भव इतिवृत्त से जुड़ी तरंगों को जोड़कर प्राप्त कर ली जाती है। जब कोई वास्तव में इन प्रश्नों को हल करने का प्रयास करता है, तो उसे गम्भीर तकनीकी समस्याओं से गुजरना पड़ता है। हमें उन कणीय इतिवृत्तों के लिए तरंगों को जोड़ लेना चाहिए जो उस 'वास्तविक' काल में नहीं होते हैं, जिसका आप और मैं अनुभव करते हैं, बल्कि वे काल्पनिक काल में घटित होते हैं। काल्पनिक काल सुनने में एक विज्ञान-कथा जैसा लग सकता है, परन्तु वास्तव में यह एक सुनिश्चित गणितीय संकल्पना है। यदि हम कोई साधारण (या 'वास्तविक') संख्या लें और इसे उसी संख्या से गुणा कर दें तो परिणाम के रूप में एक धनात्मक संख्या (positive number) हमें प्राप्त होती है। (उदाहरण के लिए $2 \times 2 = 4$ होता

है, परन्तु ऐसा ही -2×-2 होता है।) बहरहाल, कुछ विशेष संख्याएँ भी होती हैं (जिन्हें काल्पनिक कहा जाता है) जो, जब उन्हीं संख्याओं से गुणा की जाएँ तो ऋणात्मक संख्याएँ (negative number) देती हैं [i (=INA) नाम की राशि को जब इसी से गुणा करें तो -1 प्राप्त होता है तथा 2i को इसी संख्या द्वारा गुणा करने पर -4 आता है, इत्यादि]।

वास्तविक तथा काल्पनिक संख्याओं को कोई निम्नलिखित तरीके से चित्रित कर सकता है : वास्तविक संख्याएँ बाएँ से दाईं ओर जानेवाली एक ऐसी रेखा द्वारा बताई जा सकती हैं, जिसमें मध्य में शून्य हो, बाईं तरफ -1, -2 आदि के समान ऋणात्मक संख्याएँ हों, तथा दाईं तरफ 1, 2 आदि धनात्मक संख्याएँ हों। इसके बाद काल्पनिक संख्याएँ पृष्ठ के ऊपर और नीचे जानेवाली किसी रेखा द्वारा बताई जा सकती हैं, जिसमें मध्य बिन्दु के ऊपर i, 2i इत्यादि हो तथा मध्य बिन्दु से नीचे -i, -2i इत्यादि हो। इस तरह काल्पनिक संख्याएँ एक अर्थ में साधारण वास्तविक संख्याओं के समकोणों पर स्थित संख्याएँ होती हैं।

फाइनमैन के इतिवृत्तों के योगफल की तकनीकी कठिनाइयों से बचने के लिए काल्पनिक काल का उपयोग किया जाना चाहिए। अर्थात् गणना के उद्देश्य के लिए, वास्तविक संख्याओं का उपयोग करके नहीं, बल्कि काल्पनिक संख्याओं का उपयोग करके काल का मापन किया जाना चाहिए। इसका दिक्-काल पर रोचक प्रभाव पड़ता है : दिक् और काल के बीच का अन्तर पूर्णतः विलुप्त हो जाता है। वह दिक्-काल जिसमें घटनाओं के काल-निर्देशांक का काल्पनिक मान होता है, प्राचीन यूनानी यूक्लिड के नाम पर यूक्लीडियन (Euclidean) कहा जाता है। यूक्लिड ने दो विमाओंवाले पृष्ठ-तल की ज्यामिति के अध्ययन की आधारशिला रखी थी जिसे हम अब यूक्लीडियन दिक्-काल कहते हैं, यह बिल्कुल वैसा ही है, सिवाय इसके कि इसमें दो के स्थान पर चार विमाएँ होती हैं। यूक्लीडियन दिक्-काल में काल दिशा (time direction) तथा आकाश में दिशाओं (directions in space) के मध्य कोई अन्तर नहीं है। दूसरी ओर वास्तविक दिक्-काल में, जिसमें घटनाएँ काल-निर्देशांक के साधारण, वास्तविक मानों (values) द्वारा चिन्हित की जाती हैं, काल-दिशा तथा आकाश-दिशा के मध्य अन्तर को बताना सरल है—काल-दिशा सभी बिन्दुओं पर प्रकाश-शंकु के अन्दर निहित होती है, तथा आकाश-दिशाएँ प्रकाश-शंकु के बाहर निहित होती हैं। किसी भी स्थिति में जहाँ तक सामान्य क्वाण्टम-यान्त्रिकी का सम्बन्ध है, हम काल्पनिक काल तथा यूक्लीडियन दिक्-काल के अपने प्रयोग को वास्तविक आकाश-काल के बारे में उत्तरों की गणना करने की मात्र एक गणितीय युक्ति के रूप में मान सकते हैं।

दूसरा अभिलक्षण जोकि, हम विश्वास करते हैं, किसी भी अन्तिम सिद्धान्त का अंग होना चाहिए, आइंस्टाइन की यह अवधारणा है कि गुरुत्वीय क्षेत्र दिक्-काल की वक्रता द्वारा प्रकट किया जाता है : एक वक्र आकाश में कण सीधे मार्ग के किसी निकटतम पथ का अनुसरण करने का प्रयास करते हैं, परन्तु क्योंकि दिक्-काल सपाट नहीं है, इसलिए उनके मार्ग वक्रित दिखाई पड़ते हैं, मानो ऐसा गुरुत्वीय क्षेत्र के कारण हो। जब हम आइंस्टाइन के गुरुत्व के विचार पर फाइनमैन का इतिवृत्तों का योगफल लागू करते हैं, तो किसी कण के इतिवृत्त का सदृश्य रूप (analogue) अब एक पूर्ण वक्र दिक्-काल होता है जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में इतिवृत्त का द्योतक है। इतिवृत्तों के योगफल को वास्तविकता में निष्पादित करते समय तकनीकी कठिनाइयों से बचने के लिए, ये वक्र दिक्-काल यूक्लीडियन मान लिए जाने चाहिए। अर्थात्, काल काल्पनिक है तथा आकाश में दिशाओं से अविभेद्य है। समांगता तथा समदैशिकता जैसी कुछ निश्चित विशेषताओं से युक्त वास्तविक दिक्-काल को पाने की प्रायिकता की गणना करने के लिए, हम इन विशेषताओं से युक्त सभी इतिवृत्तों वाली तरंगों को जोड़ देते हैं।

सामान्य आपेक्षिकता के चिरसम्मत सिद्धान्त में, अनेक विभिन्न प्रकार के वक्र दिक्-काल होते हैं, और उनमें से प्रत्येक ब्रह्माण्ड की विभिन्न आद्य अवस्थाओं के अनुरूप होता है। यदि हमें अपने ब्रह्माण्ड की आद्य स्थिति ज्ञात हो, तब हम इसका सम्पूर्ण इतिवृत्त जान लेंगे। इसी प्रकार गुरुत्व के क्वाण्टम सिद्धान्त में, ब्रह्माण्ड के लिए अनेक विभिन्न प्रकार की सम्भावित क्वाण्टम

अवस्थाएँ होती हैं। पुनः यदि हमें यह ज्ञात होता कि प्रारम्भिक समय मे, इतिवृत्तों के योगफल में यूक्लीडियन वक्र दिक्-काल किस प्रकार व्यवहार करता था, तब हम ब्रह्माण्ड की क्वाण्टम अवस्था जान लेते।

गुरुत्व के चिरसम्मत सिद्धान्त में, जोकि वास्तविक दिक्-काल पर आधारित है, ब्रह्माण्ड के कार्य करने के केवल दो सम्भव रास्ते हैं : या तो यह अनन्त काल से अस्तित्व में है, या फिर अतीत में किसी कालबद्ध समय पर किसी विलक्षणता के बिन्दु पर इसकी उत्पत्ति हुई। दूसरी ओर, गुरुत्व के क्वाण्टम सिद्धान्त में, एक तीसरी सम्भावना भी उभरती है। क्योंकि कोई यूक्लीडियन दिक्-काल का उपयोग कर रहा है, जिसमें काल-दिशा का वही आधार है जो आकाश में दिशाओं का है, इसलिए यह सम्भव है कि दिक्-काल विस्तार में सीमाबद्ध हो और फिर भी उसकी कोई विलक्षणता न रही हो जो इसकी परिसीमा या किनारे का निर्माण करती। दिक्-काल, पृथ्वी के पृष्ठ-तल के समान ही होगा, बस केवल दो अतिरिक्त विमाओं से युक्त। पृथ्वी का पृष्ठ-तल विस्तार में सीमाबद्ध है, परन्तु इसकी कोई परिसीमा या किनारा नहीं है : यदि आप सूर्यास्त के समय समुद्री अभियान पर प्रस्थान करते हैं, तब आप किसी किनारे पर से गिर नहीं पड़ते या किसी विलक्षणता (singularity) के अन्दर नहीं चले जाते। (मैं जानता हूँ क्योंकि मैं धरती के चारों ओर घूम चुका हूँ।)

यदि यूक्लीडियन दिक्-काल का विस्तार विपरीत दिशा में अनन्त काल्पनिक काल तक हो जाता है, या फिर किसी काल्पनिक काल में एक विलक्षणता के बिन्दु पर इसकी उत्पत्ति होती है, तब ब्रह्माण्ड की आद्य स्थिति की विस्तृत व्याख्या करने के लिए हमारे सम्मुख वही समस्या होती है जैसीकि चिरसम्मत सिद्धान्त में होती है : ईश्वर ही जान सकता है कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति किस प्रकार हुई, परन्तु हम यह सोचने का कोई विशेष कारण नहीं बता सकते कि इसकी उत्पत्ति एक ही तरीके से हुई। दूसरी ओर, गुरुत्व के क्वाण्टम सिद्धान्त ने नई सम्भावनाओं के द्वार खोल दिए हैं, जिसमें दिक्-काल की कोई परिसीमा नहीं होगी और इसीलिए परिसीमा पर इसके व्यवहार की विस्तृत व्याख्या करने की कोई आवश्यकता नहीं होगी। न ही वे विलक्षणताएँ होंगी, जिन पर विज्ञान के नियम विफल हो जाते हैं और न ही दिक्-काल के किनारे होंगे, जिन पर किसी को ईश्वर से प्रार्थना करनी पड़े, न ही दिक्-काल की सीमा-स्थितियों को निर्धारित करने के लिए कुछ नए नियम होंगे। कोई यह भी कह सकता था, "ब्रह्माण्ड की सीमा-स्थिति यह है कि इसकी कोई सीमा नहीं है।" ब्रह्माण्ड पूर्णतः स्वयंपूर्ण (self contained) होगा तथा अपने से बाहर किसी भी वस्तु से निष्प्रभावित होगा। न इसका जन्म होगा और न इसका मरण। यह तो केवल अस्तित्ववान होगा।

वेटिकन में आयोजित एक सम्मेलन में जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है, मैंने सर्वप्रथम यह सुझाव विचारार्थ प्रस्तुत किया था कि दिक् और काल ने मिलकर एक पृष्ठ-तल का निर्माण किया जो आकार में सीमाबद्ध था परन्तु उसकी कोई सीमा या किनारा नहीं था। मेरा शोध-पत्र थोड़ा गणितीय था, इसलिए ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति में ईश्वर की भूमिका के बारे में इसके निहितार्थ उस समय सामान्यतः स्वीकार नहीं किए गए थे (ठीक इसी तरह मेरे बारे में भी)। वेटिकन सम्मेलन के समय में मैं यह नहीं जानता था कि ब्रह्माण्ड के बारे में पूर्वानुमान के लिए 'सीमा-विहीनता (no boundary) की अवधारणा का मैं किस प्रकार प्रयोग करूँ। बहरहाल, मैंने अगली गर्मियाँ कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, सैण्टा बारबरा में व्यतीत कीं। वहाँ मेरे एक मित्र और सहकर्मी जिम हार्टल ने मेरे साथ इस समस्या पर कार्य किया कि यदि दिक्-काल सीमाविहीन हो तो ब्रह्माण्ड को कौन-सी शर्तें पूरी करनी चाहिए। जब मैं कैम्ब्रिज लौटा, तो मैंने यह कार्य अपने दो शोध छात्रों, जूलियन ल्यूट्रैल तथा जोनाथन हालीवैल के साथ जारी रखा।

मैं यह बात जोर देकर कहना चाहूँगा कि यह विचार कि दिक् और काल बिना किसी परिसीमा के सीमाबद्ध होने चाहिए, मात्र एक प्रस्ताव है : यह किसी दूसरे सिद्धान्त से निष्कर्षित नहीं हो सकता। किसी दूसरे वैज्ञानिक सिद्धान्त के समान, इसे प्रारम्भ में आधिभौतिकीय (metaphysical) या सौन्दर्यपरक कारणों के चलते विचारार्थ प्रस्तुत किया जा सकता है,

परन्तु वास्तविक परख यह है कि क्या यह ऐसे पूर्वानुमान प्रस्तुत करता है जो प्रेक्षण के अनुरूप हों। बहरहाल, क्वाण्टम गुरुत्व के मामले में, दो कारणवश, यह सुनिश्चित करना कठिन है। प्रथम, जैसाकि अगले अध्याय में स्पष्ट किया जाएगा, हम अभी तक पूरी तरह आश्वस्त नहीं हैं कि कौन-सा सिद्धान्त सामान्य आपेक्षिकता सिद्धान्त तथा क्वाण्टम यान्त्रिकी को सफलतापूर्वक जोड़ता है; हालाँकि ऐसे सिद्धान्त का स्वरूप क्या होगा हम इस सम्बन्ध में काफी कुछ जानते हैं। दूसरे, ऐसा कोई भी मॉडल जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को विस्तृत रूप से निरूपित करता हो, गणितीय रूप से इतनी जटिलताओं से युक्त होगा कि हम बिल्कुल शुद्ध पूर्वानुमानों का आकलन करने में असमर्थ रहेंगे। इसीलिए, कल्पनाओं तथा अनुमानों का सरलीकरण करना पड़ता है—और इसके बाद भी, पूर्वानुमानों के निष्कर्षण की समस्या दुरूह बनी रहती है।

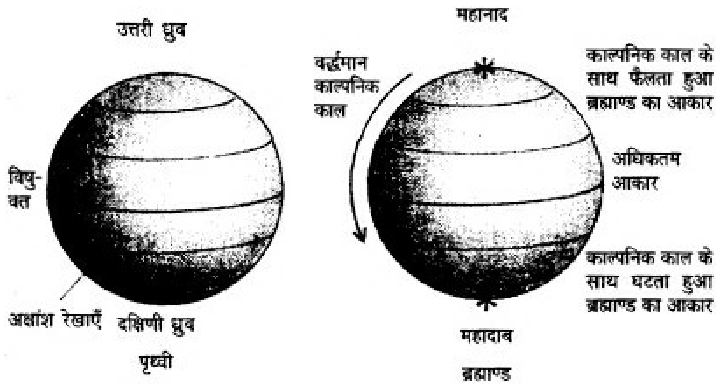
इतिवृत्तों के योगफल में प्रत्येक इतिवृत्त (दिक्-काल में कण का कोई मार्ग) न केवल दिक्-काल का वर्णन करेगा, बल्कि मानव जाति जैसे किन्हीं जटिल जीवों सहित जो ब्रह्माण्डं के इतिवृत्त का प्रेक्षण कर सकते हैं, इसके अन्दर की प्रत्येक वस्तु का वर्णन करेगा। इससे नृ-सिद्धान्त का एक और औचित्य सिद्ध हो सकता है, क्योंकि यदि सभी इतिवृत्त सम्भव हैं, तब जब तक हम किसी एक इतिवृत्त में जीवित रहते हैं, तब तक हम इस प्रश्न को हल करने के लिए कि ब्रह्माण्ड का स्वरूप ऐसा ही क्यों पाया जाता है, नृ-सिद्धान्त का उपयोग कर सकते हैं। उन दूसरे इतिवृत्तों का, जिनमें हमारा अस्तित्व नहीं है, ठीक-ठीक अर्थ क्या लगाया जा सकता है, यह अभी स्पष्ट नहीं है। गुरुत्व के क्वाण्टम सिद्धान्त का यह विचार, बहरहाल, काफी अधिक सन्तोषजनक होता, यदि कोई यह प्रमाणित कर सकता कि इतिवृत्तों के योगफल का उपयोग करके हमारा ब्रह्माण्ड केवल सम्भावित इतिवृत्तों में से एक नहीं है, बल्कि सबसे अधिक प्राथमिकता वाले इतिवृत्तों में से एक है। इसे हल करने के लिए, हमें सभी सम्भव सीमाविहीन यूक्लीडियन दिक्-कालों के लिए इतिवृत्तों के योगफल को लगाना चाहिए।

सीमाविहीनता के प्रस्ताव के अन्तर्गत हमें यह ज्ञात होता है कि ब्रह्माण्ड को अधिकांश सम्भावित इतिवृत्तों का अनुसरण करते हुए पाए जाने का आकस्मिक संयोग नगण्य है, परन्तु उन इतिवृत्तों का, जो दूसरों की अपेक्षा काफी अधिक प्रायिक हैं, एक विशिष्ट परिवार होता है। ये इतिवृत्त पृथ्वी के पृष्ठ-तल के समान चित्रित किए जा सकते हैं, जिसमें उत्तरी ध्रुव से दूरी काल्पनिक काल का प्रतीक है, और उत्तरी ध्रुव से स्थिर दूरी के वृत्त का आकार ब्रह्माण्ड के आकाशीय आकार का प्रतीक है। ब्रह्माण्ड एक बिन्दु के रूप में उत्तरी ध्रुव से शुरू होता है। ज्यों-ज्यों कोई दक्षिण की ओर चलता है, उत्तरी ध्रुव से स्थिर दूरी दूरी पर स्थित अक्षांश-वृत्त काल्पनिक काल के साथ विस्तृत होते हुए ब्रह्माण्ड के अनुरूप अपेक्षाकृत बड़े होते जाते हैं (चित्र 8.1)। भूमध्य रेखा पर ब्रह्माण्ड अपने अधिकतम आकार पर पहुँच जाएगा, और फिर वर्द्धमान काल्पनिक काल के साथ दक्षिणी ध्रुव पर एक बिन्दु के रूप में संकुचित हो जाएगा। हालाँकि उत्तरी व दक्षिणी ध्रुवों पर ब्रह्माण्ड का आकार शून्य हो जाएगा, फिर भी ये विलक्षणता वाले बिन्दु नहीं होंगे, बल्कि ठीक इसी प्रकार होंगे, जैस उत्तरी व दक्षिणी ध्रुव पृथ्वी पर एकल बिन्दु होते हैं। विज्ञान के नियम उन पर ठीक वैसे ही प्रभावी होंगे जैसे वे पृथ्वी के उत्तरी व दक्षिणी ध्रुवों पर होते हैं।

बहरहाल, वास्तविक काल में ब्रह्माण्ड का इतिहास बिल्कुल भिन्न दिखाई देगा। लगभग दस या बीस अरब वर्षों पहले इसका आकार न्यूनतम रहा होगा, जो काल्पनिक काल में इतिवृत्त की अधिकतम त्रिज्या के समतुल्य था। बाद के वास्तविक काल में ब्रह्माण्ड लिन्दे द्वारा प्रस्तावित अव्यवस्थित स्फीतिकारी मॉडल के समान विस्तारित हो जाएगा (परन्तु अब किसी को यह नहीं मानना पड़ेगा कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति किसी तरह उचित प्रकार की परिस्थिति में हुई थी)। ब्रह्माण्ड का विस्तार बहुत बड़े स्तर तक हो जाएगा (चित्र 8.1) और अन्ततः पुनः ध्वस्त होकर वास्तविक काल में विलक्षणता बिन्दु के रूप में आ जाएगा। इस प्रकार से एक अर्थ में हम सभी अन्त के लिए अभिशप्त हैं, चाहे हम कृष्ण विवरों से दूर रहें। यदि हम काल्पनिक काल को इकाई मानकर ब्रह्माण्ड को चित्रित कर सकें, केवल तभी विलक्षणताएँ नहीं होंगी।

यदि ब्रह्माण्ड वास्तव में ऐसी क्वाण्टम स्थिति में है, तो काल्पनिक काल में ब्रह्माण्ड के

इतिहास में कोई विलक्षणता नहीं होगी। अतः ऐसा लगेगा कि मेरे सबसे नवीन शोध-कार्य ने विलक्षणताओं पर मेरे पूर्ववर्ती कार्य के परिणामों को पूरी तरह निष्फल कर दिया है। परन्तु जैसाकि ऊपर निर्दिष्ट किया गया है, विलक्षणता प्रमेयों का वास्तविक महत्त्व यह है कि वे यह प्रमाणित करती हैं कि गुरुत्वीय क्षेत्र निश्चित रूप से इतना प्रबल हो जाना चाहिए कि क्वाण्टम गुरुत्वीय प्रभावों की उपेक्षा न की जा सके। परिणामतः इस तथ्य ने इस अवधारणा का मार्ग प्रशस्त कर दिया कि ब्रह्माण्ड काल्पनिक काल में सीमाबद्ध (finite) तो हो सकता था, परन्तु बिना विलक्षणताओं या परिसीमाओं के। जब कोई उस वास्तविक काल में लौटता है जिसमें कि हम रहते हैं, तो भी विलक्षणताओं का होना फिर भी प्रतीत होगा। बेचारा वह अन्तरिक्ष यात्री जो कृष्ण विवर में गिर जाता है, अब भी एक दुर्दान्त मृत्यु को प्राप्त होगा : वह किसी भी विलक्षणता का सामना केवल उस अवस्था में नहीं करेगा, जब वह काल्पनिक काल में जिया हो।



चित्र 8.1

इससे यह निष्कर्ष निकलेगा कि तथाकथित काल्पनिक काल ही वास्तव में वास्तविक काल है, और यह कि जिसे हम वास्तविक काल कहते हैं, हमारी कल्पनाओं की उड़ान-भर है। वास्तविक काल में ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति और अन्त उन विलक्षणताओं पर होता है जो दिक्-काल की सीमा का निर्माण करती हैं और जिन पर विज्ञान के सभी नियम विफल हो जाते हैं। परन्तु काल्पनिक काल में न तो विलक्षणताएँ होती हैं और न परिसीमाएँ ही। इसलिए हो सकता है कि जिसे हम काल्पनिक काल कहते हैं, वह वास्तव में अपेक्षाकृत अधिक आधारभूत है और जिसे हम वास्तविक काल कहते हैं, वह मात्र एक अवधारणा हो, जो हमने ब्रह्माण्ड के स्वरूप के सम्बन्ध में अपने विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए अपनी सहायतार्थ गढ़ी हो। परन्तु अध्याय 1 में वर्णित मेरे विचार के अनुसार कोई भी वैज्ञानिक सिद्धान्त मात्र वह गणितीय मॉडल होता है, जिसे हम अपने प्रेक्षणों का वर्णन करने के लिए बनाते हैं : इसका अस्तित्व केवल हमारे मस्तिष्क में होता है। इसीलिए यह प्रश्न करना निरर्थक है कि 'वास्तविक' या 'काल्पनिक' काल में से असली कौन-सा है? यह आपके ऊपर है कि आप इनमें से किस विवरण को ज्यादा उपयोगी मानें।

सीमाविहीनता के प्रस्ताव के साथ इतिवृत्तों के योगफल का उपयोग कोई यह खोजने के लिए कर सकता है कि ब्रह्माण्ड की कौन-सी विशेषताएँ साथ-साथ घटित होनी सम्भावित हैं। उदाहरण के लिए कोई इस प्रायिकता की गणना कर सकता है कि ब्रह्माण्ड उस समय सभी भिन्न दिशाओं में लगभग एक ही दर से विस्तारित हो रहा है, जबकि ब्रह्माण्ड का घनत्व अपना वर्तमान मान रखता हो। उन सरलीकृत मॉडलों में जिनका अभी तक परीक्षण किया जा चुका है, यह प्रायिकता बहुत अधिक पाई जाती है : अर्थात् प्रस्तावित सीमाविहीनता की स्थिति इस पूर्वानुमान की ओर ले चलती है कि यह बेहद सम्भव है कि ब्रह्माण्ड के विस्तार की वर्तमान दर हर दिशा में लगभग एक समान है। यह अन्तरिक्ष पृष्ठभूमि विकिरण के प्रेक्षणों के अनुरूप है जो यह प्रमाणित

करता है कि प्रत्येक दिशा में इसकी तीव्रता लगभग एक समान है। यदि ब्रह्माण्ड अन्य दिशाओं की अपेक्षा कुछ विशिष्ट दिशाओं में ही अपेक्षाकृत तीव्र दर से विस्तारित हो रहा होता, तो उन दिशाओं में विकिरण की तीव्रता एक अतिरिक्त अभिरक्त-विस्थापन (red shift) के कारण घट जाती।

सीमाविहीनता की दशा के अन्य पूर्वानुमानों की आजकल गणना की जा रही है। एक विशेष रूप से रोचक समस्या प्रारम्भिक ब्रह्माण्ड में समरूप घनत्व से सूक्ष्म भिन्नताओं के परिमाण की है, जिन्होंने सबसे पहले मन्दाकिनियों का, फिर तारों का और अन्त में हमारा निर्माण किया। अनिश्चितता के सिद्धान्त का अर्थ यह है कि प्रारम्भिक ब्रह्माण्ड पूर्णतः एक समान हो ही नहीं सकता था, क्योंकि कणों के वेग और स्थितियों में असमानताएँ या कुछ अनिश्चितताएँ अवश्य रही होंगी। सीमाविहीन दशा का प्रयोग करके हम यह पाते हैं कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति वस्तुतः अनिश्चितता के सिद्धान्त द्वारा अनुमत बिल्कुल न्यूनतम सम्भव असमानता के साथ हुई होगी। उस समय ब्रह्माण्ड तीव्र विस्तार के काल से गुजरा होगा, जैसाकि स्फीतिकारी मॉडलों में परिकल्पित है। इस काल के दौरान आद्य असमानताएँ उस समय तक प्रवर्द्धित होती गई होंगी, जब तक कि वे पर्याप्त रूप से इतनी बड़ी न हो गई हों, कि उन संरचनाओं, जिन्हें हम अपने चारों ओर देखते हैं, के मूल को स्पष्ट किया जा सके। सन् 1992 में अन्तरिक्ष पृष्ठभूमि अन्वेषक (कॉस्मिक बैकग्राउंड एक्सप्लोरर या (COBE) उपग्रह ने विभिन्न दिशाओं में अन्तरिक्ष पृष्ठभूमि तीव्रता में बहुत ही छोटे परिवर्तनों का सबसे पहले पता लगाया था। जिस तरीके से ये असमानताएँ (nonuniformities) दिशाओं पर निर्भर करती हैं, उससे यह स्फीतिकारी मॉडल और सीमाविहीनता के प्रस्ताव के पूर्वानुमान के अनुरूप लगती हैं। इस तरह कार्ल पॉपर (Karl Popper) के अनुसार सीमाविहीनता का प्रस्ताव एक अच्छा वैज्ञानिक सिद्धान्त है : यह प्रेक्षणों से झूठा साबित हो सकता था, परन्तु इसके स्थान पर इसके पूर्वानुमानों की पुष्टि हो गई। एक विस्तृत होते हुए ब्रह्माण्ड में, जिसमें पदार्थ का घनत्व स्थान-स्थान पर थोड़ा-थोड़ा भिन्न हो, गुरुत्वीय बल ने अपेक्षाकृत अधिक घनत्ववाले क्षेत्रों को अपने विस्तार की गति धीमी करने के लिए तथा संकुचन प्रारम्भ करने के लिए प्रेरित किया होगा। इसी ने मन्दाकिनियों, तारों और अन्ततः हम जैसे महत्त्वहीन जीवों की उत्पत्ति का मार्ग प्रशस्त किया होगा। इस तरह समस्त जटिल संरचनाएँ जो हम ब्रह्माण्ड में देखते हैं, क्वाण्टम यान्त्रिकी के अनिश्चितता के सिद्धान्त के साथ-साथ ब्रह्माण्ड की सीमाविहीनता की दशा के द्वारा स्पष्ट की जा सकती हैं।

ब्रह्माण्ड के कामकाज में ईश्वर की भूमिका के प्रयोजन हेतु, इस विचार के भी गहन निहितार्थ हैं कि दिक्-काल एक सीमाविहीन बन्द पृष्ठ-तल का निर्माण कर सकता है। घटनाओं का वर्णन करने में वैज्ञानिक सिद्धान्तों की सफलता के साथ, अधिकांश लोग अब यह विश्वास करने लगे हैं कि ईश्वर नियमों के एक समुच्चय के अनुसार ब्रह्माण्ड को क्रमिक रूप से विकसित होने की अनुमति देता है और इन नियमों को तोड़ने के लिए ब्रह्माण्ड में हस्तक्षेप नहीं करता। बहरहाल, विज्ञान के सिद्धान्त हमें यह नहीं बताते कि उत्पत्ति के समय ब्रह्माण्ड कैसा दिखाई देता होगा—अब भी इस यन्त्र में चाबी भरना तथा यह चयन करना कि इसे किस प्रकार शुरू किया जाए ईश्वर तक ही सीमित होगा। जब तक ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति की धारणा थी, हम यह मान सकते थे कि उसका कोई रचयिता भी होगा। परन्तु यदि ब्रह्माण्ड वास्तव में पूरी तरह से स्वयंपूर्ण है तथा इसका कोई किनारा या छोर नहीं है, तो इसका न आदि होगा और न अन्त होगा, यह बस केवल अस्तित्ववान होगा। फिर किसी रचयिता का क्या काम?

अध्याय 9

काल का तीर

पिछले अध्यायों में हमने यह देखा है कि विगत कुछ वर्षों में काल की प्रकृति के सम्बन्ध में हमारे विचारों में किस प्रकार परिवर्तन हुआ है। इस शताब्दी के आरम्भ तक लोग परम या निरपेक्ष काल में विश्वास करते थे। अर्थात्, हर घटना को एक अनोखे तरीके से 'काल' कही जाने वाली किसी संख्या के द्वारा चिह्नित किया जा सकता था और दो घटनाओं के मध्य काल के अन्तराल पर सभी अच्छी घड़ियाँ (watches) सहमत होंगी। बहरहाल, इस खोज ने कि प्रकाश का वेग प्रत्येक प्रेक्षक को एक-सा ही दिखाई पड़ता है चाहे प्रेक्षक की गति कुछ भी हो, आपेक्षिकता के सिद्धान्त का मार्ग प्रशस्त कर दिया—और उसमें इस विचार का परित्याग करना पड़ा कि कोई विशिष्ट निरपेक्ष काल होता है। इसके स्थान पर प्रत्येक प्रेक्षक का काल का निजी अनुमापन होगा, जो अपनी-अपनी घड़ी के द्वारा अंकित किया जाएगा : यह आवश्यक नहीं कि विभिन्न प्रेक्षकों की अपनी घड़ियाँ एक-सा ही समय सूचित करें। इस तरह से, मापन करनेवाले प्रेक्षक के सापेक्ष, काल एक अपेक्षाकृत अधिक व्यक्तिगत अवधारणा माना गया।

जब भी किसी ने क्वाण्टम यान्त्रिकी के साथ गुरुत्व को एकीकृत करने का प्रयास किया तो उसे 'काल्पनिक' काल के विचार को समाविष्ट करना पड़ा। काल्पनिक काल आकाश मे दिशाओं से अविभेद्य होता है। यदि कोई उत्तर की ओर जा सकता है, तो वह मुड़ सकता है, और दक्षिण की ओर बढ़ सकता है, इसी प्रकार यदि कोई काल्पनिक काल में आगे जा सकता है, तो उसे मुड़कर पीछे जाने में भी समर्थ होना चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि काल्पनिक काल की आगे और पीछे की दिशाओं के बीच कोई महत्त्वपूर्ण अन्तर नहीं हो सकता। दूसरी ओर, जब कोई 'वास्तविक' काल पर दृष्टिपात करता है, तो जैसाकि हम सब जानते हैं आगे और पीछे की दिशाओं के बीच बहुत बड़ा अन्तर होता है। भविष्य और भूतकाल के बीच यह अन्तर कहाँ से आता है? हम अपने अतीत को ही क्यों याद करते हैं, और भविष्य को क्यों नहीं?

विज्ञान के नियम भूतकाल और भविष्यकाल के मध्य कोई अन्तर स्थापित नहीं करते। जैसाकि पहले स्पष्ट किया जा चुका है, और अधिक स्पष्टतः C, P और T के रूप में ज्ञात संक्रियाओं (या सममितियों) के संयोजन (combination operations) के अन्तर्गत विज्ञान के नियम अपरिवर्तित रहते हैं। [C का अर्थ है—कणों का प्रतिकणों में परिवर्तन। P का अर्थ है—दर्पण-छाया या प्रतिबिम्ब (mirror image) लेना, इसीलिए दाएँ और बाएँ अदले-बदले जाते हैं, और T का अर्थ है—सभी कणों की गति की दिशा विपरीत कर देना, वस्तुतः गति को विपरीत दिशा में घुमाना] विज्ञान के जो नियम सभी सामान्य स्थितियों में पदार्थ के व्यवहार को नियन्त्रित करते हैं, वे स्वयं ही C और P इन दो संक्रियाओं के संयोजन के अन्तर्गत अपरिवर्तित रहते हैं। दूसरे शब्दों में किसी दूसरे ग्रह के उन निवासियों के लिए जो हमारे प्रतिबिम्ब हों और जो पदार्थ से नहीं बल्कि प्रतिपदार्थ से बने हों, जीवन एक-सा ही होगा।

यदि C और P संक्रियाओं के संयोजन द्वारा विज्ञान के नियम अपरिवर्तित रहते हैं, और C, P और T संयोजन के द्वारा भी अपरिवर्तित रहते हैं, तो अकेले T की संक्रिया के अन्तर्गत भी उन्हें निश्चित रूप से अपरिवर्तित रहना चाहिए। तब भी, सामान्य जीवन में वास्तविक काल की आगे

और पीछे की दिशाओं के बीच बहुत बड़ा अन्तर होता है। पानी के एक प्याले के मेज से गिरने तथा फर्श पर टूटकर खंड-खंड हो जाने की कल्पना कीजिए। यदि आप इसकी फिल्म उतारें, तो आप आसानी से यह बता सकते हैं कि प्याला आगे की ओर बढ़ रहा है या पीछे की ओर। यदि आप फिल्म को उल्टा चला दें, तब आप यह देखेंगे कि अचानक बिखरे हुए टुकड़े फर्श पर से स्वयं एकत्रित हो जाते हैं तथा उल्टे कूदकर मेज पर एक पूरे प्याले के आकार के रूप में आ जाते हैं। आप कह सकते हैं कि फिल्म उल्टी चलाई जा रही है, क्योंकि इस तरह का व्यवहार साधारण जीवन में कभी भी प्रेक्षित नहीं किया जाता। यदि ऐसा हो जाता तो क्रॉकरी निर्माताओं का व्यापार पूर्णतः बन्द हो जाता।

हम टूटे हुए प्याले को फर्श से अपने टुकड़े एकत्रित करते हुए तथा मेज पर पुनः छलाँग लगाते हुए क्यों नहीं देख पाते, इसका सामान्यतः जो उत्तर दिया जाता है वह यह है कि यह ऊष्मागतिकी के दूसरे नियम द्वारा निषिद्ध है। यह नियम कहता है कि किसी बन्द निकाय (closed system) में अव्यवस्था या एण्ट्रोपी सदैव समय के साथ-साथ बढ़ती जाती है। दूसरे शब्दों में, यह मर्फी के नियम (Murphy's law) का ही एक रूप है : वस्तुएँ सदैव गलत दिशा में जाने की ओर अभिमुख होती हैं! मेज पर रखा अक्षत प्याला उच्च व्यवस्था (state of high order) की अवस्था है, परन्तु फर्श पर टूटा हुआ प्याला एक अव्यवस्थित (a disordered) अवस्था है। भूतकाल में मेज पर रखे प्याले से, भविष्य में फर्श पर टूटे हुए प्याले तक कोई भी तत्परता से जा सकता है, परन्तु इसके विपरीत क्रम में नहीं जा सकता।

समय के साथ अव्यवस्था या एण्ट्रोपी में वृद्धि काल के तीर का एक उदाहरण है, जो काल को दिशा प्रदान करते हुए भविष्य से भूतकाल में विभेद करती है। काल के कम-से-कम तीन भिन्न-भिन्न तीर होते हैं। पहला, काल का ऊष्मागतिक तीर है, यानी काल की दिशा जिसमें अव्यवस्था या एण्ट्रोपी में वृद्धि हो जाती है। इसके बाद काल का मनोवैज्ञानिक तीर है। यह वह दिशा है जिसमें हम यह अनुभव करते हैं कि समय बीत रहा है; जिसमें हम अतीत को याद रखते हैं, परन्तु भविष्य को नहीं। अन्ततः काल का एक ब्रह्माण्डिकीय तीर है। यह काल की वह दिशा है, जिसमें ब्रह्माण्ड संकुचित नहीं हो रहा, बल्कि विस्तृत हो रहा है।

इस अध्याय में मैं यह सिद्ध करने का प्रयत्न करूँगा कि ब्रह्माण्ड की सीमाविहीनता की दशा (जिसमें अवधारणा यह है कि ब्रह्माण्ड होता तो सीमाबद्ध है परन्तु काल्पनिक काल में इसकी कोई परिसीमा नहीं होती) तथा क्षीण नृ-सिद्धान्त संयुक्त रूप से यह स्पष्ट कर सकते हैं कि तीनों तीर एक ही दिशा की ओर क्यों इंगित करते हैं—और इसके अतिरिक्त काल के किसी सुनिश्चित तीर का अस्तित्व ही क्यों होना चाहिए। मैं यह तर्क प्रस्तुत करूँगा कि काल का मनोवैज्ञानिक तीर ऊष्मागतिक तीर द्वारा निर्धारित होता है और ये दोनों तीर अनिवार्य रूप से सदैव एक ही दिशा की ओर अभिमुख होते हैं। यदि कोई ब्रह्माण्ड के लिए सीमाविहीनता की दशा (no boundary condition) मान लेता है, तब हम यह पाएँगे कि काल के सुनिश्चित ऊष्मागतिक तथा ब्रह्माण्डिकीय तीर अवश्य होने चाहिए। लेकिन वे ब्रह्माण्ड के सम्पूर्ण इतिवृत्त के लिए एक ही दिशा की ओर निर्दिष्ट नहीं करेंगे। बहरहाल, मेरा तर्क यह होगा कि जब ये तीर एक ही दिशा की ओर निर्दिष्ट करते हैं, केवल तभी उन प्रज्ञावान प्राणियों के विकास के लिए स्थितियाँ अनुकूल होती हैं जो यह प्रश्न पूछ सकते हैं : अव्यवस्था या अराजकता में वृद्धि काल की उसी दिशा में क्यों होती है, जिस दिशा में ब्रह्माण्ड का विस्तार हो रहा है?

सर्वप्रथम, मैं काल के ऊष्मागतिक तीर की चर्चा करूँगा। ऊष्मागतिकी का दूसरा नियम इस तथ्य का परिणाम है कि क्रमबद्ध अवस्थाओं की अपेक्षा अराजक अवस्थाओं की संख्या सदैव काफी अधिक होती है। उदाहरण के लिए किसी डिब्बे में किन्हीं चित्रखण्डों (jigsaw) के बारे में सोचिए। इसमें एक और केवल एक ही ऐसी व्यवस्था होती है जिसमें चित्रखण्ड मिलकर एक पूर्ण चित्र बना सकते हैं। दूसरी ओर ऐसे बहुत सारे क्रम होते हैं जिनमें ये चित्रखण्ड अव्यवस्थित या अराजक अवस्था में रहते हैं और कोई भी तस्वीर नहीं बनाते।

मान लीजिए किसी भौतिक निकाय की उत्पत्ति क्रमबद्ध अवस्थाओं की अल्प मात्राओं में से

किसी एक में होती है। ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता जाएगा, वह निकाय विज्ञान के नियमों के अनुसार क्रमिक रूप से विकसित होता जाएगा और इसकी दशा परिवर्तित होती जाएगी। बाद के किसी काल-क्षण में, इस बात की प्राथमिकता अधिक है कि वह निकाय एक क्रमबद्ध अवस्था की अपेक्षा एक अराजक अवस्था में आ जाएगा क्योंकि अराजक अवस्थाओं की संख्या अधिक है। इस तरह यदि कोई निकाय उच्च-स्तरीय प्रारम्भिक दशाओं से स्वतन्त्र नहीं है तो समय के साथ-साथ अव्यवस्था या अराजकता में वृद्धि होती जाएगी।

मान लीजिए किसी डिब्बे में चित्रखण्ड पहेली के सभी खण्ड क्रमबद्ध रूप में लगे हुए हैं और इस व्यवस्थित रूप में वे एक निश्चित चित्र को बनाते हैं। अब यदि आप डिब्बे को हिला दें, तो चित्रखण्डों का वह क्रम बिगड़ जाएगा तथा वे एक दूसरा रूप धारण कर लेंगे। यह सम्भवतः एक अव्यवस्थित विन्यास होगा जिसमें चित्रखण्ड इसीलिए किसी उचित चित्र का निर्माण नहीं कर पाते क्योंकि डिब्बे में और चित्रखण्ड भी काफी अधिक बिखरी स्थिति में होते हैं। चित्रखण्ड के कुछ टुकड़े मिलकर अब भी चित्र के किसी अंश का रचना विन्यास कर सकते हैं, परन्तु जितना अधिक आप डिब्बे को हिलाएँगे, उतनी अधिक यह सम्भावना होगी कि ये क्रमबद्ध रूप से व्यवस्थित टुकड़े भी बिखर जाएँगे तथा सारे चित्रखण्ड एक पूर्णतः अस्त-व्यस्त अवस्था में होंगे, जिसमें वे किसी भी प्रकार के चित्र को नहीं बनाते। अतः यदि चित्रखण्ड उस प्रारम्भिक दशा से पूर्णतः स्वतन्त्र नहीं रहते हैं, जिस उच्च स्तरीय दशा (conditions of high order) से वे प्रारम्भ हुए थे, तब चित्रखण्डों की अव्यवस्था सम्भवतः समय के साथ बढ़ती जाएगी।

बहरहाल, मान लीजिए, ईश्वर ने यह निश्चय कर लिया कि ब्रह्माण्ड एक उच्च स्तरीय दशा में समाप्त हो जाना चाहिए, परन्तु यह किस दशा में प्रारम्भ हुआ, यह महत्त्वपूर्ण न हो, तब प्रारम्भिक काल में, ब्रह्माण्ड सम्भवतः एक अराजक अवस्था में होगा। इसका अर्थ यह होगा कि अव्यवस्था (disorder) समय के साथ घटती जाएगी। आप टूटे हुए प्यालों को अपने टुकड़े इकट्ठा करते हुए और वापस मेज पर उछलते हुए देखेंगे। बहरहाल, कोई से भी मानव प्राणी जो प्यालों का प्रेक्षण कर रहे होंगे, वे एक ऐसे ब्रह्माण्ड में रह रहे होंगे जिसमें अराजकता या अव्यवस्था समय के साथ घटती जाएगी। मैं यह तर्क दूँगा कि ऐसे प्राणियों का काल का एक मनोवैज्ञानिक तीर होगा, जो विपरीत दिशा में (पीछे की ओर) होगा। अर्थात्, वे अपने अतीत में घटनाओं को याद नहीं रखेंगे, बल्कि भविष्य में घटनाओं को याद रखेंगे। जब प्याला टूट गया होगा, तो वे उसका मेज पर होना ध्यान रखेंगे, परन्तु जब यह मेज पर था, तब वे इसका फर्श पर होना याद नहीं रखेंगे।

मानव-स्मृति के बारे में चर्चा करना थोड़ा इसीलिए कठिन है क्योंकि हम यह नहीं जानते कि मस्तिष्क किस प्रकार कार्य करता है। बहरहाल, कम्प्यूटर की स्मृति किस प्रकार कार्य करती है इस सम्बन्ध में हम सब कुछ जानते हैं। अतः मैं कम्प्यूटरों के लिए काल के मनोवैज्ञानिक तीर पर चर्चा करूँगा। मैं यह समझता हूँ कि यह मान लेना तर्कसंगत है कि कम्प्यूटरों के लिए भी वही तीर है, जो मनुष्यों के लिए है। यदि ऐसा न होता तो किसी ऐसे कम्प्यूटर को रखकर जो अगले दिन की कीमतें याद रख सकता हो, शेयर बाजार में कोई भी बहुत सारा धन कमा सकता था! एक कम्प्यूटर स्मृति मूलतः ऐसे तत्त्वों से युक्त एक उपकरण होता है जो दो में से किसी एक अवस्था में ही रह सकते हैं। एक गिनतारा (abacus) इसका एक सरल उदाहरण है। अपने सरलतम रूप में यह गिनतारा बहुत सारे तारों का बना होता है तथा प्रत्येक तार में कुछ मनके (beads) पिरोए हुए होते हैं जो दो स्थितियों में से किसी एक में रखे जा सकते हैं। कम्प्यूटर की स्मृति में कोई भी वस्तु अंकित करने से पहले, स्मृति एक अव्यवस्थित या अराजक अवस्था में होती है जिसमें दो सम्भावित स्थितियों के लिए समान प्रायिकताएँ होती हैं (गिनतारों के मनके इसके तारों पर बेतरतीबी से बिखरे होते हैं)। स्मृति द्वारा याद रखे जानेवाले विषय-क्रम के साथ अन्तःक्रिया करने के बाद उस विषय-क्रम की स्थिति के अनुसार यह निश्चित रूप से एक या दूसरी दशा में होगी (गिनतारे का हर मनका इसके तार के या तो दाईं या बाईं तरफ होगा)। इस प्रकार स्मृति एक अराजक अवस्था से क्रमबद्ध अवस्था में चली गई है। बहरहाल, यह सुनिश्चित करने के लिए कि

स्मृति उचित अवस्था में है, ऊर्जा के एक निश्चित परिमाण का उपयोग करना आवश्यक है (उदाहरण के लिए, मनकों को चलाना या कम्प्यूटर को शक्ति प्रदान करना)। यह ऊर्जा ऊष्मा के रूप में बिखर जाती है और ब्रह्माण्ड में अव्यवस्था या अराजकता के परिमाण में वृद्धि कर देती है। कोई यह प्रमाणित कर सकता है कि अराजकता में यह वृद्धि स्वयं स्मृति की क्रमबद्ध अवस्था में वृद्धि की अपेक्षा सदैव अत्यधिक होती है। इस तरह कम्प्यूटर को ठण्डा रखनेवाले पंखे द्वारा बाहर फेंकी गई ऊष्मा का अर्थ यह है कि जब कोई कम्प्यूटर अपनी स्मृति में किसी वस्तु को अंकित करता है, तब ब्रह्माण्ड में अराजकता का कुल परिमाण और बढ़ जाता है। और काल की वह दिशा जिसमें कोई कम्प्यूटर भूतकाल को याद रखता है, वही होती है जैसीकि वह दिशा जिसमें अव्यवस्था में वृद्धि होती जाती है।

अतः काल की दिशा का हमारा आत्मनिष्ठ भाव, काल का मनोवैज्ञानिक तीर, काल के ऊष्मागतिक तीर द्वारा हमारे मस्तिष्क के अन्दर ही निर्धारित किया जाता है। ठीक एक कम्प्यूटर के समान हमें वस्तुएँ उसी क्रम में आवश्यक रूप से याद रखनी चाहिए जिस क्रम में एण्ट्रोपी में वृद्धि होती जाती है (एण्ट्रोपी अव्यवस्था या अराजकता का प्रतीक है)। इससे ऊष्मागतिकी का दूसरा नियम लगभग तुच्छ-सा हो जाता है। समय के साथ अराजकता बढ़ती रहती है क्योंकि हम काल का मापन उस दिशा में करते हैं जिसमें अराजकता या अव्यवस्था बढ़ती है। आप इससे अधिक सुरक्षित बाजी नहीं लगा सकते!

परन्तु काल के ऊष्मागतिक तीर का अस्तित्व होना ही क्यों चाहिए? या, दूसरे शब्दों में, काल के एक छोर पर, वह छोर जिसे हम अतीत कहते हैं, ब्रह्माण्ड एक उच्च स्तरीय क्रमबद्ध अवस्था में क्यों होना चाहिए? यह सदा पूर्ण अराजक अवस्था में ही क्यों नहीं होता है? आखिरकार, यह अधिक सम्भव लगेगा। और काल की वह दिशा जिसमें अराजकता में वृद्धि होती है उसी दिशा के समान क्यों होती है, जिसमें ब्रह्माण्ड का विस्तार होता है?

सामान्य आपेक्षिकता के चिरसम्मत सिद्धान्त में, कोई भी यह नहीं बता सकता कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति किस प्रकार हुई होगी क्योंकि विज्ञान के सभी ज्ञात नियम महाविस्फोट की सिंगुलैरिटी की स्थिति पर विफल हो चुकेंगे। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति एक बहुत ही निर्बाध एवं क्रमबद्ध अवस्था में सम्भव हो सकती थी। यह काल के उन सुपरिभाषित ऊष्मागतिक और ब्रह्माण्डिकीय तीरों की ओर ले चलता, जैसाकि हम आज देखते हैं। परन्तु ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति इसी प्रकार पिण्डकोंवाली तथा बहुत अराजक अवस्था से भी हो सकती थी। उस स्थिति में, क्योंकि ब्रह्माण्ड पहले से ही एक पूर्ण अराजक अवस्था में होता, इसलिए समय के साथ अराजकता में वृद्धि नहीं हो सकती थी। या तो यह स्थिर अवस्था में रुक जाती और इस स्थिति में काल का कोई भी सुनिश्चित ऊष्मागतिक तीर नहीं होता, या फिर यह अराजकता कम हो जाती और इस स्थिति में काल का ऊष्मागतिक तीर, ब्रह्माण्डिकीय तीर की विपरीत दिशा की ओर इंगित करता। इनमें से कोई-सी भी सम्भावना हमारे प्रेक्षणों के अनुरूप नहीं है। बहरहाल, जैसाकि हम देख चुके हैं, चिरसम्मत (classical) सामान्य आपेक्षिकता अपने ही पतन की भविष्यवाणी करती है। जब दिक्-काल की वक्रता विशाल हो जाएगी, तब क्वाण्टम गुरुत्वीय प्रभाव बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाएँगे और चिरसम्मत सिद्धान्त ब्रह्माण्ड की एक अच्छी व्याख्या प्रस्तुत करने में असमर्थ रहेगा। तब यह समझने के लिए कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति किस प्रकार हुई, गुरुत्व के क्वाण्टम सिद्धान्त का उपयोग करना ही पड़ेगा।

गुरुत्व के क्वाण्टम सिद्धान्त में, जैसाकि हमने पिछले अध्याय में देखा, ब्रह्माण्ड की स्थिति का निश्चित रूप से उल्लेख करने के लिए, किसी को, फिर भी, यह कहना ही पड़ेगा कि भूतकाल में दिक्-काल की परिसीमा पर ब्रह्माण्ड के सम्भावित इतिवृत्त किस प्रकार का आचरण करते। जो कुछ हम नहीं जानते तथा जान भी नहीं सकते, उसका वर्णन करने की इस कठिनाई से केवल तभी बचा जा सकता था यदि इतिवृत्त सीमा-विहीनता-दशा को सन्तुष्ट करें : वे विस्तार में सीमाबद्ध हैं, परन्तु इनकी कोई सीमा, किनारा या सिंगुलैरिटी नहीं होती। उस स्थिति में, समय की उत्पत्ति दिक्-काल का एक नियमित व अबाध बिन्दु होती तथा ब्रह्माण्ड अपना विस्तार एक बहुत

ही निर्बाध, प्रवाही तथा क्रमबद्ध अवस्था में प्रारम्भ करता। यह पूर्णतः एक समान नहीं हो सकता था, क्योंकि इससे क्वाण्टम सिद्धान्त के अनिश्चितता सिद्धान्त का उल्लंघन होता। कणों के वेग और घनत्व में छोटे-छोटे उतार-चढ़ावों का होना अवश्यम्भावी था। बहरहाल, सीमाविहीनता-दशा का तात्पर्य यह था कि ये उतार-चढ़ाव उतने ही छोटे-छोटे थे जितने कि अनिश्चितता के सिद्धान्त के साथ संगतता बनाए रखने के लिए उनका छोटा होना सम्भव था।

ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति 'स्फीतिकारी' विस्तार के साथ हुई होगी, जिसमें इसने अपने आकार को विशाल रूप से बढ़ाया होगा। इस विस्तार के दौरान, घनत्व में उतार-चढ़ाव पहले तो छोटे रहे होंगे लेकिन बाद में उनका आकार बढ़ना शुरू हो गया होगा। जिन क्षेत्रों में घनत्व औसत से थोड़ा अधिक था, उनका विस्तार अतिरिक्त पदार्थ के गुरुत्व-बल द्वारा धीमा हो गया होगा। अन्ततः ऐसे क्षेत्रों का विस्तार रुक जाएगा और वे मन्दाकिनियों, तारों तथा हमारे जैसे प्राणियों की उत्पत्ति के लिए संघनित होकर ध्वस्त हो जाएँगे। ब्रह्माण्ड एक निर्बाध, प्रवाही तथा क्रमबद्ध अवस्था से प्रारम्भ हुआ होगा, और जैसे समय व्यतीत होता गया, यह आकारविहीन पिण्डकों से युक्त व अराजक या अव्यवस्थित हो गया। इससे काल के ऊष्मागतिक तीर का अस्तित्व स्पष्ट हो जाएगा।

परन्तु उस स्थिति में क्या होगा जब ब्रह्माण्ड का विस्तार बन्द हो जाए और यह संकुचित होना प्रारम्भ कर दे? क्या ऊष्मागतिक तीर उल्टा हो जाएगा, और समय के साथ अराजकता घटना प्रारम्भ कर देगी? उन लोगों के लिए जो विस्तार से संकुचन की अवस्था तक जीवित रहेंगे, इससे सभी प्रकार की विज्ञान-कथाओं जैसी सम्भावनाओं का मार्ग खुल जाएगा। क्या वे टूटे हुए प्याले को फर्श पर अपने टुकड़े एकत्रित करते हुए तथा वापस मेज पर छलाँग लगाते हुए देखेंगे? क्या वे आनेवाले दिन की कीमतों का पता लगाने में समर्थ हो सकेंगे और शेयर बाजार से अधिक धन कमा सकेंगे? यहाँ इस बात पर चिन्ता करना केवल सैद्धान्तिक लगता है कि उस समय क्या होगा, जब ब्रह्माण्ड पुनः ध्वस्त हो जाएगा क्योंकि, इसमें कम-से-कम दस अरब वर्ष तो लगेंगे ही जब ब्रह्माण्ड संकुचित होना शुरू करेगा। परन्तु तत्काल यह पता लगाने का कि तब क्या होगा, एक और रास्ता है : कृष्ण विवर में कूद पड़ो। कृष्ण विवर के निर्माण के लिए किसी तारे का ध्वस्त होना, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के ध्वस्तीकरण की आखिरी अवस्था के समान ही है। इसीलिए यदि ब्रह्माण्ड की संकुचन की अवस्था में अराजकता घटती तो कृष्ण विवर के अन्दर भी ऐसे ही घटने की अपेक्षा की जा सकती थी। इसीलिए शायद वह अन्तरिक्ष यात्री जो कृष्ण विवर में गिर गया था अपना दाँव लगाने से पहले ही यह याद रखकर कि गेंद कहाँ जाएगी रूलेट (roulette) के चक्के पर काफी धन कमा लेगा। (बहरहाल, दुर्भाग्यवश खिंचकर लम्बी सेंवईं के रूप में परिवर्तित हो जाने से पहले उसे खेलने के लिए ज्यादा लम्बा समय नहीं मिलेगा। न ही वह ऊष्मागतिक तीर की दिशा विपरीत हो जाने के बारे में हमें बताने में समर्थ होगा। वह अपनी जीत का भी लाभ नहीं उठा पाएगा, क्योंकि वह कृष्ण विवर के घटना क्षितिज में फँस जाएगा।)

पहले मेरा यह विश्वास था कि जब ब्रह्माण्ड पुनः ध्वस्त हो जाएगा तो अराजकता या अव्यवस्था घट जाएगी। ऐसा इसलिए था क्योंकि मैं यह सोचता था कि ब्रह्माण्ड जब पुनः छोटा हो जाएगा तो इसे एक निर्बाध, प्रवाही, क्रमबद्ध अवस्था में लौटना पड़ेगा, इसका अर्थ यह होगा कि संकुचन अवस्था विस्तार अवस्था के विपरीत काल-क्रम के अनुसार होगी। ब्रह्माण्ड की संकुचन अवस्था में लोग उल्टा जीवन जिएँगे : वे जन्म लेने से पहले ही मर जाएँगे और ज्यों-ज्यों ब्रह्माण्ड संकुचित होगा वे कम उम्र के होते चले जाएँगे।

यह विचार इसलिए आकर्षक है, क्योंकि इसका अर्थ विस्तृत तथा संकुचित होती हुई अवस्थाओं के मध्य एक अच्छी सममिति का मौजूद होना है। बहरहाल, कोई भी इस अवस्था को ब्रह्माण्ड के बारे में दूसरी अवधारणाओं से मुक्त अपनी ही मनमर्जी से ग्रहण नहीं कर सकता। प्रश्न यह है : क्या इसका संकेत सीमाविहीनता-दशा से मिलता है, या यह उस दशा के विपरीत है? जैसाकि मैंने कहा, मैंने पहले यही सोचा था कि सीमाविहीनता-दशा का वास्तव में यह अर्थ था कि संकुचन की अवस्था में अराजकता या अव्यवस्था घट जाएगी। पृथ्वी के पृष्ठ-तल से समानता के कारण मैं थोड़ा-सा गुमराह हो गया था। यदि कोई ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति को उत्तरी ध्रुव के

अनुरूप समझे, तब ब्रह्माण्ड का अन्त उत्पत्ति के समान ही होना चाहिए, ठीक वैसे ही जैसे कि उत्तरी ध्रुव दक्षिणी ध्रुव के समान है। बहरहाल, उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव काल्पनिक काल में ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति और अन्त के समान होते हैं। वास्तविक काल में उत्पत्ति और अन्त एक-दूसरे से बहुत भिन्न हो सकते हैं। मैं ब्रह्माण्ड के उस सरल मॉडल के ऊपर किए गए अपने शोध-कार्य से भी थोड़ा गुमराह हो गया था, जिसमें संकुचन अवस्था विस्तार की अवस्था के विपरीत काल-क्रम के समान दिखाई पड़ती थी। बहरहाल, पेन स्टेट विश्वविद्यालय के मेरे एक सहकर्मी डॉन पेज ने यह बताया कि सीमाविहीनता की दशा के लिए संकुचन अवस्था का विस्तार की अवस्था के काल के विपरीत क्रम में होना आवश्यक नहीं है। इसके अतिरिक्त मेरे विद्यार्थी रैमण्ड लाफलेम ने यह पाया कि एक थोड़े से और अधिक जटिल मॉडल में ब्रह्माण्ड का ध्वस्तीकरण इसके विस्तार से बहुत भिन्न था। मैं समझ गया कि मुझसे त्रुटि हुई है : सीमाविहीनता की दशा का अर्थ यह था कि संकुचन के दौरान अराजकता वस्तुतः निरन्तर बढ़ती रहेगी। समय के ऊष्मागतिक व मनोवैज्ञानिक तौर कृष्ण विवर के अन्दर या उस समय उल्टे या विपरीत दिशा में नहीं हो जाएँगे जब ब्रह्माण्ड पुनः संकुचित होना प्रारम्भ करता है।

आपको उस समय क्या करना चाहिए जब आपको यह पता लगे कि आपने इस तरह की गलती की है? कुछ लोग कभी भी यह स्वीकार नहीं करते कि वे गलती पर हैं, पर अपने विचारों को समर्थन देने के लिए नए-नए और प्रायः पारम्परिक रूप से असंगत तर्क खोजते रहते हैं—जैसे एडिंगटन ने कृष्ण विवर सिद्धान्त का विरोध करने में किया। दूसरे लोग यह दावा करते हैं कि उन्होंने वास्तव में कभी भी त्रुटिपूर्ण दृष्टिकोण का समर्थन नहीं किया या यदि किया भी तो केवल यह प्रमाणित करने के लिए किया कि यह असंगत है। मुझे यह काफी बेहतर और कुछ कम भ्रमकारी लगता है कि यदि आप लिखित रूप में यह स्वीकार कर लें कि आप गलती पर थे। इसका एक अच्छा उदाहरण आइंस्टाइन थे जिन्होंने ब्रह्माण्डिकीय स्थिरांक को अपने जीवन की सबसे बड़ी त्रुटि बताया, जिसे उन्होंने उस समय प्रवर्तित किया था, जब वे ब्रह्माण्ड के एक स्थिर मॉडल को बनाने का प्रयास कर रहे थे।

काल के तीर की ओर लौटने पर, यह प्रश्न अनुत्तरित रहता है : हम यह प्रेक्षण क्यों करते हैं कि ऊष्मागतिक व ब्रह्माण्डिकीय तीर एक ही दिशा की ओर इंगित करते हैं? या दूसरे शब्दों में, जिस दिशा मे ब्रह्माण्ड का विस्तार हो रहा है, काल की उसी दिशा में अराजकता या अव्यवस्था में वृद्धि क्यों होती है? यदि कोई यह विश्वास करता है कि ब्रह्माण्ड का विस्तार होगा तथा फिर पुनः संकुचन होगा जैसाकि सीमाविहीनता प्रस्ताव का तात्पर्य लगता है, तो प्रश्न यह उठता है कि हमारा अस्तित्व ब्रह्माण्ड की संकुचन की अवस्था की अपेक्षा विस्तार की अवस्था में ही क्यों होना चाहिए।

कोई इसका उत्तर क्षीण नृ-सिद्धान्त के आधार पर दे सकता है। संकुचन की अवस्था में परिस्थितियाँ प्रज्ञावान प्राणियों के अस्तित्व के लिए अनुकूल नहीं होतीं, जो यह प्रश्न पूछ सकते थे : अराजकता काल की उसी दिशा में क्यों बढ़ रही है, जिस दिशा में ब्रह्माण्ड का विस्तार हो रहा है? सीमाविहीनता के प्रस्ताव द्वारा परिकल्पित ब्रह्माण्ड की प्रारम्भिक अवस्थाओं में इसके फैलाव का अर्थ यह है कि ब्रह्माण्ड निश्चित रूप से क्रान्तिक दर से लगभग मेल खाती हुई दर पर विस्तृत हो रहा होगा, जिस पर यह पुनः ध्वस्त होने से बच सकता है और इसीलिए काफी लम्बे समय तक यह पुनः ध्वस्त नहीं होगा। उस समय तक सभी तारे जल चुके होंगे तथा उनके अन्दर के प्रोटोनों व न्यूट्रोनों का सम्भवतः प्रकाश-कणों में और विकिरण में क्षय हो चुका होगा। ब्रह्माण्ड एक लगभग पूर्ण अराजक अवस्था में होगा। काल का कोई भी प्रबल ऊष्मागतिक तीर नहीं होगा। अराजकता और अधिक नहीं बढ़ सकती, क्योंकि ब्रह्माण्ड पहले से ही एक लगभग पूर्ण अराजक अवस्था में होगा। तथापि, प्रज्ञावान जीवन को चलाने के लिए एक प्रबल ऊष्मागतिक तीर आवश्यक है। जीवित रहने के लिए, मानव प्राणियों को भोजन ग्रहण करने की आवश्यकता होती है, जो ऊर्जा का एक व्यवस्थित रूप है, और इसको फिर ऊष्मा में परिवर्तित करना होता है, जो ऊर्जा का एक अव्यवस्थित रूप है। इस तरह ब्रह्माण्ड की संकुचनशील अवस्था में प्रज्ञावान जीवन

का अस्तित्व नहीं हो सकता था। हम समय के ऊष्मागतिक तथा ब्रह्माण्डिकीय तीरों का एक ही दिशा में प्रेक्षण क्यों करते हैं, इसका यही स्पष्टीकरण है। ऐसा नहीं है कि ब्रह्माण्ड का विस्तार अराजकता या अव्यवस्था में वृद्धि कराता है, बल्कि स्थिति यह है कि सीमाविहीनता की दशा अव्यवस्था या अराजकता में वृद्धि कराती है तथा ब्रह्माण्ड की केवल विस्तृत होती हुई अवस्था में ही परिस्थितियों को प्रज्ञावान जीवन के अनुकूल बनाती है।

संक्षेप में, विज्ञान के नियम काल की अगली या पिछली दिशाओं के बीच कोई अन्तर स्थापित नहीं करते। हालाँकि काल के कम-से-कम तीन ऐसे तीर होते हैं जो भूतकाल को भविष्य से अलग करते हैं। वे इस प्रकार हैं : प्रथम, ऊष्मागतिक तीर—काल की वह दिशा जिसमें अराजकता या अव्यवस्था में वृद्धि हो जाती है, द्वितीय : मनोवैज्ञानिक तीर—काल की वह दिशा जिसमें हम भविष्य को नहीं बल्कि अपने भूतकाल को याद रखते हैं और तृतीय, ब्रह्माण्डिकीय तीर—काल की वह दिशा जिसमें ब्रह्माण्ड सिकुड़ता नहीं, बल्कि फैलता है। मैं यह बता चुका हूँ कि मनोवैज्ञानिक तीर आवश्यक रूप में वही होता है, जोकि ऊष्मागतिक तीर होता है, अतः ये दोनों सदैव एक ही दिशा में इंगित करेंगे। ब्रह्माण्ड के लिए सीमाविहीनता का प्रस्ताव काल के एक सुपरिभाषित ऊष्मागतिक तीर के अस्तित्व की भविष्यवाणी करता है क्योंकि ब्रह्माण्ड अवश्य ही एक निर्बाध, प्रवाही और क्रमबद्ध अवस्था में प्रारम्भ हुआ होगा। और ऊष्मागतिक तीर को ब्रह्माण्डिकीय तीर के पूर्णतः अनुरूप हम क्यों देखते हैं, इसका कारण यह है कि प्रज्ञावान प्राणियों का अस्तित्व केवल एक विस्तृत होती हुई अवस्था में ही हो सकता है। संकुचन अवस्था इसलिए प्रतिकूल होगी, क्योंकि इसमें काल का कोई प्रबल ऊष्मागतिक तीर नहीं होता।

ब्रह्माण्ड के रहस्यों को समझने में मानव-जाति की प्रगति ने एक बेहद अराजकता की ओर उन्मुख ब्रह्माण्ड में क्रमबद्ध अवस्था का एक छोटा-सा कोना स्थापित कर दिया है। यदि आप इस पुस्तक में अंकित प्रत्येक शब्द को याद रखते हैं, तो सूचना के लगभग 20 लाख प्रखण्डों को आपकी स्मृति अंकित कर चुकी होगी, आपके मस्तिष्क में क्रमबद्ध अवस्था में लगभग 20 लाख इकाइयों (units) की वृद्धि हो चुकी होगी। परन्तु जब आप पुस्तक पढ़ रहे होंगे, आपने भोजन के रूप में व्यवस्थित ऊर्जा की कम-से-कम एक हजार कैलोरियों को अव्यवस्थित ऊर्जा में, उस ऊष्मा के रूप में परिवर्तित कर दिया होगा जो पसीने तथा संवहन (convection) के द्वारा आप अपने चारों ओर के वायुमण्डल में गँवा देते हैं। इससे ब्रह्माण्ड की अराजकता में लगभग 2×10^{25} (2 के बाद 25 शून्य) की वृद्धि हो जाएगी, या आपके मस्तिष्क की क्रमबद्ध अवस्था (order) में 10^{19} (1 के बाद 19 शून्य) गुना वृद्धि हो जाएगी—और ऐसा उस स्थिति में होगा यदि आप इस पुस्तक में वर्णित प्रत्येक वस्तु को याद रखते हैं। अगले से अगले अध्याय में, मैं आपके मस्तिष्क में क्रमबद्ध अवस्था में थोड़ी-सी और वृद्धि करने का प्रयास यह स्पष्ट करके करूँगा कि किस प्रकार लोग एक ऐसे पूर्ण एकीकृत सिद्धान्त, जो ब्रह्माण्ड में निहित प्रत्येक वस्तु की व्याख्या कर सके, को निरूपित करने के लिए, मेरे द्वारा परिचर्चित आंशिक सिद्धान्तों को, परस्पर सामंजस्य स्थापित करके, जोड़ने का प्रयास कर रहे हैं।

अध्याय *10*

वर्म होल तथा काल यात्रा

पिछले अध्याय में हमने यह चर्चा की थी कि हम काल को आगे की दिशा में अग्रसर होते हुए क्यों देखते हैं : अव्यवस्था में वृद्धि क्यों होती है, और हम भूतकाल को ही क्यों याद रखते हैं, भविष्य को क्यों नहीं! काल के सम्बन्ध में यह माना गया, मानो यह कोई रेल की सीधी पटरी हो, जिस पर कोई या तो एक तरफ चल सकता है या फिर दूसरी तरफ।

परन्तु उस स्थिति में क्या हो यदि रेल की पटरी चक्करदार हो और इसमें से शाखाएँ निकलती हों, जिससे कि कोई रेलगाड़ी आगे जाकर फिर उसी स्टेशन पर आती रहे, जहाँ से वह पहले ही गुजर चुकी थी? दूसरे शब्दों में, क्या किसी के लिए भूतकाल या भविष्यकाल में यात्रा करना सम्भव हो सकेगा?

एच.जी. वेल्स ने अपनी पुस्तक 'द टाइम मशीन' में अन्य अनेक विज्ञान कथाकारों की भाँति इन सम्भावनाओं की खोजबीन की है। विज्ञान कथा-साहित्य की बहुत सी धारणाएँ जैसे चन्द्रमा की यात्रा और पनडुब्बियाँ अब वैज्ञानिक सत्य बन चुके हैं। अतः काल यात्रा की क्या सम्भावनाएँ हैं?

भौतिक़ी के नियम लोगों के लिए काल में यात्रा करना वास्तव में सम्भव बना सकेंगे, इस तथ्य के प्रथम संकेत सन् 1949 में उस समय मिले थे, जब कुर्त गोदेल (Kurt Gödel) ने आपेक्षिकता के सामान्य सिद्धान्त द्वारा अनुमत एक नया दिक्-काल खोजा था। कुर्त गोदेल एक गणितज्ञ थे, जो यह सिद्ध करने के लिए प्रसिद्ध थे कि सभी सही कथनों को सिद्ध करना असम्भव है, चाहे आप अंकगणित जैसे किसी हर तरह से पके-पकाए विषय में ही, सभी सही कथनों को सिद्ध करने के प्रयासों तक स्वयं को सीमित कर लें। अनिश्चितता के सिद्धान्त के समान ही, गोदेल का अपूर्णता प्रमेय (incompleteness theorem) ब्रह्माण्ड के सम्बन्ध में पूर्वानुमान लगाने तथा इसे समझने की हमारी सक्षमता पर एक बुनियादी सीमा बाँध सकता है, परन्तु एक पूर्ण एकीकृत सिद्धान्त की हमारी खोज में कम-से-कम अब तक यह कोई अवरोध प्रतीत नहीं हुआ है।

गोदेल को आपेक्षिकता के सामान्य सिद्धान्त के बारे में उस समय जानकारी मिली, जब उन्होंने तथा आइंस्टाइन ने अपने बाद के वर्ष प्रिंसटन में उच्च अध्ययन संस्थान (Institute for Advanced Study) में व्यतीत किए। उसके दिक्-काल में यह विचित्र गुणधर्म निहित था कि इस संधारणा में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड घूर्णनशील था। शायद कोई यह पूछे कि 'घूर्णन किसके सापेक्ष?' इसका उत्तर यह है कि दूरस्थ पदार्थ उन दिशाओं के सापेक्ष घूर्णन कर रहा होगा, जिनकी ओर घूर्णक्षस्थाप (gyroscopes) या घूमते लट्टू इंगित करते हैं।

इसका आनुषंगिक निष्कर्ष यह था कि अन्तरिक्ष यान से यात्रा पर प्रस्थान करने से पूर्व ही किसी के लिए पृथ्वी पर लौट आना सम्भव हो जाता। इस लक्षण ने आइंस्टाइन को वास्तव में परेशान कर दिया था, जिन्होंने यह सोचा था कि आपेक्षिकता का सामान्य सिद्धान्त काल यात्रा को सम्भव नहीं बना सकेगा। बहरहाल, यदि अनिश्चितता के सिद्धान्त तथा गुरुत्वीय निपात (gravitational collapse) के प्रति आइंस्टाइन के दुराग्रहपूर्ण विरोध को ध्यान में रखें, तो हो सकता है कि यह एक उत्साहवर्द्धक संकेत हो। गोदेल ने जो समाधान खोजा था वह हमारे ब्रह्माण्ड

के अनुरूप नहीं है, क्योंकि हम यह प्रमाणित कर सकते हैं कि ब्रह्माण्ड घूर्णन नहीं कर रहा है। इसमें उस ब्रह्माण्डिकीय स्थिरांक का मान भी शून्येतर (non-zero) था, जिसे आइंस्टाइन ने उस समय प्रवर्तित किया था, जब वह यह सोचते थे कि ब्रह्माण्ड अपरिवर्तनीय है। हब्बल द्वारा ब्रह्माण्ड के विस्तार की खोज के बाद ब्रह्माण्डिकीय स्थिरांक की कोई आवश्यकता नहीं रह गई थी और इसे अब सामान्यतः शून्य माना जाता है। फिर भी, तब से ऐसे दूसरे अधिक तर्कसंगत दिक्-काल खोजे जा चुके हैं, जो आपेक्षिकता के सामान्य सिद्धान्त द्वारा अनुमत हैं और जो भूतकाल में यात्रा करना सम्भव बनाते हैं। उनमें से एक घूर्णन करते हुए कृष्ण विवर के अभ्यन्तर में है। एक और दिक्-काल है, जिसमें उच्च गति से एक-दूसरे के पास से तेजी से गुजरती हुई दो ब्रह्माण्डीय डोरें होती हैं। जैसाकि इनके नाम से ही स्पष्ट है, ब्रह्माण्डीय डोर वे वस्तुएँ हैं, जो धागे के समान इसलिए होती हैं, क्योंकि उनमें लम्बाई होती है परन्तु एक अत्यंत लघु अनुप्रस्थ काट (cross-section) भी उनमें होती है। वस्तुतः वे रबर के छल्लों से ज्यादा मिलती हैं, क्योंकि उन पर 10^{24} (1 के बाद 24 शून्य) टन के बराबर विशाल दबाव कार्य कर रहा होता है। पृथ्वी से जुड़ी एक ब्रह्माण्डीय डोर (cosmic string) पृथ्वी की गति को एक सेकिण्ड के 1/30वें भाग में 0 से 60 मील प्रति घण्टे का त्वरण दे सकती है। ब्रह्माण्डीय डोर शुद्ध विज्ञान-कथा जैसी लग सकती है, परन्तु यह विश्वास करने के ठोस कारण हैं कि उनकी उत्पत्ति अध्याय-5 में चर्चित सममिति विखण्डन के परिणामस्वरूप प्रारम्भिक ब्रह्माण्ड में हो सकती थी। क्योंकि वे विशाल तनाव के प्रभाव में होती हैं तथा किसी भी संरूपण में उनकी उत्पत्ति हो सकती है, इसलिए जब वे सीधी या सुलझी हुई होती हैं, तो शायद बहुत उच्च वेग पर त्वरण कर सकती हैं।

गोदेल समाधान तथा दिक्-काल की ब्रह्माण्डीय डोर इतने विकृत रूप में शुरू होते हैं कि उनमें होकर भूतकाल में यात्रा सदैव सम्भव थी। ईश्वर ने शायद ऐसे ही विकृत ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति की होगी, परन्तु हमारे पास यह विश्वास करने का कोई कारण नहीं है कि उसने ऐसा किया। सूक्ष्म-तरंग पृष्ठभूमि के प्रेक्षण और हल्के तत्त्वों की प्रचुरता यह संकेत करती है कि प्रारम्भिक ब्रह्माण्ड में उस प्रकार की वक्रता नहीं थी, जो काल यात्रा को सम्भव बनाने के लिए आवश्यक है। यदि सीमाविहीनता प्रस्ताव सही है, तो यही निष्कर्ष सैद्धान्तिक आधारों पर भी निकलता है। अतः प्रश्न यह है कि : यदि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति बिना उस प्रकार की वक्रता के हुई है, जो काल यात्रा के लिए आवश्यक है, तब क्या बाद में हम दिक्-काल के स्थानीय क्षेत्रों को पर्याप्त रूप से इतना विकृत कर सकते हैं कि काल यात्रा सम्भव हो सके?

इसी से गहरी जुड़ी एक समस्या है, जो विज्ञान-कथा लेखकों के लिए भी चिन्ता का विषय है, कि क्या तीव्र-गति से तारों और मन्दाकिनियों के आर-पार यात्रा करना सम्भव है। आपेक्षिकता के सिद्धान्त के अनुसार, प्रकाश की गति से तेज कोई वस्तु नहीं चल सकती। अतः यदि हमने कोई अन्तरिक्ष यान अपने निकटतम पड़ोसी तारे, एल्फा सेण्टौरी, जो हमसे लगभग चार प्रकाश वर्ष दूर है, पर भी भेजा तो यात्रियों के लौटकर आने तथा हमें यह बताने में कि उन्होंने वहाँ क्या देखा, लगभग आठ वर्ष लग जाएँगे। यदि अपनी आकाशगंगा के केन्द्र की ओर जाने का अभियान हो, तो लौटकर आने में कम-से-कम एक लाख वर्ष लग जाएँगे। आपेक्षिकता का सिद्धान्त एक सान्त्वना अवश्य प्रदान करता है। यह दूसरे अध्याय में उल्लिखित तथाकथित जुड़वाँ विरोधाभास है।

क्योंकि काल का कोई निश्चित मानक नहीं है, बल्कि सभी प्रेक्षकों का अपना-अपना निजी काल होता है, जिसे उनकी व्यक्तिगत घड़ियाँ मापित करती हैं, इसलिए यह सम्भव है कि पृथ्वी पर रह गए व्यक्तियों की अपेक्षा अन्तरिक्ष यात्रियों के लिए यह यात्रा-काल काफी छोटा प्रतीत हो। परन्तु अन्तरिक्ष-यात्रा से केवल कुछ वर्ष बूढ़ा होकर लौटने में आपको उस समय कोई हर्ष नहीं होगा, जब आप यह पाएँगे कि आपके द्वारा उस समय पृथ्वी पर छोड़े गए सभी व्यक्तियों को मरे हुए भी हजारों वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। इसलिए अपनी कहानियों में कोई मानव रुचि बनाए रखने के लिए, विज्ञान-कथा साहित्यकारों को यह मानना पड़ा कि एक दिन हम प्रकाश की गति से भी अधिक तेज यात्रा करने का तरीका ढूँढ़ लेंगे। इनमें से अधिकांश लेखक जिस तथ्य की

अनदेखी करते हुए प्रतीत होते हैं, वह यह है कि यदि आप प्रकाश से भी तेज गति से यात्रा कर सकते हैं, तो आपेक्षिकता के सिद्धान्त का अर्थ यह निकलता है कि आप काल में विपरीत दिशा में भी यात्रा कर सकते हैं, जैसाकि निम्नलिखित तुकांत हँसिका कहती है:

वाइट की एक युवा महिला थी,
प्रकाश से भी जिसकी तीव्र गति थी।
कर गई एक दिन वह आपेक्षिकता से प्रस्थान
और आ गई लौटकर जब,
जाने से पहले के दिन का हुआ था अवसान।

ध्यान देने की बात यह है कि आपेक्षिकता का सिद्धान्त यह कहता है कि काल का ऐसा कोई एक निश्चित माप नहीं होता, जिस पर सभी प्रेक्षक सहमत हो जाएँगे। बल्कि प्रत्येक प्रेक्षक का काल का अपना निजी माप होता है। यदि प्रकाश के वेग से कम वेग पर यात्रा करते हुए किसी अन्तरिक्ष यान के लिए घटना 'क' से (मान लीजिए, सन् 2012 में ओलम्पिक खेलों की 100 मीटर दौड़ का फाइनल) घटना 'ख' तक (मान लीजिए, एल्का सेण्टोरी की कांग्रेस की 1,00,004वीं बैठक का उद्‌घाटन समारोह) पहुँचना सम्भव है, तब सभी प्रेक्षक इस बात पर सहमत होंगे कि उनके द्वारा मापित समयों के अनुसार घटना 'क' घटना 'ख' से पहले घटित हुई थी। यह भी मान लीजिए कि कांग्रेस तक दौड़ का समाचार पहुँचाने के लिए यदि अन्तरिक्ष यान को प्रकाश के वेग से भी तेज चलना पड़ता, तब विभिन्न वेगों पर चल रहे प्रेक्षक अपने-अपने समय के अनुसार इस सम्बन्ध में असहमत हो सकते हैं कि घटना 'क' घटना 'ख' से पहले घटित हुई या बाद में। उस प्रेक्षक के समयानुसार जो पृथ्वी के सन्दर्भ में विश्रामावस्था में है, यह हो सकता है कि कांग्रेस का उद्‌घाटन समारोह दौड़ के बाद प्रारम्भ हुआ हो। इस तरह, यह प्रेक्षक यह सोचेगा कि एक अन्तरिक्ष यान घटना 'क' से घटना 'ख' तक समय से केवल तभी पहुँच सकता है, जबकि यह प्रकाश-वेग की वेग-सीमा की उपेक्षा कर सके। बहरहाल, एल्फा सेण्टोरी पर लगभग प्रकाश के वेग से पृथ्वी से दूर जाते हुए किसी प्रेक्षक को यह प्रतीत होगा कि घटना 'ख'—कांग्रेस का उद्‌घाटन समारोह—घटना 'क'—100 मीटर की दौड़—से पहले घटित होगी। आपेक्षिकता का सिद्धान्त यह कहता है कि विभिन्न वेगों पर चलते हुए प्रेक्षकों को भौतिकी के नियम एक समान ही दिखाई देते हैं।

इस तथ्य का प्रयोग द्वारा भली-भाँति परीक्षण कर लिया गया है और चाहे हम आपेक्षिकता के सिद्धान्त के स्थान पर कोई अन्य और अधिक उन्नत सिद्धान्त खोज भी लेते हैं, तब भी इस अभिलक्षण के बने रहने की सम्भावना है। इस प्रकार, गतिमान प्रेक्षक यह कहेगा कि यदि प्रकाश से भी अधिक तीव्र वेग से यात्रा सम्भव है, तब घटना 'ख' (कांग्रेस के उद्‌घाटन समारोह) से घटना 'क' (100 मीटर की दौड़) तक पहुँचना सम्भव हो जाना चाहिए। यदि कोई थोड़ा-सा और अधिक तीव्र वेग से चलता, तो वह दौड़ से पहले ही वापस भी आ सकता था, तथा इस पक्की जानकारी के आधार पर कि वह जीतेगा, इस दौड़ पर दाँव भी लगा सकता था।

मगर प्रकाश के वेग द्वारा आरोपित अवरोध को तोड़ने में एक समस्या है। आपेक्षिकता का सिद्धान्त यह कहता है कि अन्तरिक्ष यान की गति बढ़ाने के लिए आवश्यक रॉकेट शक्ति, उस स्थिति में निरन्तर बढ़ती जाती है, जितना यान प्रकाश के वेग के निकट पहुँचता जाता है। हमारे पास इसके प्रायोगिक प्रमाण हैं; अन्तरिक्ष यानों से तो नहीं, परन्तु यूरोपीय राष्ट्रों के उच्च ऊर्जा प्रयोगशाला संगठन, सर्न (CERN) या फर्मीलैब (FERMILAB) में प्रयुक्त कण-त्वरित्रों में मूल कणों के साथ यह प्रमाण प्राप्त किए गए हैं। हम कणों को प्रकाश के वेग के 99.99 प्रतिशत तक त्वरित कर सकते हैं, परन्तु फिर भी चाहे हम कितनी ही शक्ति लगाएँ, हम उन्हें प्रकाश के वेग से अधिक त्वरित नहीं कर सकते। यही बात अन्तरिक्ष यानों पर भी लागू होती है : इस बात का कोई महत्त्व नहीं है कि उसमें कितनी रॉकेट शक्ति है, परन्तु यह प्रकाश की गति से अधिक त्वरित नहीं किया जा सकता।

इससे द्रुतगामी अन्तरिक्ष यात्रा तथा काल के विपरीत क्रम मैं (back in time) यात्रा,

दोनों की सम्भावनाएँ समाप्त होती प्रतीत होती हैं। बहरहाल, एक सम्भावित मार्ग है। यह हो सकता है कि कोई दिक्-काल को विकृत कर दे जिससे घटना ‘क’ और ‘ख’ के मध्य एक लघु पथ बन सके। ऐसा करने का एक तरीका ‘क’ और ‘ख’ के मध्य सुरंग (वर्म होल) बनाने का होगा। जैसाकि नाम से ही स्पष्ट है कि सुरंग दिक्-काल की एक ऐसी पतली नलिका होती है, जो एक-दूसरे से बहुत दूर लगभग दो सपाट क्षेत्रों को जोड़ सकती है।

यह कोई आवश्यक नहीं है कि सुरंग से होकर आद्योपान्त दूरी तथा लगभग समतल पृष्ठभूमि में इसके सिरों के पृथक्करण के मध्य कोई सम्बन्ध हो। अतः कोई एक ऐसी सुरंग के निर्माण की कल्पना कर सकता है या उसे खोज सकता है जो सौरमण्डल के पड़ोस से एल्फा सेण्टौरी तक ले जाए। साधारण आकाश में चाहे पृथ्वी और एल्फा सेण्टौरी एक-दूसरे से 20 खरब मील दूर हैं, परन्तु सुरंग से यह दूरी दसियों लाख मील से ज्यादा नहीं होगी। इसके माध्यम से 100 मीटर दौड़ का समाचार कांग्रेस के उद्घाटन समारोह तक पहुँचना सम्भव हो जाएगा। परन्तु फिर, पृथ्वी की ओर आते हुए किसी प्रेक्षक को एक और सुरंग खोजनी होगी जो उसे एल्फा सेण्टौरी पर कांग्रेस के उद्घाटन समारोह से वापस पृथ्वी पर दौड़ शुरू होने से पहले ही पहुँचने में समर्थ बना दे। इसलिए, प्रकाश से तीव्र यात्रा के किसी अन्य सम्भव स्वरूप के समान भूतकाल में यात्रा करना सम्भव बनाने के लिए दिक्-काल में सुरंगें बनाना जरूरी होगा।

दिक्-काल के विभिन्न क्षेत्रों के बीच सुरंगों की अवधारणा कोई विज्ञान-कथाकारों का आविष्कार नहीं था, बल्कि यह बहुत सम्मानजनक स्रोत से अवतरित हुई थी।

सन् 1935 में, आइंस्टाइन और नाथन रोजेन ने एक शोध-पत्र लिखा था, जिसमें उन्होंने यह स्पष्ट किया कि आपेक्षिकता का सामान्य सिद्धान्त एक ऐसी व्यवस्था के अस्तित्व को सम्भव बनाने की अनुमति देता है, जिसे उन्होंने ‘सेतु’ कहा, परन्तु जिन्हें अब ‘वर्म होल’ या कृमि-छिद्र कहा जाता है (और यहाँ इस हिन्दी रूपान्तर में ‘सुरंग’ कहा गया है।—अनु.)। आइंस्टाइन-रोजेन सेतु इतनी देर तक नहीं टिक पाता कि उसमें से अन्तरिक्ष यान गुजर जाए। उससे पहले ही सेतु उखाड़ लिया जाता और यान विलक्षणता बिन्दु या सिंगुलैरिटी में चला जाता। बहरहाल, यह सुझाव दिया गया है कि किसी उन्नत सभ्यता के लिए शायद किसी कृमि-छिद्र या सुरंग को खुला रखना सम्भव हो सकेगा। ऐसा करने के लिए या किसी और तरीके से दिक्-काल को विकृत करने के लिए जिससे कि काल यात्रा सम्भव हो सके, कोई यह कह सकता है कि उसे घोड़े की काठी के पृष्ठ-तल के समान ऋणात्मक वक्रता से युक्त दिक्-काल के एक क्षेत्र की आवश्यकता है। साधारण पदार्थ जिसमें धनात्मक ऊर्जा घनत्व होता है, दिक्-काल को गोल पिण्ड के पृष्ठ-तल के समान धनात्मक वक्रता प्रदान करता है। अतः दिक्-काल को इस प्रकार से विकृत करने के लिए कि वह भूतकाल में यात्रा करना सम्भव बना दे, जिस वस्तु की आवश्यकता होती है, वह पदार्थ ऋणात्मक ऊर्जा घनत्व से युक्त होना चाहिए।

ऊर्जा किसी हद तक पूँजी के समान होती है : यदि आपके पास धनात्मक शेष राशि है, तब आप इसका विभिन्न प्रकार से आवंटन कर सकते हैं, परन्तु उन चिरसम्मत सिद्धान्तों के अनुसार जिनमें इस शताब्दी के प्रारम्भ में विश्वास किया जाता था, आपको जमा से अधिक रकम निकालने की अनुमति नहीं थी। अतः ये चिरसम्मत सिद्धान्त काल यात्रा की किसी भी सम्भावना को समाप्त कर देते। जैसाकि पिछले अध्यायों में बताया जा चुका है, इन चिरसम्मत सिद्धान्तों के स्थान पर अनिश्चितता के सिद्धान्त पर आधारित क्वाण्टम नियम स्थापित कर दिए गए। ये क्वाण्टम नियम अपेक्षाकृत अधिक उदार हैं तथा आपको इस शर्त पर एक या दो खातों से जमा से अधिक निकालने की अनुमति देते हैं कि कुल बाकी रकम धनात्मक है। दूसरे शब्दों में, क्वाण्टम सिद्धान्त ऊर्जा-घनत्व को इस शर्त पर कुछ स्थानों में ऋणात्मक होने की अनुमति देता है कि उसकी क्षति दूसरे स्थानों पर धनात्मक ऊर्जा घनत्वों द्वारा पूरी कर दी जाती है, जिससे कि कुल ऊर्जा धनात्मक बनी रहती है। क्वाण्टम सिद्धान्त किस प्रकार से ऋणात्मक ऊर्जा घनत्वों की अनुमति दे सकते हैं, इसका एक उदाहरण केसीमिर प्रभाव (Casimir effect) द्वारा दिया जाता है। जैसाकि हमने सातवें अध्याय में देखा, जिसे हम रिक्त आकाश या शून्य समझते हैं वह भी

आभासी कणों और प्रतिकणों के जोड़ों से भरा हुआ है। ये कण-प्रतिकण साथ-साथ प्रकट होते हैं, एक-दूसरे से दूर हटते हैं, फिर दोनों लौटकर आते हैं तथा एक-दूसरे को नष्ट कर देते हैं। अब, मान लीजिए, किसी के पास एक-दूसरे के बहुत ही निकट रखी हुई दो समान्तर धातु-पट्टियाँ हैं। प्रकाश-कणों के लिए अथवा आभासी फोटोनों (virtual photons) के लिए ये धातु-पट्टियाँ दर्पणों के समान कार्य करेंगी। वस्तुतः, वे किसी सीमा तक उस आर्गन पाइप बाजे के समान होंगी जोकि कुछ निश्चित स्वरों पर ही अनुनादित होता है और अपने बीच एक कोटर (cavity) का निर्माण कर लेंगी। इसका अर्थ यह हुआ कि आभासी फोटोन केवल तभी धातु-पट्टियों के बीच के स्थान में घटित हो सकते हैं, यदि यह बीच की दूरी तरंग-दैर्घ्यों (एक तरंग के शीर्ष से दूसरी तरंग के शीर्ष तक की दूरी) का पूर्णांक हों। यदि किसी कोटर की चौड़ाई, तरंग-दैर्घ्यों की कुल संख्या जमा एक तरंग-दैर्घ्य का अंश (fraction) हो, तब धातु-पट्टियों के बीच आगे-पीछे कुछ परावर्तनों के बाद किसी एक तरंग के शीर्षों का किसी दूसरी तरंग की द्रोणिकाओं के साथ संपात हो जाएगा और तरंगें एक-दूसरे को निरस्त कर देंगी।

क्योंकि धातु-पट्टियों के बीच काल्पनिक फोटोनों की केवल अनुनादित तरंग-दैर्घ्य ही हो सकती है, इसीलिए धातु-पट्टियों के बाहर के क्षेत्र की अपेक्षा जहाँ आभासी फोटोनों का कोई भी तरंग-दैर्घ्य हो सकता है, वहाँ उससे थोड़े कम फोटोन होंगे। तदनुसार धातु-पट्टियों के बाहरी तल की अपेक्षा उनके अन्दर के तल से टकरानेवाले आभासी फोटोनों की संख्या कुछ कम होगी। अतः कोई धातु-पट्टियों पर एक ऐसे बल की अपेक्षा कर सकता है, जो उन्हें एक-दूसरे की ओर धकलेगा। इस बल का वास्तव में पता लगा लिया गया है और इसका मान पूर्वानुमानित है। इस प्रकार हमारे पास यह प्रायोगिक प्रमाण है कि आभासी कणों का अस्तित्व है तथा वे अपना वास्तविक प्रभाव डालते हैं।

धातु-पट्टियों के बीच आभासी फोटोनों की संख्या अपेक्षाकृत कम होती है—इस तथ्य का तात्पर्य यह है कि उनका ऊर्जा-घनत्व अन्यत्र की अपेक्षा कम होगा। परन्तु धातु-पट्टियों से बहुत दूर 'शून्य' आकाश में कुल ऊर्जा-घनत्व शून्य होना चाहिए, नहीं तो ऊर्जा-घनत्व आकाश को विकृत कर देगा और यह लगभग समतल नहीं होगा। इसलिए, यदि दूर के ऊर्जा घनत्व की अपेक्षा धातु-पट्टियों के बीच का ऊर्जा-घनत्व कम है तो यह ऋणात्मक होना चाहिए।

इस प्रकार हमारे पास दोनों ही बातों के लिए प्रायोगिक प्रमाण हैं कि दिक्-काल वक्रित या कुंचित हो सकता है (ग्रहणों के दौरान प्रकाश के मुड़ जाने के रूप में) तथा काल यात्रा को सम्भव बनाने के लिए इसे आवश्यकतानुसार वक्रित भी किया जा सकता है (केसीमिर प्रभाव के रूप में)। इसलिए, शायद कोई यह आशा करे कि ज्यों-ज्यों हम विज्ञान और प्रौद्योगिकी में उन्नति करते जाएँगे, हम अन्ततः काल यंत्र (time machine) बनाने में सफल हो जाएँगे। परन्तु यदि यह सम्भव है, तो भविष्य से कोई वापस क्यों नहीं आया है और उसने हमें यह क्यों नहीं बताया कि यह किस प्रकार सम्भव है? विकास की हमारी वर्तमान गई-गुजरी स्थिति में हमें काल यात्रा का रहस्य देने में बुद्धिमानी क्यों नहीं होगी, इसके भी कुछ अच्छे कारण होंगे, परन्तु यदि मानव-स्वभाव में आमूल परिवर्तन नहीं होता है, तो यह विश्वास करना कठिन है कि भविष्य में कोई आगन्तुक आकर यह रहस्य नहीं खोलेगा। निस्सन्देह कुछ लोग यह दावा करेंगे कि उड़न-तश्तरियों (UFO) का दिखाई देना इस बात का प्रमाण है कि भविष्य से लोग या अन्य ग्रहवासी (aliens) हमसे भेंट करने के लिए आते रहे हैं (यदि अन्य ग्रहवासी तर्कसंगत काल में यहाँ पहुँच जाते, तो उन्हें प्रकाश से भी अधिक तीव्र वेग पर यात्रा करने की आवश्यकता होती, इसलिए ये दो सम्भावनाएँ समतुल्य हैं)।

बहरहाल, मैं सोचता हूँ कि अन्य ग्रहों या भविष्य से आए लोगों का यहाँ आगमन और अधिक स्पष्ट और सम्भवतः और अधिक अप्रिय हुआ होता। यदि वे अपना थोड़ा-सा भी रहस्योद्घाटन करने जा रहे हैं, तो वे केवल उन लोगों के समक्ष ऐसा क्यों कर रहे हैं, जो साक्षी के रूप में विश्वसनीय नहीं माने जाते? यदि वे किसी बड़े संकट के बारे में हमें सचेत करने का प्रयास कर रहे हैं, तो वे बहुत प्रभावशाली नहीं हो पा रहे।

भविष्य से आगन्तुकों की अनुपस्थिति को स्पष्ट करने का एक सम्भव तरीका यह कहना होगा कि भूतकाल तो स्थिर है, क्योंकि हम उसका प्रेक्षण कर चुके हैं और यह देख चुके हैं कि इसमें उस प्रकार की विकृति नहीं है, जो भविष्य से वापस यात्रा को सम्भव बनाने के लिए आवश्यक है। दूसरी ओर, भविष्य अज्ञात एवं उन्मुक्त है, इसलिए उसमें सम्भवतः आवश्यक वक्रता हो सकती है। इसका अर्थ यह होगा कि कोई भी काल यात्रा भविष्य तक सीमित होगी। वर्तमान समय में कप्तान किर्क (Captain Kirk) और इण्टरप्राइज (Enterprise) अन्तरिक्ष यान के यहाँ पहुँचने का संयोग नहीं होगा।

इससे सम्भवतः यह स्पष्ट हो जाएगा कि भविष्य से आए पर्यटकों की भारी भीड़ यहाँ क्यों नहीं जुटी है? परन्तु इससे उन समस्याओं से नहीं बचा जा सकेगा जो उस स्थिति में उठेंगी, जब यदि कोई काल में उल्टी यात्रा करने में तथा इतिहास बदलने में समर्थ हो जाए। उदाहरण के लिए मान लीजिए, आपने काल में उल्टी यात्रा की और अपने पूर्व पितामहों में से किसी एक की उस समय हत्या कर दी, जब वह मात्र बालक था। इस उलटबाँसी के कई रूपान्तर हैं, परन्तु वे आवश्यक रूप से समतुल्य हैं : यदि कोई भूतकाल में परिवर्तन करने में समर्थ हो, तो उसे बहुत सारी असंगतियाँ मिलेंगी।

काल यात्रा द्वारा प्रस्तुत की गई इन उलटबाँसियों के दो सम्भावित समाधान प्रतीत होते हैं। एक को मैं संगत इतिवृत्त उपगमन कहूँगा। इसके अनुसार चाहे दिक्-काल इतना विकृत हो जाए कि भूतकाल में यात्रा करना सम्भव हो जाए, तब भी दिक्-काल में क्या घटित होता है, यह निश्चित रूप से भौतिकी के नियमों का संगत समाधान होना चाहिए। इस दृष्टिकोण के अनुसार, आप काल में उल्टी यात्रा उस समय तक नहीं कर सकते, जब तक कि इतिहास यह प्रमाणित न कर दे कि आप पहले ही भूतकाल में आ चुके थे, और उस दौरान, आपने अपने पूर्व पितामहों में से किसी की हत्या नहीं की थी या ऐसा कोई अन्य कृत्य नहीं किया था जो वर्तमान में आपकी सामयिक स्थिति के साथ कोई अन्तर्विरोध उत्पन्न कर दे। इसके अतिरिक्त, जब आपने उल्टी यात्रा की थी, तब आप अभिलिखित इतिहास को परिवर्तित करने में समर्थ नहीं हो सकते थे। इसका अर्थ यह हुआ कि मनमर्जी का कार्य करने की आपको कोई आजादी नहीं होगी। निस्सन्देह कोई यह कह सकता है कि मनमर्जी का कुछ भी कर पाना हर हालत में एक मिथ्या धारणा है। यदि वास्तव में ऐसा कोई पूर्ण एकीकृत सिद्धान्त है जो ब्रह्माण्ड में प्रत्येक वस्तु को नियन्त्रित करता है, तो सम्भवतः यह आपके कार्यों को भी निर्धारित करता है। परन्तु यह ऐसा इस प्रकार करता है कि मनुष्य के समान जटिल किसी जीवधारी के लिए इसकी गणना करना असम्भव है। हमारे यह कहने का कि मनुष्यों के पास अपनी मनमर्जी करने की आजादी है, एक कारण यह है कि हम यह भविष्यवाणी नहीं कर सकते कि वे क्या करेंगे। फिर भी यदि मनुष्य किसी अन्तरिक्ष यान में चला जाता है और अपने प्रस्थान करने से पूर्व ही लौट आता है, तो हम यह भविष्यवाणी कर सकेंगे कि वह क्या करेगा, क्योंकि यह अभिलिखित इतिहास का ही अंश होगा। इस तरह, उस स्थिति में, काल यात्री के पास मनमर्जी का करने की आजादी नहीं होगी।

काल यात्रा के विरोधाभासों के समाधान का दूसरा सम्भावित मार्ग, 'वैकल्पिक इतिवृत्त प्राक्कल्पना' (alternative histories hypothesis) कहा जा सकता है। यहाँ अवधारणा यह है कि जब काल यात्री भूतकाल में लौटकर जाते हैं, तो वे वैकल्पिक इतिवृत्तों में प्रवेश करते हैं, जो अभिलिखित इतिहास से भिन्न होते हैं। इस तरह वे अपने पिछले इतिहास के साथ अनुकूलता के दबाव के बिना, स्वतन्त्र रूप से कार्य कर सकते हैं। 'बैक टू द फ्यूचर' (वापस भविष्य की ओर) फिल्मों में स्टीबन स्पीलबर्ग (Steven Spielberg) ने इस विचार के साथ एक मजाक किया था : इस फिल्म का नायक माल्टी मैक फ्लाई समय में उल्टा चला गया था और उसने अपने माता-पिता के प्रेम-प्रसंग को और अधिक सन्तोषजनक रूप में बदल दिया था।

वैकल्पिक इतिवृत्त प्राक्कल्पना, थोड़ा-बहुत इतिवृत्तों के योगफल के रूप में क्वाण्टम सिद्धान्त की अभिव्यक्ति के रिचर्ड फाइनमैन के तरीके के समान लगती है, जिसका उल्लेख अध्याय 4 व 8 में किया गया है। इसमें कहा गया था कि ब्रह्माण्ड का कोई एक अकेला इतिवृत्त

नहीं होता, बल्कि इसका हर सम्भव इतिवृत्त होता है, और हर एक की अपनी प्रायिकता होती है; हालाँकि, फाइनमैन के प्रस्ताव और वैकल्पिक इतिवृत्तों के मध्य एक महत्त्वपूर्ण अन्तर मालूम पड़ता है। फाइनमैन के योगफल में, प्रत्येक इतिवृत्त एक पूर्ण दिक्-काल और उसके अन्दर की प्रत्येक वस्तु को समाविष्ट करता है। दिक्-काल इतना विकृत हो सकता है कि एक रॉकेट में भूतकाल में यात्रा करना सम्भव है। परन्तु रॉकेट उसी दिक्-काल में रहेगा और इसीलिए इतिवृत्त भी वही रहेगा, जिसे संगत होना ही होगा। इस प्रकार से फाइनमैन का इतिवृत्तों का योगफल प्रस्ताव वैकल्पिक इतिवृत्तों को नहीं बल्कि संगत इतिवृत्त प्राक्कल्पना का समर्थन करता हुआ प्रतीत होता है।

फाइनमैन का इतिवृत्तों का योगफल अति सूक्ष्म स्तर (Microscopic scale) पर भूतकाल में यात्रा करने की अनुमति देता है। नौवें अध्याय में हमने यह देखा कि C, P और T संक्रियाओं के संयोजन द्वारा विज्ञान के नियम अपरिवर्तित रहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि वामावर्त्त (anticlockwise) दिशा में घूर्णन करते हुए तथा 'क' से 'ख' की ओर जाते हुए एक प्रतिकण को दक्षिणावर्त्त (clockwise) दिशा में घूर्णन करते हुए तथा 'ख' से 'क' की ओर काल में उल्टा चलते हुए एक सामान्य कण के रूप में भी देखा जा सकता है। इसी प्रकार काल में आगे की ओर चलता हुआ एक सामान्य कण, काल में उल्टी ओर चलते हुए एक प्रतिकण के समतुल्य है। जैसाकि इस अध्याय में तथा सातवें अध्याय में चर्चा की जा चुकी है, कि 'शून्य' आकाश आभासी कणों तथा प्रतिकणों के जोड़ों से भरा हुआ है, जो साथ-साथ प्रकट होते हैं, एक-दूसरे से दूर हो जाते हैं, और फिर दोनों लौटकर आते हैं और एक-दूसरे को नष्ट कर देते हैं।

अतः, कणों के जोड़ों को दिक्-काल में एक बन्द परिपथ में चलते हुए एक अकेले कण के रूप में माना जा सकता है। जब यह जोड़ा काल में आगे की ओर चल रहा हो (उस घटना से जिस पर यह प्रकट होता है, उस घटना तक जिस पर यह एक-दूसरे को नष्ट कर देता है), तब यह कण कहा जाता है। परन्तु जब कण काल में उल्टी ओर चल रहा हो (उस घटना से जिस पर यह जोड़ा एक-दूसरे को नष्ट कर देता है, उस घटना तक जिस पर यह प्रकट होता है), तब यह काल में आगे की ओर चलता हुआ प्रतिकण कहा जाता है।

कोई कृष्ण विवर किस प्रकार कणों का या विकिरण का उत्सर्जन कर सकता है (जैसाकि अध्याय 7 में दिया गया है), इसका स्पष्टीकरण यह है कि आभासी कणों/प्रतिकणों के जोड़े का एक सदस्य (मान लीजिए, प्रतिकण) सम्भवतः कृष्ण विवर में गिर जाएगा तथा दूसरे साथी को, जिसके साथ टकराकर यह नष्ट हो सकता था, अकेला ही छोड़ देगा। यह छोड़ा हुआ कण भी कृष्ण विवर में गिर सकता है, परन्तु इसके कृष्ण विवर के निकट से बच निकलने की भी सम्भावना है। यदि ऐसा होता है, तो यह दूर से किसी प्रेक्षक को कृष्ण विवर द्वारा उत्सर्जित कण के रूप में दिखाई देगा।

बहरहाल, कृष्ण विवरों से उत्सर्जन के लिए, कोई यान्त्रिक प्रक्रिया की एक भिन्न परन्तु समतुल्य अन्तःप्रज्ञात्मक तस्वीर रख सकता है। कोई यह मान सकता है कि आभासी कणों के जोड़े का वह सदस्य (मान लीजिए, प्रतिकण) जो कृष्ण विवर में गिर गया था, विवर से बाहर काल में उल्टा चलनेवाला कोई कण हो। जब यह उस बिन्दु पर पहुँचता है, जिस पर आभासी कण-प्रतिकण का जोड़ा साथ-साथ प्रकट हुआ था, तो इसका गुरुत्व-क्षेत्र द्वारा काल में आगे की ओर चलनेवाले तथा कृष्ण विवर से बच निकलनेवाले एक कण के रूप में प्रकीर्णन हो जाता है। इसके स्थान पर, विवर में गिरने वाले उस आभासी कणों के जोड़े का वह सदस्य यदि कण हो, तो इसे कृष्ण विवर से बाहर आनेवाले तथा काल में उल्टा चलनेवाले एक प्रतिकण के रूप में माना जा सकता है। इस तरह कृष्ण विवरों द्वारा उत्सर्जित विकिरण यह प्रकट करता है कि क्वाण्टम-सिद्धान्त सूक्ष्मदर्शीय स्तर पर काल में उल्टी यात्रा की अनुमति देता है और ऐसी काल यात्रा प्रेक्षणीय प्रभाव उत्पन्न कर सकती है।

अतः कोई यह प्रश्न पूछ सकता है कि क्या क्वाण्टम सिद्धान्त अति सूक्ष्म स्तर पर काल यात्रा की अनुमति देता है, जिसका लोग उपयोग कर सकें? प्रथम दृष्टि में, ऐसा प्रतीत होता है कि

ऐसा होना चाहिए। फाइनमैन का इतिवृत्तों का योगफल प्रस्ताव सभी इतिवृत्तों का योगफल माना जाता है। इसलिए इसमें वे इतिवृत्त भी सम्मिलित होने चाहिए, जिनमें दिक्-काल इतना विकृत हो जाता है कि भूतकाल में यात्रा करना सम्भव है। फिर हम इतिहास को लेकर परेशानी में क्यों नहीं हैं? उदाहरण के लिए, मान लीजिए, कोई काल में उल्टा चला जाता तथा नाजियों को परमाणु बम का रहस्य बता देता?

इन समस्याओं से केवल उस स्थिति में बचा जा सकता है यदि वह अनुमान सही है, जिसे मैं कालानुक्रम सुरक्षा अनुमान (chronology protection conjecture) कहता हूँ। यह कहता है कि भूतकाल में सूचनाएँ ले जाने से स्थूल पिण्डों को रोकने के लिए भौतिकी के नियम दुरभिसन्धि कर लेते हैं। ब्रह्माण्डीय अवरोधन अनुमान के समान, यह भी सिद्ध नहीं हुआ है, परन्तु इसकी सत्यता पर विश्वास करने के कारण हैं।

कालानुक्रम सुरक्षा कार्य करती है, इस तथ्य पर विश्वास करने का कारण यह है कि जब दिक्-काल पर्याप्त रूप से इतना विकृत हो जाता है कि भूतकाल में यात्रा करना सम्भव बना सके, तब दिक्-काल में बन्द कुण्डलाकार परिपथ (loop) पर गतिशील आभासी कण समय में आगे चलते हुए या प्रकाश के वेग से कम गति पर चलते हुए वास्तविक कण बन सकते हैं। क्योंकि ये कण कुण्डलाकार परिपथ के चारों ओर कितनी ही बार चक्कर लगा सकते हैं, इसलिए वे अपने मार्ग पर हर बिन्दु से कई बार गुजरते हैं। इस तरह उनकी ऊर्जा बार-बार जुड़ती चली जाएगी और ऊर्जा-घनत्व बहुत अधिक हो जाएगा। यह परिस्थिति दिक्-काल को एक धनात्मक वक्रता प्रदान कर सकती थी, जो भूतकाल में यात्रा की अनुमति नहीं देती। अभी तक यह स्पष्ट नहीं है कि ये कण धनात्मक वक्रता प्रदान करेंगे या ऋणात्मक, या एक विशेष प्रकार के आभासी कणों द्वारा उत्पन्न वक्रता, दूसरे प्रकार के आभासी कणों द्वारा उत्पन्न वक्रता को निरस्त कर देगी। इस तरह काल यात्रा की सम्भावना खुली हुई है। लेकिन मैं इस पर बाजी लगाने नहीं जा रहा हूँ। मेरे विरोधी भविष्य जान लेने का अनुचित लाभ उठा सकते हैं।

अध्याय *11*

भौतिकी का एकीकरण

जैसाकि प्रथम अध्याय में ही स्पष्ट कर दिया गया था, एक ही प्रयास में समस्त ब्रह्माण्ड के एक पूर्ण एकीकृत सिद्धान्त की रचना करना बहुत कठिन होगा। इसलिए इसके स्थान पर हमने दूसरे प्रभावों की उपेक्षा करके या उनका निश्चित संख्याओं द्वारा सन्निकटन कर ऐसे आंशिक सिद्धान्तों की खोज करके प्रगति की है, जो घटना-क्रमों की एक सीमित श्रेणी की ही व्याख्या करते हैं। (उदाहरण के लिए, रसायन विज्ञान हमें परमाणु के नाभिक की आन्तरिक संरचना को बिना समझे ही, परमाणुओं की अन्योन्यक्रियाओं की गणना की अनुमति देता है।) अन्ततः कोई ऐसे एक पूर्ण, संगत, एकीकृत सिद्धान्त को खोजने की आशा करेगा जो इन सभी आंशिक सिद्धान्तों को सन्निकटनों (approximations) के रूप में सम्मिलित कर ले, तथा जिस सिद्धान्त में किन्हीं मनमानी संख्याओं के मानों (values) को चुनकर, तथ्यों को समुपयुक्त करने के लिए समायोजित किए जाने की आवश्यकता न हो। ऐसे एक सिद्धान्त की तलाश 'भौतिकी का एकीकरण' के रूप में जानी जाती है। आइंस्टाइन ने एक ऐसे ही एकीकृत सिद्धान्त की खोज में अपने बाद के अधिकांश वर्ष गँवा दिए, परन्तु वह समय इसके लिए परिपक्व नहीं था : गुरुत्व तथा विद्युत-चुम्बकीय बल के लिए आंशिक सिद्धान्त थे, परन्तु नाभिकीय बलों के बारे में बहुत कम ज्ञान था। इसके अतिरिक्त आइंस्टाइन ने क्वाण्टम यान्त्रिकी के विकास में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका के बावजूद, इसकी वास्तविकता में विश्वास करना अस्वीकार कर दिया था। तब भी यह प्रतीत होता है कि अनिश्चितता का सिद्धान्त इस ब्रह्माण्ड का, जिसमें हम रहते हैं, एक मूलभूत अभिलक्षण है। अतः एक सफल एकीकृत सिद्धान्त में यह सिद्धान्त आवश्यक रूप से समाविष्ट होना चाहिए।

जैसाकि मैं वर्णन करूँगा, ऐसे एक सिद्धान्त को पाने के अवसर अब काफी बेहतर प्रतीत होते हैं क्योंकि अब ब्रह्माण्ड के बारे में हमारे ज्ञान की सीमाएँ काफी विस्तृत हो गई हैं। परन्तु हमें अतिविश्वास से भी सतर्क रहने की आवश्यकता है—हम इससे पहले भी कई झूठे सबेरे देख चुके हैं! उदाहरण के लिए इस शताब्दी के प्रारम्भ में यह समझा जाता था कि हर चीज (या घटना) की व्याख्या सतत पदार्थ के गुणधर्मों, जैसेकि प्रत्यास्थता (elasticity) और ऊष्मा-चालन, के रूप में दी जा सकती है। परमाणु संरचना तथा अनिश्चितता के सिद्धान्त की खोज ने इस अवधारणा का प्रबलतापूर्वक अन्त कर दिया। फिर सन् 1928 में पुनः भौतिकीविद व नोबेल पुरस्कार विजेता मैक्स बोर्न (Max Born) ने गोटिंजन विश्वविद्यालय (Gottingen University) में आगन्तुकों के एक दल को बताया था कि 'भौतिकी, जैसाकि हम इसे जानते हैं, छह माह में समाप्त हो जाएगी।' उनका विश्वास डिराक (Dirac) द्वारा कुछ ही दिन पहले खोजे गए उस समीकरण पर आधारित था, जो इलेक्ट्रॉन को नियन्त्रित करता है। यह सोचा गया था कि ऐसा ही कोई अन्य समीकरण प्रोटोन को नियन्त्रित करेगा, जो उस समय ज्ञात मात्र दूसरा कण था, और यही सैद्धान्तिक भौतिकी का अन्त होगा। बहरहाल, न्यूट्रॉन तथा नाभिकीय बलों की खोज ने इस अवधारणा को भी धराशायी कर दिया। इतना कह चुकने के बाद मेरा अब भी यह विश्वास है कि इस सतर्क आशावाद के वाजिब आधार हैं, कि हम अब सम्भवतः प्रकृति के अन्तिम नियमों की

खोज में अन्तिम छोर के निकट पहुँच गए हैं।

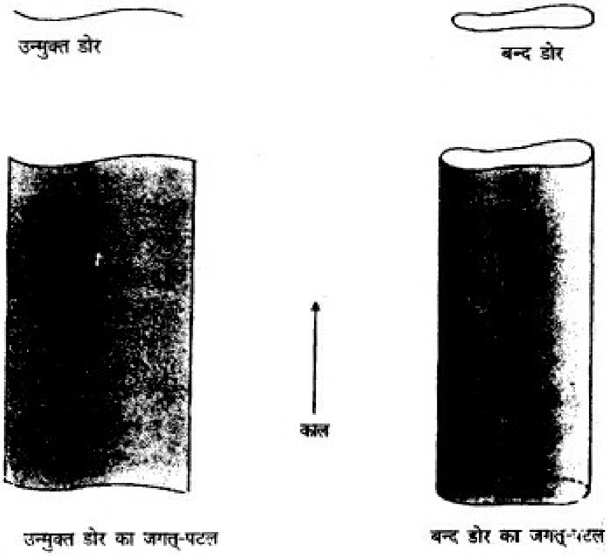
मैंने पूर्ववर्ती अध्यायों में सामान्य आपेक्षिकता सिद्धान्त, गुरुत्व-बल का आंशिक सिद्धान्त तथा क्षीण, दृढ़ व विद्युत-चुम्बकीय बलों को नियन्त्रित करनेवाले आंशिक सिद्धान्तों का वर्णन किया है। अन्तिम तीनों सिद्धान्तों को तथाकथित महाएकीकृत सिद्धान्तों [ग्रैण्ड यूनीफाइड थ्योरीज़ (GUTS)] में संयुक्त किया जा सकता है। परन्तु चूँकि इन महाएकीकृत सिद्धान्तों में गुरुत्व सम्मिलित नहीं है और क्योंकि उनमें विभिन्न कणों के सापेक्ष द्रव्यमान जैसी अनेक ऐसी राशियाँ निहित हैं, जिनका सिद्धान्त के आधार पर पूर्वानुमान नहीं किया जा सकता, बल्कि अपने प्रेक्षणों से मेल बिठाने के लिए उन्हें चुनना होता है, इसलिए यह महाएकीकृत सिद्धान्त बहुत सन्तोषजनक नहीं है। एक ऐसे सिद्धान्त की खोज में, जो अन्य बलों के साथ गुरुत्व का भी एकीकरण कर दे, मुख्य कठिनाई यह है कि सामान्य आपेक्षिकता सिद्धान्त एक चिरसम्मत (classical) सिद्धान्त है अर्थात् यह क्वाण्टम यान्त्रिकी के अनिश्चितता के सिद्धान्त को समाविष्ट नहीं करता। दूसरी ओर, अन्य आंशिक सिद्धान्त आवश्यक रूप से क्वाण्टम यान्त्रिकी पर निर्भर करते हैं। अतः पहला आवश्यक कदम अनिश्चितता के सिद्धान्त के साथ सामान्य आपेक्षिकता सिद्धान्त को संयुक्त करने का है। जैसाकि हम देख चुके हैं, यह संयोजन कुछ विलक्षण परिणाम उत्पन्न कर सकता है जैसे, कृष्ण विवरों का काला नहीं होना, और ब्रह्माण्ड में किसी विलक्षणता या सिंगुलैरिटी का न होना बल्कि ब्रह्माण्ड का एकदम स्वयंपूर्ण (self-contained) एवं सीमाविहीन होना। जैसाकि अध्याय 7 में स्पष्ट किया गया है, परेशानी यह है कि अनिश्चितता के सिद्धान्त का अर्थ यह है कि 'रिक्त' आकाश (शून्य) भी आभासी कणों व प्रतिकणों के जोड़ों से भरा हुआ है। इन जोड़ें में ऊर्जा का अपरिमित परिमाण होता है और, इसीलिए, आइंस्टाइन का प्रसिद्ध समीकरण $E = mc^2$ के अनुसार, उनमें द्रव्यमान का भी अपरिमित परिमाण होगा। इनका गुरुत्वाकर्षण, इस तरह, ब्रह्माण्ड को असीमित रूप से छोटे आकार में वक्रित कर देगा।

दूसरे आंशिक सिद्धान्तों में भी कुछ समरूप और हास्यास्पद लगनेवाली अनन्तताएँ शामिल हैं, परन्तु इन सारे मामलों में पुनर्सामान्यीकरण (renormalization) कही जाने वाली एक प्रक्रिया द्वारा ये अनन्तताएँ निरस्त की जा सकती हैं। इस प्रक्रिया में दूसरी अनन्तताओं के प्रवर्तन द्वारा इन अनन्तताओं का निरस्तीकरण शामिल है। हालाँकि यह तकनीक गणितीय रूप से थोड़ी संदिग्ध है, फिर भी व्यवहार में यह कार्य करती प्रतीत होती है, और इन सिद्धान्तों के साथ इसका उपयोग उन पूर्वानुमानों में किया गया है, जो प्रेक्षणों से परिशुद्धता की असाधारण सीमा तक मेल खाते हैं। हालाँकि एक पूर्ण सिद्धान्त को पाने के प्रयास के दृष्टिकोण से, पुनर्सामान्यीकरण में एक गम्भीर दोष भी है, क्योंकि इसका आशय यह होता है कि द्रव्यराशियों के वास्तविक मानों तथा बलों के सामर्थ्य के सिद्धान्त के आधार पर पूर्वानुमान नहीं लगाया जा सकता, बल्कि प्रेक्षणों में समुपयुक्त होने के लिए उन्हें चुनना पड़ता है।

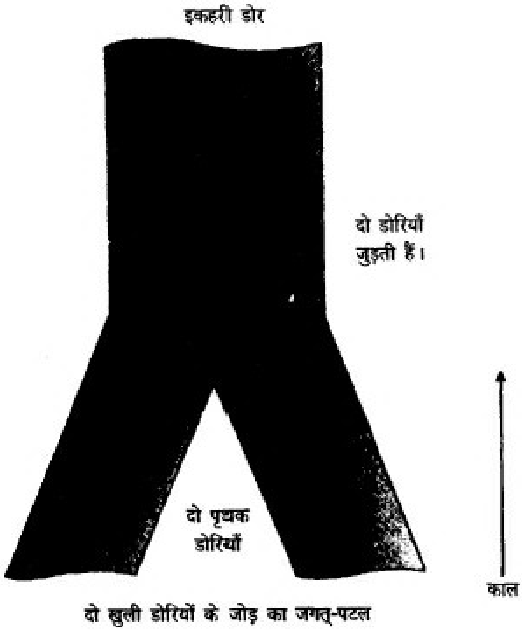
सामान्य आपेक्षिकता सिद्धान्त में अनिश्चितता के सिद्धान्त को सम्मिलित करने के प्रयास में, केवल दो ऐसी राशियाँ हैं, जिनका समायोजन किया जा सकता है : गुरुत्व-बल की दृढ़ता तथा ब्रह्माण्डिकीय स्थिरांक का मान। सभी अनन्तताओं (infinities) को दूर करने के लिए मात्र इनका समायोजन ही पर्याप्त नहीं है। अतः एक सिद्धान्त है, जो यह पूर्वानुमान लगाता प्रतीत होता है कि दिक्-काल की वक्रता के समान कुछ निश्चित राशियाँ वास्तव में अपरिमित हैं, फिर भी इन राशियों का पूर्ण रूप से सीमाबद्ध (finite) रूप से प्रेक्षण व मापन किया जा सकता है। सामान्य आपेक्षिकता सिद्धान्त तथा अनिश्चितता के सिद्धान्त को समन्वित करने में इस समस्या की काफी समय से शंका थी, परन्तु अन्ततः सन् 1972 में विस्तृत गणनाओं द्वारा इसकी पुष्टि हो गई। चार वर्षों के बाद 'महागुरुत्व' के नाम से एक सम्भावित समाधान विचारार्थ प्रस्तुत किया गया। अवधारणा यह थी कि ग्रेविटोन कहे जानेवाले 'स्पिन-2' वाले कण को, जो गुरुत्व-बल-वाहक है, 3/2, 1, 1/2 और 0 स्पिन (प्रचक्रण) वाले कुछ अन्य विशेष कणों से संयुक्त कर दिया जाए। इस तरह 1/2 तथा 3/2 स्पिन वाले पदार्थ-कणों को 0,1 तथा 2 स्पिन वाले बल-वाहक कणों के साथ संयुक्त करके एक अर्थ में फिर ये सारे कण एक ही 'महाकण' (superparticle) के

विभिन्न स्वरूपों के रूप में माने जा सकते थे। 1/2 तथा 3/2 स्पिन वाले वर्चुअल या आभासी कण/प्रतिकण के जोड़ों में ऋणात्मक ऊर्जा होगी, और इसलिए वे 2, 1 तथा 0 स्पिनयुक्त आभासी जोड़ों की धनात्मक ऊर्जा को निरस्त करने के लिए प्रवृत्त होंगे। इससे सम्भावित अनन्तताओं में से अनेक निरस्त हो जाएँगी, परन्तु यह शंका की गई कि कुछ अनन्तताएँ सम्भवतः अब भी शेष रह जाएँगी। बहरहाल, कुछ अनिरस्त (uncancelled) अनन्तताएँ शेष बचीं या नहीं यह पता लगाने के लिए अवश्यक गणनाएँ इतनी लम्बी तथा कठिन थीं कि कोई भी उनका भार अपने ऊपर लेने को तैयार नहीं था। यह अनुमान लगाया गया था कि एक कम्प्यूटर की सहायता से भी इन गणनाओं को करने में कम-से-कम चार वर्ष का समय लगेगा तथा इस बात की सम्भावनाएँ बहुत ज्यादा थीं कि किसी से कम-से-कम एक त्रुटि, सम्भवतः अधिक भी, अवश्य हो जाएगी। किसी का उत्तर सही है, यह केवल तब ही पता लगता, यदि कोई उन गणनाओं को दोहराता तथा पुनः वही उत्तर प्राप्त करता, और यह बहुत सम्भावित प्रतीत नहीं हुआ!

इन समस्याओं के होते हुए भी, तथा साथ ही इस तथ्य के बावजूद कि महागुरुत्व के सिद्धान्तों में कण, प्रेक्षित कणों के अनुरूप प्रतीत नहीं होते, अधिकांश वैज्ञानिकों का यह विश्वास था कि सम्भवतः महागुरुत्व ही भौतिकी के एकीकरण की समस्या का सही उत्तर है। गुरुत्व-बल को दूसरे बलों के साथ एकीकृत करने का यही सर्वोत्तम तरीका प्रतीत हुआ। फिर भी सन् 1984 में ब्रह्माण्डीय डोर सिद्धान्तों (cosmic string theories) के नाम से जाने जानेवाले सिद्धान्तों के पक्ष में विचारों में उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ। इन सिद्धान्तों में मूल वस्तु कण नहीं होते हैं, जोकि आकाश की एक महज बिन्दु-भर जगह घेरते हैं, बल्कि वे कुछ ऐसे होते हैं जिनमें अपरिमित रूप से पतले किसी डोर के टुकड़े के समान लम्बाई तो होती है, परन्तु कोई अन्य विमा नहीं होती। इन डोरों में छोर हो सकते हैं (तथाकथित उन्मुक्त डोर) या वे किसी कुण्डली या छल्ले के आकार में आपस में जुड़े हो सकते हैं (बन्द डोर) (चित्र 11.1 तथा चित्र 11.2)। एक कण हर समय आकाश की एक बिन्दु-भर जगह घेरे हुए रहता है। इस तरह इसके इतिवृत्त को दिक्-काल में एक रेखा द्वारा चित्रांकित किया जा सकता है ('जगत्-रेखा'); दूसरी ओर, एक ब्रह्माण्डीय डोर आकाश में हर समय एक रेखा धारण किए रहती है। अतः दिक्-काल में इसका इतिवृत्त एक-दो विमाओं वाला पृष्ठ-तल होता है, जिसे 'जगत्-पटल' (world sheet) कहते हैं। (ऐसे किसी भी जगत्-पटल पर कोई बिन्दु दो संख्याओं द्वारा वर्णित किया जा सकता है, एक समय बताकर तथा दूसरा ब्रह्माण्डीय डोर पर बिन्दु की स्थिति बताकर।) खुली या उन्मुक्त डोर का जगत्-पटल एक पट्टी होती है : इसके किनारे दिक्-काल में डोरों के छोरों के मार्गों के द्योतक होते हैं (चित्र 11.1)। किसी बन्द डोर (closed string) का जगत्-पटल एक बेलन या ट्यूब होती है (चित्र 11.2) : ट्यूब की अनुप्रस्थ काट एक वृत्त होता है, जो किसी विशिष्ट समय पर डोर की स्थिति का द्योतक होता है।



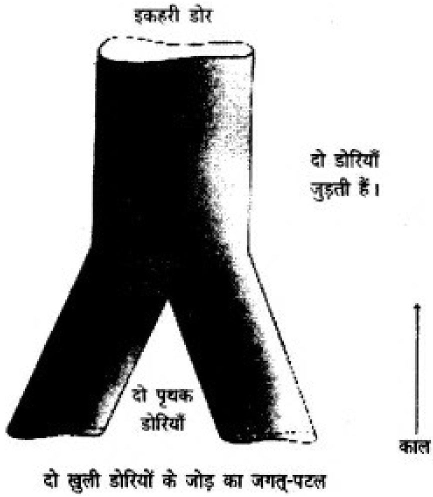
चित्र 11.1 और चित्र 11.2



चित्र 11.3

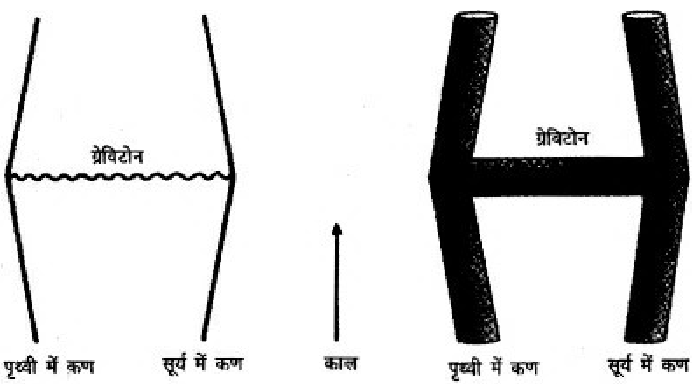
डोरों के दो टुकड़े जुड़कर फिर एक डोर बन सकते हैं, खुली डोरों के मामले में वे केवल छोरों पर जुड़ जाते हैं (चित्र 11.3), जबकि बन्द डोरों के मामले में यह पजामे में पाँयचे जोड़ने के समान है (चित्र 11.4)। इसी प्रकार, डोर के एक टुकड़े को दो डोरों में विभाजित किया जा सकता है। ब्रह्माण्डीय डोर सिद्धान्तों में, जिन्हें पहले कण समझा जाता था, उन्हें अब पतंग के कम्पायमान माँझे पर चलती हुई तरंगों के रूप में चित्रित किया जाता है। किसी कण द्वारा दूसरे कण का उत्सर्जन या अवशोषण डोरों के टूटने या उनके आपस में जुड़ने के समान होता है।

उदाहरण के लिए, कण सिद्धान्तों में पृथ्वी पर लगनेवाले सूर्य के गुरुत्व-बल को इस प्रकार से चित्रित किया जाता था कि इस बल की उत्पत्ति सूर्य के कण द्वारा ग्रेविटोन के उत्सर्जन व पृथ्वी में स्थित कण द्वारा उसके अवशोषण द्वारा होती है (चित्र 11.5)। ब्रह्माण्डीय डोर सिद्धान्त में, यह प्रक्रिया अंग्रेजी वर्णमाला के अक्षर H के आकार की नली या पाइप के समान होती है (चित्र 11.6) (डोर सिद्धान्त एक प्रकार से कुछ नलसाजी के समान है)। H की दोनों ऊर्ध्व भुजाएँ सूर्य तथा पृथ्वी में रिक्त कणों को निरूपित करती हैं, तथा उनके बीच यात्रा करनेवाले ग्रेविटोन को क्षैतिज आड़ी छड़ द्वारा निरूपित किया जाता है।



चित्र 11.4

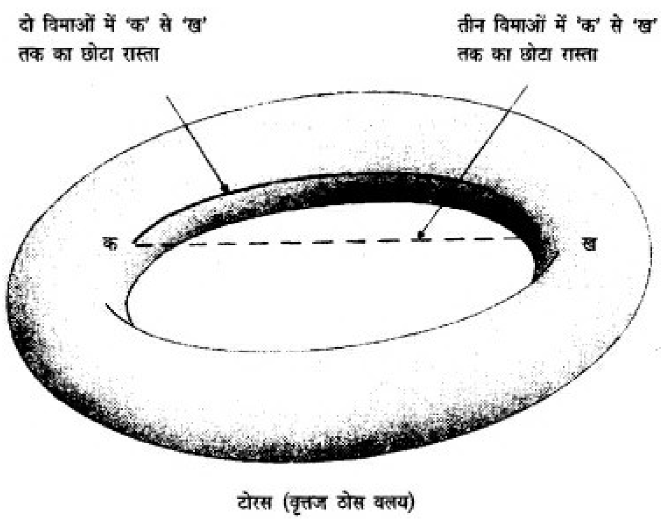
डोर सिद्धान्त का एक विचित्र इतिहास है। मूलतः इसका आविष्कार 1960 के दशक के उत्तरार्ध में दृढ़ बल (strong force) की व्याख्या करने के लिए एक सिद्धान्त की खोज के प्रयास में किया गया था। अवधारणा यह थी कि प्रोटोन व न्यूट्रोन जैसे कणों को डोर (string) पर तरंगों के रूप में माना जा सकता था। कणों के मध्य दृढ़ बल डोर के उन टुकड़ों के अनुकूल होंगे जो डोर के अन्य छोटे टुकड़ों के बीच से गुजरते थे, जैसाकि मकड़ी के जाले में होता है। इस सिद्धान्त को कणों के बीच कार्यरत दृढ़ बल का प्रेक्षित मान देने के लिए यह आवश्यक था कि ये डोर लगभग दस टन के तनाववाले रबर-बैण्ड के समान हों।



चित्र 11.5 तथा चित्र 11.6

सन् 1974 में पेरिस से जोल शर्क (Joel Scherk) और कैलिफोर्निया के प्रौद्योगिकी संस्थान से जॉन श्वाज़्र्स (John Schwarz) ने एक शोध-पत्र प्रकाशित किया, जिसमें उन्होंने यह बताया कि डोर सिद्धान्त गुरुत्व-बल की व्याख्या कर सकता है, परन्तु केवल तभी यदि डोर (string) में तनाव बहुत अधिक, लगभग 10^{39} (1 के बाद 39 शून्य) टन के बराबर हो। सामान्य दीर्घता स्तर पर डोर सिद्धान्त और सामान्य आपेक्षिकता सिद्धान्त के पूर्वानुमान लगभग समान होंगे, परन्तु बहुत छोटी, 10^{33} सेंटीमीटर (1 सेंटीमीटर को 1 के बाद 33 शून्यों वाली संख्या से भाग देने पर) से भी कम स्तर, की दूरियों पर वे भिन्न हो जाएँगे। बहरहाल, उनके कार्य ने लोगों का अधिक ध्यान आकर्षित नहीं किया, क्योंकि अधिकांश लोगों ने क्वार्कों तथा ग्लुआनों पर आधारित सिद्धान्त के पक्ष में, जोकि उनके प्रेक्षणों में बेहतर ढंग से समुपयुक्त होता प्रतीत होता था, दृढ़ बल का मूल ब्रह्माण्डीय डोर वाला सिद्धान्त छोड़ दिया। शर्क (Scherk) की अत्यन्त ही दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियों में मृत्यु हो गई (वह मधुमेह से पीड़ित थे, और उस समय अचेत अवस्था में चले गए, जब आसपास कोई इन्सुलिन का इजेंक्शन लगानेवाला नहीं था)। इसलिए अब डोर-तनाव (string tension) के काफी अधिक प्रस्तावित मान के साथ, ब्रह्माण्डीय डोर सिद्धान्त के लगभग एकमात्र समर्थक के रूप में श्वाज़्र्स अकेले रह गए।

सन् 1984 में स्पष्टतः दो कारणों से अचानक ब्रह्माण्डीय डोर में फिर से दिलचस्पी पैदा हो गई। एक कारण तो यह था कि लोग यह प्रमाणित करने की दिशा में वास्तव में अधिक प्रगति नहीं कर पा रहे थे कि महागुरुत्व सीमाबद्ध है या यह उन कणों की विस्तार से व्याख्या कर सकता है, जिनका हम प्रेक्षण करते हैं। दूसरा कारण जॉन श्वाज़्र्स तथा क्वीन मेरी कॉलेज, लन्दन के माइक ग्रीन द्वारा उस शोध-पत्र का प्रकाशन था, जिसमें यह स्पष्ट किया गया था कि 'डोर सिद्धान्त' उन कणों के अस्तित्व की व्याख्या करने में सम्भवतः समर्थ होगा, जिनमें कुछ ऐसे कणों के समान जिनका हम प्रेक्षण करते हैं, सन्निहित वामावर्तता (built in left-handedness) होती है। कारण चाहे कुछ भी रहे हों, बहुत सारे लोग शीघ्र ही ब्रह्माण्डीय डोर सिद्धान्त पर कार्य करने लगे और इसका एक नया स्वरूप विकसित हुआ, तथाकथित विषम डोर (heterotic strings) वाला सिद्धान्त, जो लगता था मानो ऐसे कणों, जिनका हम प्रेक्षण करते हैं, की व्याख्या करने में समर्थ होगा।



चित्र 11.7

डोर-सिद्धान्त भी अनन्तताओं के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं, परन्तु यह समझा जाता है कि विषम डोर जैसे स्वरूपों में वे सब निरस्त हो जाएँगे (यद्यपि यह तथ्य अभी निश्चित रूप से

ज्ञात नहीं है)। बहरहाल, डोर सिद्धान्तों में एक और बड़ी समस्या यह है कि वे केवल उसी दशा में संगत प्रतीत होते हैं, जब दिक्-काल में सामान्य चार के स्थान पर, दस या छब्बीस विमाएँ हों! निस्सन्देह, दिक्-काल में अतिरिक्त विमाएँ, विज्ञान-कथाओं के आम प्रसंग हैं, लेकिन ये सामान्य आपेक्षिकता सिद्धान्त के इस सामान्य प्रतिबन्ध पर काबू पाने का एक आदर्श मार्ग प्रदान करती हैं कि कोई भी प्रकाश से अधिक तीव्र गति से, या समय में उल्टी दिशा में यात्रा नहीं कर सकता (अध्याय 10 देखिए)। यहाँ इरादा अतिरिक्त विमाओं से होकर एक संक्षिप्त रास्ता बनाने का है। इसको निम्नलिखित तरीके से चित्रित किया जा सकता है। कल्पना कीजिए कि जिस आकाश में हम रहते हैं, वह केवल दो विमाओं वाला है और किसी एंकर रिंग या टोरस के पृष्ठ-तल के समान वक्र है (चित्र 11.7)। यदि आप घेरे के आन्तरिक किनारे के एक तरफ हों और आप दूसरी ओर के किसी बिन्दु तक पहुँचना चाहते हैं, तब आपको घेरे के आन्तरिक किनारे पर घूमकर जाना पड़ेगा। परन्तु, यदि आप तीन विमाओं में यात्रा करने में समर्थ होते, तब आप सीधे आर-पार जाने का छोटा रास्ता चुन सकते थे।

यदि इन सभी अतिरिक्त विमाओं का वास्तव में अस्तित्व है, तो हम इनका प्रेक्षण क्यों नहीं कर पाते? हम केवल तीन दिक्-विमाओं तथा एक काल-विमा को ही क्यों देखते हैं? सुझाव यह दिया जाता है कि दूसरी विमाएँ बहुत ही छोटे, एक इंच के लगभग 10^{30} (एक के बाद तीस शून्य) हिस्से जितने आकार के आकाश में वक्रित हो जाती हैं। यह इतना छोटा आकार है कि हम इसकी ओर कोई ध्यान नहीं देते : हम केवल एक काल-विमा तथा तीन दिक्-विमाओं की ओर देखते हैं, जिसमें दिक्-काल अच्छी तरह समतल है। यह एक पतली नलिका की सतह के समान होता है। यदि आप इसे निकट से देखें, तो आप यह पाते हैं कि यह दो विमाओं वाला है (इस नलिका पर किसी बिन्दु की स्थिति दो संख्याओं द्वारा दर्शाई जाती है, नलिका की लम्बाई की दिशा में तथा इसकी परिधि की दिशा में)। ऐसा ही दिक्-काल के साथ होता है : बहुत ही छोटे स्तर पर यह दस विमाओं वाला होता है और अत्यन्त ही वक्रित होता है, परन्तु बड़े स्तरों पर आप वक्रता या अतिरिक्त विमाएँ नहीं देख पाते। यदि यह तस्वीर सही है, तो यह भावी अन्तरिक्ष यात्रियों के लिए बुरी खबर है : अतिरिक्त विमाएँ इतनी अधिक छोटी होंगी कि इनसे होकर कोई भी अन्तरिक्ष यान नहीं जा सकता। बहरहाल, इससे एक और बड़ी समस्या उठ खड़ी होती है। इन विमाओं में से केवल कुछ ही क्यों कुंचित (curled up) होकर एक छोटी-सी गेंद का रूप धारण करती हैं, सभी ऐसा क्यों नहीं करतीं? सम्भवतः ब्रह्माण्ड के आद्य काल में सभी विमाएँ बहुत वक्रित रही होंगी। एक काल-विमा तथा तीन दिक्-विमाएँ ही क्यों समतल हो गईं, जबकि दूसरी विमाएँ दृढ़तापूर्वक कुंचित रहीं?

इन प्रश्नों का एक सम्भावित उत्तर नृ-सिद्धान्त (anthropic principle) है। हम जैसे जटिल प्राणियों के विकास को सम्भव बनाने के लिए दो दिक्-विमाएँ पर्याप्त नहीं प्रतीत होतीं। उदाहरण के लिए, एक विमा वाली पृथ्वी पर रहनेवाले दो विमाओं वाले जीवों को एक-दूसरे से आगे निकलने के लिए एक-दूसरे के ऊपर चढ़ना पड़ेगा। यदि किसी दो-विमाओं वाले जीवधारी ने कुछ खाया, तो वह इसे पूर्णतः पचा नहीं सकता था, इसके भोजन अवशेष को उसी मार्ग से बाहर निकालना पड़ेगा, जहाँ से उसने भोजन निगला था, क्योंकि यदि इसके शरीर के आर-पार कोई मार्ग होता, तो यह उस जीवधारी को दो पृथक अर्धभागों में विभाजित कर देता : हमारा दो विमाओं वाला प्राणी अलग-अलग टुकड़ों में गिर जाता (चित्र 11.8)। इसी प्रकार यह देखना कठिन है कि दो विमाओं वाले किसी जीव में रक्त-संचार किस प्रकार हो सकता था।

तीन से अधिक दिक्-विमाओं के साथ भी समस्या होगी! दूरी बढ़ने के साथ-साथ दो पिण्डों के मध्य गुरुत्व-बल तीन विमाओं की स्थिति की अपेक्षा अधिक तीव्रता से घटेगा। (तीन विमाओं में दूरी दुगनी हो जाने पर गुरुत्व-बल 1/4 रह जाता है, चार विमाओं में यह घटकर 1/8 हो जाएगा, पाँच विमाओं में यह 1/16 रह जाएगा, और इसी तरीके से आगे भी)। इसका महत्त्व यह है कि सूर्य के चारों ओर पृथ्वी जैसे ग्रहों के कक्षा-पथ अस्थिर हो जाएँगे : वृत्तीय कक्षा-यथ में बहुत छोटी-सी उथल-पुथल (जो सम्भवतः दूसरे ग्रहों के गुरुत्व-बल के कारण हो सकती है) का

परिणाम यह होगा कि पृथ्वी की सूर्य से दूरी उत्तरोत्तर घटती जाएगी या यह दूरी उत्तरोत्तर बढ़ती जाएगी और इस प्रकार पृथ्वी या तो सर्पिल गति से सूर्य पर गिर जाएगी या उसके क्षेत्र से बाहर निकल जाएगी। हम या तो हिमीभूत हो जाएँगे या भस्म हो जाएँगे। तीन से अधिक आकाश-विमाओं में दूरी के साथ गुरुत्व-बल के इस व्यवहार का अर्थ यह होगा कि दाब द्वारा गुरुत्व-बल को सन्तुलित करते हुए सूर्य एक स्थायी अवस्था में अस्तित्व में नहीं रह सकेगा। या तो यह खण्डित हो जाएगा या ध्वस्त होकर एक अत्यन्त संघनित पिण्ड के रूप में कृष्ण विवर बन जाएगा। दोनों में से किसी भी स्थिति में यह पृथ्वी पर जीवन के लिए आवश्यक ऊष्मा एवं प्रकाश के स्रोत के रूप में किसी काम का नहीं होगा। सूक्ष्म स्तर पर, वह विद्युत बल भी जो एक परमाणु में नाभिक के चारों ओर इलेक्ट्रोनों के घूमने का कारण होते हैं, गुरुत्व-बल के समान ही व्यवहार करेंगे। इस तरह, इलेक्ट्रोन या तो परमाणु से निकलकर बाहर चले जाएँगे या फिर सर्पिल गति से नाभिक में गिर पड़ेंगे। दोनों में से किसी भी स्थिति में परमाणु वैसे नहीं रह सकते जैसाकि हम उन्हें जानते हैं।



चित्र 11.8

इस स्थिति में यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि जीवन कम-से-कम जैसा हम इसे जानते हैं, दिक्-काल के केवल उन्हीं क्षेत्रों में अस्तित्व में रह पाएगा, जिनमें एक काल-विमा तथा तीन दिक्-विमाएँ कुंचित होकर छोटी नहीं हुई हैं। इसका अर्थ यह होगा कि यदि यह प्रमाणित कर सकें कि ब्रह्माण्डीय डोर ब्रह्माण्ड के ऐसे क्षेत्रों को तो कम-से-कम सम्भव बनाती ही है—और यह जान पड़ता है कि ब्रह्माण्डीय डोर सिद्धान्त वास्तव में ऐसा करती है, तो कोई क्षीण नृ-सिद्धान्त (weak anthropic principle) की ओर अभिमुख हो सकता है। ब्रह्माण्ड के अन्य क्षेत्र भी हो सकते हैं या दूसरे ब्रह्माण्ड हो सकते हैं ('इसका' चाहे कुछ भी तात्पर्य हो), जिनमें सारी विमाएँ कुंचित होकर छोटी हैं या जिनमें चार से अधिक विमाएँ लगभग समतल हैं, परन्तु ऐसे क्षेत्रों में प्रभावी विमाओं की विभिन्न राशियों का प्रेक्षण करने के लिए वहाँ कोई प्रज्ञावान प्राणी नहीं होगा।

दूसरी समस्या यह है कि कम-से-कम चार भिन्न ब्रह्माण्डीय डोर परिकल्पनाएँ हैं (उन्मुक्त डोर तथा तीन विभिन्न बन्द डोर सिद्धान्त) एवं करोड़ों अन्य ऐसे तरीके हैं जिनमें ब्रह्माण्डीय-डोर सिद्धान्त द्वारा पूर्वानुमानित अतिरिक्त विमाएँ कुंचित हो सकती थीं। फिर एक ही ब्रह्माण्डीय-डोर सिद्धान्त और एक ही प्रकार का कुंचन क्यों चुना जाए? कुछ समय तक तो ऐसा लगा कि इसका कोई उत्तर नहीं है और इस क्षेत्र में खोज की प्रगति रुक गई। फिर, लगभग सन् 1994 से लोगों

ने द्वैतताओं (dualities) की खोज करनी प्रारम्भ कर दी : विभिन्न सिद्धान्त और अतिरिक्त विमाओं के कुंचन के विभिन्न तरीके चार विमाओं के समान परिणामों की ओर ले जा सकते थे। इसके अतिरिक्त, कण, जो आकाश की एक बिन्दु-भर जगह घेरते हैं या डोर, जो आकाश में एक रेखा धारण किए रहती है, के साथ पी-ब्रेन्स (P-branes) नामक दूसरी वस्तुएँ भी पाई गई थीं, जो आकाश में दो विमाओं वाला या अपेक्षाकृत अधिक उच्च विमाओं वाला आयतन ग्रहण किए हुए थीं। [एक कण को ओ-ब्रेन (O-brane) और एक ब्रह्माण्डीय डोर को आई-ब्रेन (I-brane) माना जा सकता है परन्तु $P=2$ से $P=9$ तक के लिए पी-ब्रेन्स (P-branes) भी थे।] इससे जो संकेत मिलता है वह यह है कि महागुरुत्व, ब्रह्माण्डीय डोर तथा पी-ब्रेन सिद्धान्तों में एक प्रकार का प्रजातन्त्र है : वे परस्पर तो संगत जान पड़ते हैं, परन्तु किसी एक सिद्धान्त को भी दूसरों की अपेक्षा अधिक आधारभूत नहीं कहा जा सकता। वे किसी आधारभूत सिद्धान्त के विभिन्न अनुमान (approximations) प्रतीत होते हैं जो विभिन्न स्थितियों में वैध पाए जाते हैं।

लोगों ने इस अन्तर्निहित सिद्धान्त की तलाश की है, लेकिन उन्हें अभी तक इसमें कोई सफलता नहीं मिली है। बहरहाल, मेरा यह विश्वास है जैसाकि गोदेल (Gödel) ने बताया था कि कोई भी सूत्रों के एक समुच्चय के रूप में अंकगणित का निरूपण कर सकता है, इससे अधिक किसी भी आधारभूत सिद्धान्त का कोई एक निरूपण नहीं हो सकता। इसके स्थान पर, यह निरूपण मानचित्रों के समान ही सकता है—आप किसी पृथ्वी के पृष्ठ-तल या किसी एंकर रिंग का वर्णन करने के लिए एक ही मानचित्र का उपयोग नहीं कर सकते : प्रत्येक बिन्दु को दर्शाने के लिए पृथ्वी के मामले में आपको कम-से-कम दो मानचित्रों की, तथा एंकर रिंग के लिए चार मानचित्रों की आवश्यकता होती है। प्रत्येक मानचित्र केवल एक सीमित क्षेत्र में ही मान्य होता है, परन्तु विभिन्न मानचित्रों में अधिव्यापी क्षेत्र होंगे। मानचित्रों के संग्रह से पृष्ठ-तल का एक पूर्ण विवरण स्पष्ट होता है। इसी प्रकार भौतिकी में विभिन्न स्थितियों में विभिन्न निरूपणों का प्रयोग करना आवश्यक हो सकता है; परन्तु दोनों विभिन्न निरूपण उन स्थितियों में एक समान परिणाम देंगे, जहाँ वे दोनों प्रयुक्त किए जा सकते हैं। विभिन्न निरूपणों का एक सम्पूर्ण संग्रह एक पूर्ण एकीकृत सिद्धान्त के रूप में माना जा सकता था, भले ही एक निरूपण ऐसा हो जिसे मूलभूत सिद्धान्तों के एक समुच्चय के रूप में अभिव्यक्त नहीं किया जा सके।

परन्तु क्या वास्तव में ऐसा कोई एकीकृत सिद्धान्त हो सकता है? या क्या हम बस एक मृगमरीचिका का पीछा कर रहे हैं? तीन सम्भावनाएँ प्रतीत होती हैं :

(1) वास्तव में एक पूर्ण एकीकृत सिद्धान्त है [या अधिव्यापी (overrlapping) निरूपणों का संग्रह] जिसे यदि हम पर्याप्त रूप से बुद्धिमान हैं, तो एक दिन खोज लेंगे।

(2) ब्रह्माण्ड का कोई अन्तिम सिद्धान्त नहीं है, केवल उन सिद्धान्तों का एक अनन्त सिलसिला है, जो ब्रह्माण्ड की व्याख्या अधिकाधिक परिशुद्धता से करते हैं।

(3) ब्रह्माण्ड का कोई सिद्धान्त नहीं है : एक निश्चित सीमा से बाहर घटनाओं का पूर्वानुमान नहीं लगाया जा सकता, वे यादृच्छिक तथा मानमाने ढंग से घटित होती हैं।

कुछ लोग इन आधारों पर तीसरी सम्भावना के पक्ष में तर्क प्रस्तुत करेंगे कि यदि नियमों का एक पूर्ण समुच्चय होता, तो संसार में हस्तक्षेप करने के लिए तथा अपनी राय बदलने के लिए वह ईश्वर की स्वतन्त्रता का अतिलंघन करता। यह किसी सीमा तक पुराने विरोधाभास के समान है : क्या ईश्वर किसी पत्थर को इतना भारी बना सकता है कि वह इसे स्वयं भी न उठा सके? परन्तु, यह विचार कि शायद ईश्वर अपनी राय बदलना चाहेगा, सन्त ऑगस्टाइन द्वारा ध्यानाकर्षित किए गए उस भ्रम का एक उदाहरण है, जिसमें हम ईश्वर की कल्पना काल में एक अस्तित्ववान प्राणी के रूप में करते हैं : काल तो केवल उस ब्रह्माण्ड की एक विशेषता है जिसकी उत्पत्ति ईश्वर ने की थी। जब उसने इसे बनाया, तब वह शायद यह जानता था कि उसका इरादा क्या है!

क्वाण्टम यान्त्रिकी के आगमन के साथ ही हम यह स्वीकार करने लगे हैं कि घटनाओं का पूर्वानुमान कभी भी पूर्ण परिशुद्धता के साथ नहीं किया जा सकता, बल्कि अनिश्चितता का एक अंश सदैव रहता है। यदि कोई चाहता है तो वह इस यादृच्छिकता के लिए ईश्वर के हस्तक्षेप को

उत्तरदायी ठहरा सकता है, परन्तु यह एक बहुत ही विचित्र प्रकार का हस्तक्षेप होगा : इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि इसका लक्ष्य किसी उद्देश्य की पूर्ति करना है। वास्तव में, यदि ऐसा होता, तो यह परिभाषानुसार ही यादृच्छिक नहीं होता। आधुनिक समय में, हमने विज्ञान के लक्ष्य को पुनः परिभाषित करके उपर्युक्त तीसरी सम्भावना को प्रभावी ढंग से हटा दिया है : हमारा लक्ष्य नियमों के एक ऐसे समुच्चय का निरूपण करना है जो अनिश्चितता के सिद्धान्त द्वारा निर्धारित सीमा तक ही घटनाओं का पूर्वानुमान करने में हमको समर्थ बनाता है।

दूसरी यह सम्भावना कि और भी अधिकाधिक परिष्कृत सिद्धान्तों का एक अनन्त सिलसिला है, हमारे अब तक के तमाम अनुभवों से मेल खाती है। कई अवसरों पर हमने केवल किन्हीं ऐसे नए तथ्यों की खोज करने के लिए, जिनका पूर्वानुमान वर्तमान सिद्धान्तों द्वारा नहीं लगाया गया था, अपने मापनों की सुग्राहिता में वृद्धि की या प्रेक्षणों का एक नया वर्ग बना लिया, और इन सबको स्पष्ट करने के लिए हमें और अधिक उन्नत सिद्धान्त को विकसित करना पड़ा है। अतः यदि महाएकीकृत सिद्धान्तों की वर्तमान पीढ़ी यह दावा करने में गलत सिद्ध हुई कि लगभग 100 GeV की क्षीण—वैद्युत एकीकरण ऊर्जा (electroweak unification energy) तथा लगभग 10^{15} (1 के बाद 15 शून्य) GeV की महाएकीकरण ऊर्जा (grand unification energy) के मध्य आवश्यक रूप से नया कुछ नहीं घटेगा, तो यह कोई बहुत आश्चर्यजनक बात नहीं होगी। हम अब क्वार्कों तथा इलेक्ट्रोनों को 'मूल' कण के रूप में मानते हैं, परन्तु वास्तव में अब हम इनसे भी अधिक आधारभूत संरचनाओं की अनेक नई परतें पाने की आशा करेंगे।

बहरहाल, यह प्रतीत होता है कि गुरुत्व-बल 'डिब्बे के अन्दर डिब्बे' वाले इस सिलसिले की एक सीमा निर्धारित कर सकता है। यदि कोई कण ऐसा है जिसकी ऊर्जा 10^{19} (1 के बाद 19 शून्य) GeV, जिसे प्लांक ऊर्जा (Planck energy) कहते हैं, से भी अधिक हो तो इसकी द्रव्य-राशि इतनी संघनित हो जाएगी कि इसका शेष ब्रह्माण्ड से सम्बन्ध टूट जाएगा तथा यह एक छोटा-सा कृष्ण विवर बन जाएगा। अतः यह आभास होता है कि ज्यों-ज्यों हम अधिकाधिक उच्च स्तर की ऊर्जाओं की ओर बढ़ते जाते हैं, अधिक-से-अधिक परिष्कृत सिद्धान्तों के इस सिलसिले की भी कोई सीमा होनी चाहिए, और इसीलिए ब्रह्माण्ड का भी कोई अन्तिम सिद्धान्त होना चाहिए। निस्सन्देह, प्लांक ऊर्जा लगभग 100 GeV की उन ऊर्जाओं से बहुत आगे है जो वर्तमान समय में हमारी प्रयोगशालाओं में उत्पन्न की जा सकनेवाली सर्वोच्च ऊर्जा है। उपलब्ध कण-त्वरित्रों से हम इस अन्तराल की पूर्ति प्रत्याशित भविष्य में नहीं कर सकेंगे! बहरहाल, ब्रह्माण्ड की अत्यन्त प्रारम्भिक अवस्थाएँ ही वह रंग-स्थली हैं, जहाँ ऐसी ऊर्जाएँ घटित हुई होंगी। मैं समझता हूँ कि यह एक अच्छा अवसर है, जबकि आद्य ब्रह्माण्ड का अध्ययन तथा गणितीय दृढ़ता की आवश्यकताएँ एक पूर्ण एकीकृत सिद्धान्त का मार्ग हममें से कुछ के जीवन-काल में ही प्रशस्त कर सकेंगी, जोकि सदैव यह सच मानते हुए आज यहाँ है कि सबसे पहले हम ही स्वयं को नहीं उड़ा देंगे।

यदि हमने वास्तव में ब्रह्माण्ड का अन्तिम सिद्धान्त खोज लिया, तो इसका मतलब क्या होगा? जैसाकि प्रथम अध्याय में स्पष्ट किया गया, हम इस सम्बन्ध में कभी भी बिल्कुल आश्वस्त नहीं हो सकते कि हमने वास्तव में एक सही सिद्धान्त की खोज कर ली है, क्योंकि सिद्धान्त सिद्ध नहीं किए जा सकते। परन्तु यदि सिद्धान्त गणनाओं के अनुकूल गणितीय रूप में दृढ़ है और सदैव ऐसा पूर्वानुमान प्रस्तुत करता है जो प्रेक्षणों से सही प्रमाणित होता है, तब हम इस सम्बन्ध में तार्किक रूप से आश्वस्त हो सकते हैं कि यह सिद्धान्त ही सही है। इससे ब्रह्माण्ड के रहस्यों को समझने के मानव जाति के बौद्धिक संघर्ष के इतिहास में एक लम्बा और गौरवपूर्ण अध्याय समाप्त हो जाएगा। परन्तु यह उपलब्धि ब्रह्माण्ड को नियन्त्रित करनेवाले नियमों के बारे में आम आदमी की समझ में भी आमूल परिवर्तन कर देगी। न्यूटन के समय में एक शिक्षित व्यक्ति के लिए सम्पूर्ण मानव ज्ञान को, कम-से-कम मोटे तौर पर ही समझना सम्भव था। परन्तु उस समय से, विज्ञान के विकास की गति ने आज यह असम्भव कर दिया है क्योंकि नए प्रेक्षणों की व्याख्या

करने के लिए सिद्धान्त सदैव परिवर्तित किए जा रहे हैं। वे कभी भी उचित रूप से आत्मसात या सरलीकृत नहीं किए जाते हैं, जिससे कि साधारण लोग उन्हें समझ सकें। आपको इस क्षेत्र में विशेषज्ञता प्राप्त करनी है, और फिर भी आप वैज्ञानिक सिद्धान्तों के केवल एक छोटे से अंश को ही उचित रूप से समझने की आशा कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त, प्रगति की दर इतनी तेज है कि जो कुछ कोई विद्यालय या विश्वविद्यालय में सीखता है वह हमेशा किसी हद तक पुराना होता है। केवल कुछ थोड़े से लोग ही विज्ञान की तीव्र गति से विस्तृत होती हुई सीमाओं के साथ कदम-से-कदम मिलाकर चल सकते हैं, और उन्हें अपना सम्पूर्ण समय इसी अध्ययन के प्रति समर्पित करना पड़ता है और एक छोटे से क्षेत्र में विशेषज्ञता प्राप्त करनी पड़ती है। शेष जनता को विज्ञान की प्रगति तथा इसकी उपलब्धियों तथा उससे उत्पन्न उत्तेजना या रोमांच का बहुत ही कम ज्ञान होता है। सत्तर वर्ष पूर्व, यदि एडिंगटन पर विश्वास किया जाए, तो केवल दो ही व्यक्ति आपेक्षिकता के सामान्य सिद्धान्त को समझते थे। आजकल, लाखों विश्वविद्यालय स्नातक इसे समझते हैं, और कम-से-कम कई करोड़ लोग इस अवधारणा से परिचित हैं। यदि एक पूर्ण एकीकृत सिद्धान्त खोज लिया गया, तो इसे आत्मसात एवं सरलीकृत कर कम-से-कम रूपरेखा के तौर पर ही विद्यालयों में इसे पढ़ाए जाने के लिए केवल उपयुक्त समय की ही प्रतीक्षा करनी होगी। उस समय हम सब उन नियमों की कुछ समझ रखने में समर्थ हो सकेंगे, जो ब्रह्माण्ड को नियन्त्रित करते हैं तथा हमारे अस्तित्व के लिए उत्तरदायी हैं।

यदि हम एक पूर्ण एकीकृत सिद्धान्त खोज भी लेते हैं, तब भी, दो कारणवश, इसका अर्थ यह नहीं होगा कि हम आमतौर पर घटनाओं का पूर्वानुमान करने में समर्थ हो जाएँगे। प्रथम कारण तो वह सीमा-बन्धन है जो क्वाण्टम यान्त्रिकी का अनिश्चितता का सिद्धान्त हमारे पूर्वानुमान की क्षमता पर लागू करता है। इसका परिहार करने के लिए हम कुछ नहीं कर सकते। परन्तु व्यवहार में यह पहला सीमा-बन्धन दूसरे की अपेक्षा कम प्रतिबन्धी है। यह इस तथ्य से प्रकट होता है कि कुछ बहुत ही साधारण स्थितियों को छोड़कर, हम सिद्धान्त के समीकरणों का पूर्ण परिशुद्धता से समाधान नहीं कर सके। [न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त में, हम तीन पिण्डों की गति (motion) का भी बिल्कुल सही समाधान नहीं कर सकते, और पिण्डों की संख्या तथा सिद्धान्त की जटिलता के साथ कठिनाई बढ़ती ही जाती है]। हम उन नियमों को पहले से ही जानते हैं जो चरम अवस्थाओं को छोड़कर सभी स्थितियों में पदार्थ के व्यवहार को नियन्त्रित करते हैं। विशेष रूप से, हम उन आधारभूत नियमों को जानते हैं जो सम्पूर्ण रसायन विज्ञान तथा जीव विज्ञान में अन्तर्निहित हैं। तब भी हमने निश्चित रूप से इन विषयों को हल किए हुए प्रश्नों के स्तर तक छोटा नहीं कर दिया है : गणितीय समीकरणों के आधार पर मानव व्यवहार का पूर्वानुमान प्रस्तुत करने में, हमें अभी तक बहुत कम सफलता मिली है। इसलिए चाहे हम आधारभूत नियमों का एक पूर्ण समुच्चय खोज भी लें, तब भी आनेवाले वर्षों में बेहतर अनुमान पद्धति को विकसित करने का बौद्धिक रूप से चुनौतीपूर्ण कार्य हमारे सम्मुख होगा, जिससे कि जटिल और यथार्थवादी स्थितियों में हम सम्भावित निष्कर्षों का उपयोगी पूर्वानुमान कर सकें। एक पूर्ण, संगत, एकीकृत सिद्धान्त तो केवल प्रथम कदम है : हमारा लक्ष्य हमारे चारों ओर की घटनाओं का, तथा हमारे अपने अस्तित्व का एक पूर्ण बोध है।

अध्याय *12*

उपसंहार

हम स्वयं को एक विस्मयकारी संसार में पाते हैं। जो कुछ भी हम अपने चारों ओर देखते हैं उसका एक स्पष्ट अर्थ निकालना चाहते हैं और यह पूछना चाहते हैं, 'ब्रह्माण्ड की प्रकृति क्या है? हमारा इसमें क्या स्थान है, तथा यह और हम कहाँ से आए? यह ऐसा ही क्यों है?'

इन प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयास करने के लिए, हम विचारार्थ एक 'विश्व-चित्र' गढ़ लेते हैं। समतल पृथ्वी को सहारा देनेवाली कछुओं की एक अनन्त मीनार, एक ऐसा ही चित्र है, वैसी ही महाडोर (super strings) की परिकल्पना है। दोनों ही ब्रह्माण्ड की परिकल्पनाएँ हैं, हालाँकि बाद वाली परिकल्पना पहली वाली की अपेक्षा अधिक गणितीय तथा स्पष्ट है। दोनों ही परिकल्पनाओं में प्रेक्षणात्मक प्रमाण की कमी है : किसी ने भी पृथ्वी को अपनी पीठ पर धारण किए हुए उस विशाल कच्छप को नहीं देखा है, परन्तु फिर, किसी ने उस 'महाडोर' को भी नहीं देखा है। हालाँकि, कच्छप परिकल्पना एक अच्छे वैज्ञानिक सिद्धान्त का स्वरूप केवल इसलिए ग्रहण नहीं कर पाई क्योंकि यह इस तरह का पूर्वानुमान प्रस्तुत करती है कि पृथ्वी के किनारों से लोगों के गिरने की सम्भावना बनी रहनी चाहिए। यह आकलन अनुभव से सही नहीं पाया गया है, जब तक कि यह उन लोगों के अन्तर्धान हो जाने का ही कोई स्पष्टीकरण न हो जिनके बारे में यह माना जाता है कि वे बरमूडा-त्रिकोण (Bermuda Triangle) में समा गए थे!

ब्रह्माण्ड की व्याख्या करने तथा इसका वर्णन करने के प्रारम्भिक सैद्धान्तिक प्रयासों में यह विचार शामिल था कि प्राकृतिक तथा अन्य घटनाएँ मानवीय संवेगों से युक्त आत्माओं द्वारा नियन्त्रित की जाती हैं, जो एक बहुत-ही मानवोचित शैली में कार्य करती हैं जिसका पूर्वानुमान नहीं किया जा सकता। ये आत्माएँ सूर्य तथा चन्द्रमा के समान खगोलीय पिण्डों सहित, नदियों तथा पर्वतों जैसी प्राकृतिक वस्तुओं में निवास करती थीं। ऋतुओं के क्रमानुसार परिभ्रमण तथा भूमि की उर्वरता को सुनिश्चित करने के लिए उनको तुष्ट करना पड़ता था तथा उनकी अनुकम्पा अर्जित करनी पड़ती थी। बहरहाल, धीरे-धीरे यह देखा गया होगा कि प्रकृति में कुछ नियमितताएँ थीं : सूर्य सदैव पूर्व में उदित होता था तथा पश्चिम में अस्त होता था चाहे सूर्य-देव को पशु-बलि अर्पित की गई हो, या नहीं। इसके अतिरिक्त सूर्य, चन्द्रमा तथा ग्रह आकाश के आर-पार स्पष्ट मार्गों का अनुसरण करते थे, अतः उनकी स्थिति की समय से पूर्व ही बहुत परिशुद्धता के साथ भविष्यवाणी की जा सकती थी। सूर्य और चन्द्रमा शायद अब भी देवता होंगे, परन्तु यदि महाभारत में कौरव-पांडव युद्ध के समय जयद्रथ के वध के लिए सूर्य के रुक जाने जैसी पौराणिक गाथाओं पर कोई ध्यान नहीं देता है, तो स्पष्टतः बिना किसी अपवाद के वे ऐसे देवता थे जो शाश्वत सत्ता के कठोर नियमों का पालन करते थे।

प्रारम्भ में, ये नियमितताएँ तथा नियम केवल खगोल विज्ञान तथा कुछ अन्य स्थितियों में ही जाहिर थे। फिर सभ्यता के क्रमिक विकास के साथ और विशेष रूप से विगत 300 वर्षों में, और अधिकाधिक नियमितताएँ तथा नियम खोज लिए गए। इन नियमों की सफलता ने उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में लाप्लास को वैज्ञानिक नियतत्त्ववाद को एक आवश्यक तथ्य तथा आधार तत्त्व के रूप में स्वीकार करने के लिए प्रेरित किया; अर्थात् उन्होंने यह सुझाव दिया कि किसी

एक समय पर ब्रह्माण्ड के संरूपण को विवेचन के आधार के रूप में स्वीकारते हुए, नियमों का एक ऐसा समुच्चय अवश्य होगा जो ब्रह्माण्ड के क्रमिक विकास को बड़ी परिशुद्धता से सुनिश्चित करेगा।

लाप्लास का नियतत्त्ववाद दो तरीके से अपूर्ण था। एक तो यह इस सम्बन्ध में स्पष्ट नहीं था कि नियम किस प्रकार चुने जाने चाहिए, दूसरे इसने ब्रह्माण्ड के आद्य संरूपण के बारे में विस्तार से जानकारी नहीं दी। ये सब तार्किक आधार ईश्वर के ऊपर छोड़ दिए गए थे। ईश्वर ही यह चयन करेगा कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति वह किस प्रकार करे तथा फिर यह कौन से नियमों का पालन करे, परन्तु एक बार ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के बाद वह इसमें हस्तक्षेप नहीं करेगा। वस्तुतः ईश्वर को केवल उन क्षेत्रों तक सीमित कर दिया गया था, जिन्हें उन्नीसवीं शताब्दी का विज्ञान समझ नहीं पाया था।

अब हम यह जानते हैं कि लाप्लास के नियतत्त्ववाद की आशाएँ कम-से-कम उस रूप में स्वीकार नहीं की जा सकतीं, जिस रूप में यह विचार उनके मस्तिष्क में था। क्वाण्टम यान्त्रिकी के अनिश्चितता के सिद्धान्त से यह आशय निकलता है कि किसी कण की स्थिति तथा वेग जैसे राशि युग्मों में से दोनों का पूर्वानुमान पूर्ण परिशुद्धता से नहीं किया जा सकता। क्वाण्टम यान्त्रिकी इस स्थिति का सामना क्वाण्टम सिद्धान्तों के एक वर्ग के माध्यम से करती है, जिसमें कणों की कोई सुनिश्चित स्थितियाँ या वेग नहीं होते हैं, बल्कि वे एक तरंग द्वारा व्यक्त किए जाते हैं। ये क्वाण्टम सिद्धान्त इस अर्थ में निश्चायक (deterministic) हैं कि वे समय के साथ तरंग के क्रम-विकास के लिए नियम प्रदान करते हैं। अतः यदि कोई किसी एक समय पर तरंग को जानता है, तो वह किसी दूसरे समय पर इसका आकलन कर सकता है। अननुमेय तथा यादृच्छिक तत्त्व बीच में केवल तभी आता है, जब हम तरंग की व्याख्या, कणों की स्थितियों तथा वेग के सम्बन्ध में करने का प्रयास करते हैं। परन्तु, हो सकता है कि यह हमारी गलती हो : हो सकता है कि कणों की कोई भी स्थितियाँ तथा वेग न हों, परन्तु केवल तरंगें ही हों। यह तो ठीक ऐसा है कि हम तरंगों को स्थितियों तथा वेग के अपने पूर्व कल्पित विचारों में बिठाना चाहते हैं। परिणामी असमानता ही प्रत्यक्ष अननुमेयता (unpredictability) का कारण है।

वस्तुतः हमने इस तथ्य को पुनः परिभाषित किया है कि विज्ञान का कार्य उन नियमों की खोज करना है जो हमें अनिश्चितता के सिद्धान्त द्वारा निर्धारित सीमा तक घटनाओं का पूर्वानुमान करने में समर्थ बनाएँगे। बहरहाल, यह प्रश्न फिर भी अपने शाश्वत स्वरूप में बना रहता है : ब्रह्माण्ड की आद्य-अवस्था तथा नियम क्यों या किस प्रकार चुने गए थे?

इस पुस्तक में मैंने उन नियमों को विशेष प्रमुखता दी है जो गुरुत्व-बल को नियन्त्रित करते हैं, क्योंकि गुरुत्व-बल ही ब्रह्माण्ड की विशाल स्तरीय संरचना को सुगठित करता है, चाहे बलों की चारों श्रेणियों में यह सबसे क्षीण हो। गुरुत्व-बल के नियम बिल्कुल हाल ही के वर्षों तक प्रचलित इस अवधारणा से विसंगति रखते थे कि काल के सन्दर्भ में ब्रह्माण्ड अपरिवर्तनशील है। यह तथ्य कि गुरुत्व-बल सदैव आकर्षी होता है, यह संकेत देता है कि ब्रह्माण्ड का या तो निश्चित रूप से विस्तार हो रहा होगा या इसका संकुचन हो रहा होगा। आपेक्षिकता के सामान्य सिद्धान्त के अनुसार, भूतकाल में एक अपरिमित घनत्व की अवस्था—आद्य परमाणु का महाविस्फोट—अवश्य रही होगी जो काल का एक प्रभावी प्रारम्भ रहा होगा। इसी प्रकार, यदि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड फिर से ध्वस्त हो जाए, तब भविष्य में निश्चित रूप से एक और अपरिमित घनत्व की अवस्था आ जाएगी, महासम्पीडन (big crunch) की जो काल का अन्त होगा। यदि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पुनः ध्वस्त नहीं भी हुआ, तब भी उन स्थानीय क्षेत्रों, जो कृष्ण विवरों का निर्माण करने के लिए ध्वस्त हो गए थे, में विलक्षणता के बिन्दु (सिंगुलैरिटीज) मौजूद होने चाहिए। ये विलक्षणताएँ हर उस व्यक्ति के लिए समय का अन्त होंगी जो कृष्ण विवर में गिर जाएगा। महाविस्फोट या अन्य विलक्षणताओं के समय, विज्ञान के सभी नियम विफल हो जाएँगे, इसलिए ईश्वर के पास यह चयन करने की अब भी पूर्ण स्वतन्त्रता रहेगी कि क्या घटित हो तथा ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति वह किस प्रकार करे।

जब हम क्वाण्टम यान्त्रिकी का आपेक्षिकता के सामान्य सिद्धान्त के साथ समन्वय करते हैं, तब एक नई सम्भावना उभरती प्रतीत होती है, जो इससे पहले नहीं हुई थी : यह कि दिक् और काल मिलकर शायद पृथ्वी के पृष्ठ-तल के समान परन्तु अधिक विमाओं से युक्त, बिना विलक्षणताओं या परिसीमाओं के एक सीमाबद्ध, चार-विमाओं वाले आकाश का निर्माण करेंगे। ऐसा लगता है कि यह विचार ब्रह्माण्ड के अनेक प्रेक्षित अभिलक्षणों की स्पष्ट व्याख्या कर सकता था, जैसे विशाल स्तर पर ब्रह्माण्ड का समरूप होना तथा मन्दाकिनियों, तारों और यहाँ तक कि मानव जाति में भी लघु स्तर पर विषमता होना। यह काल की उस दिशा को भी स्पष्ट कर सकता था, जिसका हम प्रेक्षण करते हैं। परन्तु यदि ब्रह्माण्ड पूरी तरह से स्वयंपूर्ण है तथा यह विलक्षणताओं तथा परिसीमाओं से रहित है, तथा किसी एक एकीकृत सिद्धान्त द्वारा इसको पूर्णतः स्पष्ट किया जा सकता है, तब एक सृष्टिकर्ता के रूप में ईश्वर की भूमिका के इसमें गहन निहितार्थ हैं।

एक बार आइंस्टाइन ने यह प्रश्न पूछा था : ब्रह्माण्ड की रचना करने में ईश्वर के पास कितने विकल्प थे? यदि सीमाविहीनता का प्रस्ताव सही है, तो आद्य-अवस्थाओं का चयन करने के लिए उसे कोई स्वतन्त्रता नहीं थी। ब्रह्माण्ड जिन नियमों का पालन करता है, उनका चयन करने की स्वतन्त्रता तो निस्सन्देह उसे अब भी होती। बहरहाल, यह वास्तव में कोई उतना बड़ा विकल्प नहीं रहा होगा; पूर्ण एकीकृत सिद्धान्तों में से केवल एक या फिर बहुत कम ऐसे सिद्धान्त हो सकते हैं, जैसे विषम डोर का सिद्धान्त (heterotic string theory), जो स्वसंगत होते हैं तथा मानव जैसी जटिल संरचनाओं के अस्तित्व को सम्भव बनाते हैं, जो ब्रह्माण्ड के नियमों का अन्वेषण कर सकते हैं और ईश्वर की प्रकृति के बारे में प्रश्न पूछ सकते हैं।

हालाँकि सम्भावित एकीकृत सिद्धान्त केवल एक ही है, यह केवल नियमों तथा स्पष्टीकरणों का एक समुच्चय है। वह क्या चीज है जो समीकरणों में प्राण फूँकती है तथा एक ब्रह्माण्ड का निर्माण करती है जिससे कि वे उसकी व्याख्या कर सकें? एक गणितीय मॉडल बनाने का विज्ञान का जो सामान्य तरीका है, वह इन प्रश्नों के उत्तर नहीं दे सकता कि किसी मॉडल द्वारा वर्णनीय किसी ब्रह्माण्ड का अस्तित्व क्यों हो। ब्रह्माण्ड अस्तित्व की तमाम दिक्कतों की ओर क्यों अग्रसर होता है? क्या एकीकृत सिद्धान्त इतना बाध्यतापूर्ण है कि ब्रह्माण्ड स्वयं अपने अस्तित्व का जनक बन जाता है? या इसे किसी रचयिता की आवश्यकता होती है, और यदि ऐसा है, तो क्या वह ब्रह्माण्ड पर कोई अन्य प्रभाव डालता है? और फिर उसे (सृष्टिकर्ता को) किसने उत्पन्न किया?

अब तक, अधिकांश वैज्ञानिक, इस जिज्ञासा की सन्तुष्टि के लिए कि ब्रह्माण्ड है 'क्यों', नए-नए सिद्धान्तों के विकास में अत्यधिक व्यस्त रहे हैं जो यह बताते हैं कि ब्रह्माण्ड है 'क्या'। दूसरी ओर, वे दार्शनिकगण जिनका काम ही ऐसे प्रश्न पूछना है कि आखिर ब्रह्माण्ड का अस्तित्व है 'क्यों', वैज्ञानिक सिद्धान्तों की उन्नति के साथ कदम-से-कदम मिलाकर आगे नहीं चल सके। अठारहवीं शताब्दी में, विज्ञान सहित समस्त मानव ज्ञान को दार्शनिकगण अपना चिन्तन-क्षेत्र समझते थे तथा ऐसे प्रश्नों की परिचर्चा करते थे जैसेकि : क्या ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई थी? बहरहाल, उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दियों में केवल कुछ बहुत ही थोड़े विशेषज्ञों को छोड़कर, सभी दार्शनिकों व अन्य लोगों के लिए विज्ञान अत्यधिक तकनीकी तथा गणितीय हो गया। दार्शनिकों ने अपने अन्वेषण के कार्य-क्षेत्र को इतना कम कर लिया कि इस शताब्दी के सबसे प्रसिद्ध दार्शनिक विटजेनस्टीन (Wittgenstein) ने कहा था, 'दर्शनशास्त्र के लिए एकमात्र शेष कार्य भाषा का विश्लेषण है।' अरस्तू और काण्ट से प्रारम्भ तत्त्व मीमांसा की महान् परम्परा का यह कैसा पतन!

बहरहाल, यदि हम एक पूर्ण सिद्धान्त की खोज कर भी लेते हैं, तब भी वह केवल कुछ ही वैज्ञानिकों तक ही सीमित नहीं रहेगा, बल्कि कुछ समय के अन्तराल पर यह एक विस्तृत एवं स्पष्ट सिद्धान्त के रूप में प्रत्येक व्यक्ति के लिए बोधगम्य हो जाना चाहिए। तब दार्शनिक, वैज्ञानिक तथा सामान्य-जन—हम सभी इस प्रश्न की परिचर्चा में भाग ले सकेंगे कि हमारा तथा ब्रह्माण्ड का अस्तित्व आखिर क्यों है। यदि हम इस जिज्ञासा का उत्तर प्राप्त कर लेते हैं, तब यह

मानव-तर्कशक्ति की अन्तिम विजय होगी—क्योंकि फिर हमें ईश्वर के मानस का बोध हो जाएगा।

अल्बर्ट आइंस्टाइन

परमाणु बम की राजनीति से आइंस्टाइन का सम्बन्ध सुप्रसिद्ध है : राष्ट्रपति फ्रैंकलिन रूज़वेल्ट को सम्बोधित उस प्रसिद्ध पत्र पर उनके हस्ताक्षर थे जिसने संयुक्त राज्य अमरीका को इस विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने के लिए राजी किया था, तथा युद्ध के बाद वे परमाणु युद्ध रोकने में व्यस्त रहे। परन्तु राजनीति के संसार में घसीटे गए एक वैज्ञानिक के ये कोई फालतू के काम नहीं थे। वस्तुतः आइंस्टाइन का जीवन उन्हीं के शब्दों में 'राजनीति व समीकरणों के बीच बँटा हुआ' था।

प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान सबसे पहली बार आइंस्टाइन उस समय राजनीतिक रूप से सक्रिय हुए, जब वह बर्लिन में प्राध्यापक थे। मानव जीवन की बरबादी के रूप में जो कुछ उन्होंने देखा उससे विचलित होकर, वे युद्ध-विरोधी प्रदर्शनों से जुड़ गए। उन्होंने सविनय अवज्ञा की वकालत की तथा अनिवार्य सैनिक भर्ती अस्वीकार करने के लिए लोगों को सार्वजनिक रूप से प्रोत्साहित किया। उन्होंने इसकी परवाह नहीं की कि इससे उनके सहकर्मी खुश होते हैं या नाखुश। फिर, युद्ध के बाद वे अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध सुधारने और फिर से मेल-मिलाप स्थापित करने के लिए प्रयास करने लगे। उस कार्य ने भी उन्हें लोकप्रिय नहीं बनाया, और शीघ्र ही उनकी राजनीतिक गतिविधियाँ ऐसी उलटी पड़ गईं कि उन्हें अमरीका के अन्दर व्याख्यान देने के लिए भ्रमण करने में भी कठिनाई महसूस होने लगी।

आइंस्टाइन के लिए दूसरा बड़ा मुद्दा था यहूदीवाद। हालाँकि वे यहूदी वंश के थे, फिर भी आइंस्टाइन ने बाइबिल सम्बन्धी ईश्वर की अवधारणा को स्वीकार नहीं किया। बहरहाल, प्रथम विश्वयुद्ध से पहले और इसके दौरान, यहूदी-विरोधी साम्प्रदायिकता ने उन्हें धीरे-धीरे यहूदी समाज के साथ तादात्म्य स्थापित करने के लिए, तथा बाद में यहूदीवाद का एक प्रखर समर्थक बनने के लिए प्रेरित किया। एक बार फिर लोक-निन्दा उन्हें अपने विचारों को स्पष्टतया अभिव्यक्त करने से नहीं रोक सकी। उनके सिद्धान्तों पर आक्षेप किया गया; यहाँ तक कि एक आइंस्टाइन-विरोधी संगठन बनाया गया। आइंस्टाइन की हत्या करने के लिए दूसरों को भड़काने के अभियोग में एक आदमी को अपराधी ठहराया गया (और उस पर केवल छह डॉलर जुर्माना किया गया)। परन्तु आइंस्टाइन ने बुरा नहीं माना। जब 'आइंस्टाइन के विरुद्ध 100 लेखक' (100 Authors Against Einstein) शीर्षक से एक पुस्तक प्रकाशित हुई, तो उन्होंने केवल इतना कहा, "यदि मैं गलत होता, तो एक ही काफी होता।"

सन् 1933 में हिटलर सत्ता में आया! उस समय आइंस्टाइन अमरीका में थे, और उन्होंने यह घोषणा कर दी कि वह जर्मनी नहीं लौटेंगे। इसके बाद, जब नात्सी सैनिकों ने उनके घर पर छापा मारा तथा उनके बैंक खातों को जब्त कर लिया, तब बर्लिन के एक समाचार-पत्र ने इस सुर्खी के साथ समाचार छापा था, "आइंस्टाइन से शुभ सूचना—वह वापस नहीं आ रहे।" नात्सी धमकियों के सामने आइंस्टाइन ने शान्तिवादिता को छोड़ दिया, और इस भय से कि कहीं जर्मन वैज्ञानिक पहले ही परमाणु बम न बना लें, उन्होंने यह प्रस्ताव रखा कि संयुक्त राज्य अमरीका को अपना निजी परमाणु बम विकसित करना चाहिए। परन्तु जब प्रथम परमाणु बम का विस्फोट भी नहीं हुआ था, तब से वे सार्वजनिक रूप से परमाणु युद्ध के खतरों की चेतावनी दे रहे थे तथा नाभिकीय शस्त्रों पर अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण का प्रस्ताव रख रहे थे।

जीवन-भर, शान्ति के लिए आइंस्टाइन के प्रयासों को सम्भवतः किंचित ही स्थायी सफलता मिली—तथा इससे उनके मित्रों की संख्या में भी निश्चित रूप से कोई वृद्धि नहीं हुई। बहरहाल, यहूदीवादी हितों के प्रति उनके मौखिक समर्थन को सन् 1952 में उस समय मान्यता मिली जब उन्हें इजराइल के राष्ट्रपति पद की पेशकश की गई। उन्होंने यह कहते हुए यह प्रस्ताव ठुकरा दिया था कि वह राजनीति में बिल्कुल अनुभवहीन हैं। परन्तु शायद इसका वास्तविक कारण कुछ और था : पुनः उन्हीं को उद्धृत करते हुए, “मेरे लिए समीकरण अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि राजनीति तो केवल वर्तमान के लिए होती है, जबकि एक समीकरण अनन्तकाल की निधि होती है।”

गैलीलियो गैलिली

आधुनिक विज्ञान के जन्म के लिए, शायद किसी भी अन्य व्यक्ति की अपेक्षा गैलीलियो ही अधिक उत्तरदायी थे। कैथोलिक चर्च के साथ उनका प्रख्यात विवाद उनके दर्शन का केन्द्र बिन्दु था, क्योंकि गैलीलियो यह तर्क देनेवाले सबसे पहले व्यक्ति थे कि मनुष्य यह समझने की आशा कर सकता है कि यह विश्व-प्रणाली कैसे चलती है, तथा वास्तविक संसार के प्रेक्षण से हम यह कार्य कर सकते हैं।

गैलीलियो का शुरू से ही कॉपर्निकस के सिद्धान्त में विश्वास था (कि ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हैं), परन्तु जब उन्होंने इस अवधारणा के समर्थन के लिए आवश्यक प्रमाण प्राप्त कर लिए, केवल तभी उन्होंने इसे सार्वजनिक रूप में समर्थन देना प्रारम्भ किया। उन्होंने कॉपर्निकस के सिद्धान्त के सम्बन्ध में इतालवी भाषा में लिखा (सामान्य शास्त्रीय भाषा लैटिन में नहीं), और शीघ्र ही उनके विचारों को विश्वविद्यालयों से बाहर विस्तृत समर्थन मिलना प्रारम्भ हो गया। इससे अरस्तूवादी प्राध्यापक बेचैन हो गए। वे गैलीलियो के विरुद्ध एकजुट हो गए तथा कॉपर्निकस के विचारों पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए कैथोलिक चर्च को मनाने का प्रयास करने लगे।

इससे चिन्तित, गैलीलियो ने चर्च के प्राधिकारियों से बात करने के लिए रोम तक की यात्रा की। उन्होंने यह तर्क दिया कि बाइबिल का मन्तव्य वैज्ञानिक सिद्धान्तों के बारे में हमें कुछ बताना नहीं है, और यह मान लेना एक सामान्य बात है कि जहाँ बाइबिल की व्यावहारिक ज्ञान से सहमति नहीं है, वहाँ वह प्रतीकात्मक हो गई है। परन्तु चर्च को लगा कि इस वितण्डावाद से प्रोटेस्टैण्ट सम्प्रदाय के विरुद्ध उसके संघर्ष को क्षति पहुँचेगी और इसीलिए उसने दमनकारी नीति अपनाई। चर्च ने सन् 1616 में कॉपर्निकस की अवधारणाओं को 'झूठी और गलत' घोषित कर दिया और गैलीलियो को यह आदेश दिया कि वह फिर कभी इस सिद्धान्त पर 'विश्वास या इसका बचाव' न करे। गैलीलियो ने चुपचाप मान लिया।

सन् 1623 में, गैलीलियो के एक पुराने मित्र पोप बन गए। गैलीलियो ने तुरन्त ही सन् 1616 के आदेश को निरस्त कराने का प्रयास किया। वह इसमें तो सफल नहीं हुए, परन्तु दो प्रतिबन्धों के साथ अरस्तू और कॉपर्निकस, दोनों के सिद्धान्तों की परिचर्चा करते हुए एक पुस्तक लिखने की अनुमति उन्हें अवश्य मिल गई : पहली पाबन्दी यह थी कि वे दोनों में से किसी का भी पक्ष नहीं लेंगे तथा दूसरी यह कि वह इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि मनुष्य किसी भी स्थिति में यह सुनिश्चित नहीं कर सकता कि संसार की कार्य-प्रणाली किस प्रकार काम करती है क्योंकि ईश्वर मनुष्य की कल्पना से परे विभिन्न तरीकों से यही प्रभाव उत्पन्न कर सकता है और मनुष्य ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता पर प्रतिबन्ध नहीं लगा सकता।

'दो मुख्य विश्व-प्रणालियों के विषय में संवाद' (Dialogue Concerning the Two Chief World Systems) नामक यह पुस्तक सेंसर करनेवाले अधिकारियों के पूर्ण समर्थन के साथ सन् 1632 में प्रकाशित हुई थी तथा एक श्रेष्ठ साहित्यिक एवं दार्शनिक कृति के रूप में पूरे यूरोप में तुरन्त ही इसका स्वागत किया गया। परन्तु यह अनुभव करते हुए कि लोग इस पुस्तक को कॉपर्निकस की अवधारणाओं के पक्ष में एक विश्वसनीय तर्क के रूप में देख रहे हैं, पोप ने इस पुस्तक के प्रकाशन की अनुमति देने के लिए खेद प्रकट किया। पोप ने यह तर्क दिया कि हालाँकि पुस्तक को सेंसर अधिकारियों का सरकारी आशीर्वाद प्राप्त था, फिर भी गैलीलियो ने सन् 1616

के आदेश के विरोध में कार्य किया। उन्होंने गैलीलियो को धर्माधिकरण के सम्मुख उपस्थित होने का आदेश दिया, जिसने उन्हें जीवन-भर घर में ही नजरबन्द रहने का दण्डादेश दिया तथा उन्हें सार्वजनिक रूप से कॉपर्निकस के विचारों से सम्बन्ध तोड़ लेने की आज्ञा दी। दूसरी बार भी, गैलीलियो ने चुपचाप मान लिया।

गैलीलियो एक आस्थावान कैथोलिक बने रहे, परन्तु विज्ञान की स्वाधीनता में उनका विश्वास कभी नहीं टूटा। अपनी मृत्यु से चार वर्ष पहले सन् 1642 में जबकि वह अब भी अपने घर पर नजरबन्द थे, उनकी दूसरी बड़ी पुस्तक की पाण्डुलिपि चोरी से हॉलैण्ड के एक प्रकाशक के पास पहुँचा दी गई। कॉपर्निकस के प्रति अपने समर्थन से भी कहीं अधिक, 'दो नए विज्ञान' (Two New Sciences) के रूप में उल्लिखित यही वह कृति थी जिससे आधुनिक भौतिकी की शुरुआत हुई।

आइज़क न्यूटन

आइज़क न्यूटन कोई खुशमिजाज इनसान नहीं थे। दूसरे विद्वानों से उनकी बनती नहीं थी और जीवन के सन्ध्याकाल में ज्यादातर वे सभी से उलझते रहे। 'प्रिंसिपिया मैथेमैटिका' (Principia Mathematica)—भौतिकी में कभी भी लिखी गई निश्चित रूप ते सर्वाधिक प्रभावशाली पुस्तक—के प्रकाशन के बाद, न्यूटन को शीघ्र ही सार्वजनिक रूप से विशिष्ट ख्याति प्राप्त हो गई। उन्हें 'रॉयल सोसायटी' का अध्यक्ष नियुक्त किया गया तथा वह पहले वैज्ञानिक थे जिन्हें नाइट (Knight) की उपाधि से विभूषित किया गया।

न्यूटन जल्दी ही राजकीय खगोलशास्त्री जॉन फ्लेमस्टीड (John Flamsteed) से भिड़ गए। फ्लेमस्टीड ने पहले 'प्रिंसिपिया' के लिए आवश्यक आँकड़ों की काफी आधार-सामग्री जुटाई थी, परन्तु अब न्यूटन जिस सूचना सामग्री को चाहते थे, वह उसे उपलब्ध कराने से इनकार कर रहे थे। न्यूटन किसी प्रश्न के उत्तर में 'न' सुनने के आदी नहीं थे : उन्होंने स्वयं को राजकीय वेधशाला की संचालन समिति का सदस्य नियुक्त करा लिया तथा फिर आँकड़ों के तत्काल प्रकाशन के लिए दबाव बनाने का प्रयास किया। उन्होंने फ्लेमस्टीड के शोध-कार्य को जब्त किए जाने की कार्रवाई की तथा फ्लेमस्टीड के विकट शत्रु एडमण्ड हैली द्वारा उस शोध-कार्य को प्रकाशित कराने की तैयारी की। परन्तु फ्लेमस्टीड मामले को अदालत में ले गए और, ऐन मौके पर, चुराए हुए शोध-कार्य के वितरण को रोकने के लिए न्यायालय का एक आदेश प्राप्त करने में सफल हो गए। इससे न्यूटन और क्रोधित हो गए तथा उन्होंने 'प्रिंसिपिया' के बाद के संस्करणों में फ्लेमस्टीड के सारे सन्दर्भ क्रमबद्ध तरीके से हटाकर अपना प्रतिशोध लिया।

उनका एक और अधिक गम्भीर विवाद एक जर्मन दार्शनिक गोटफ्रीड लिबनिज़ (Gottfried Leibniz) के साथ हुआ। लिबनिज़ और न्यूटन दोनों ने स्वतन्त्र रूप से गणित की एक शाखा—'कैलकुलस' विकसित की थी, जो अधिकांशतः आधुनिक भौतिकी का आधार है। हालाँकि अब हम यह जानते हैं कि न्यूटन ने लिबनिज़ से वर्षों पहले 'कैलकुलस' की खोज कर ली थी, फिर भी उन्होंने अपने कार्य को काफी बाद में प्रकाशित कराया। और फिर बाद में इस बात पर कि दोनों में से कौन पहला था, एक बड़ा झगड़ा शुरू हो गया। वैज्ञानिक दोनों प्रतियोगियों का प्रबलता से बचाव कर रहे थे। बहरहाल, एक अद्भुत बात यह है कि न्यूटन के बचाव में प्रकाशित होनेवाले अधिकांश लेख मूलतः उन्हीं के द्वारा लिखे गए थे—और मित्रों के नाम से केवल उन्हें प्रकाशित किया गया था! जैसे ही यह विवाद गहराया, लिबनिज़ ने इस विवाद को सुलझाने के लिए 'रॉयल सोसायटी' के समक्ष अपील करने की एक गलती कर दी। अध्यक्ष के रूप में, न्यूटन ने जाँच-पड़ताल करने के लिए एक 'निष्पक्ष' समिति नियुक्त कर दी, जो संयोग से पूर्णरूपेण न्यूटन के मित्रों की बनी हुई थी! परन्तु यही पर्याप्त नहीं था : न्यूटन ने फिर उस समिति की रिपोर्ट भी स्वयं ही लिखी और आधिकारिक रूप से लिबनिज़ पर साहित्यिक चोरी का दोषारोपण करते हुए रॉयल सोसायटी से इसका प्रकाशन कराया। इतने पर भी सन्तुष्टि न मिलने पर, रॉयल सोसायटी की अपनी आवधिक पत्रिका में उन्होंने फिर उस रिपोर्ट की एक गुमनाम समालोचना लिखी। लिबनिज़ की मृत्यु के बाद, यह बताया जाता है कि न्यूटन ने यह ऐलान किया था कि 'लिबनिज़ का दिल तोड़ देने में' उसे बड़ी राहत मिली थी।

इन दोनों विवादों के दौरान, न्यूटन पहले ही कैम्ब्रिज और अकादमी छोड़ चुके थे। पहले

कैम्ब्रिज में, तथा बाद में संसद में भी वह कैथोलिक-विरोधी राजनीति में सक्रिय रहे थे, और अन्ततः उन्हें शाही टकसाल के वार्डन के लाभकारी पद पर नियुक्त कर पारितोषिक दिया गया था। यहाँ उन्होंने जाली सिक्के बनाने की धोखाधड़ी के विरुद्ध सफलतापूर्वक एक बड़ा अभियान चलाकर तथा अनेक लोगों को फाँसी के तख्ते पर चढ़ाकर, सामाजिक रूप से और अधिक स्वीकार्य रूप में, कुटिलता तथा कटु आलोचना के लिए अपनी प्रतिभा का उपयोग किया।

वैज्ञानिक शब्दावली

सूक्ष्म तरंग पृष्ठभूमि विकिरण (Microwave background radiation**) :** अत्यन्त तप्त प्रारम्भिक ब्रह्माण्ड के उद्दीपन से उत्सर्जित विकिरण, अब इतना अधिक अभिरक्त-विस्थापित कि यह प्रकाश के रूप में नहीं, बल्कि सूक्ष्म तरंगों (कुछ सेण्टीमीटर के तरंग-दैर्घ्य की रेडियो तरंग) के रूप में दिखाई पड़ता है।

अनावृत विलक्षणता या सिंगुलैरिटी (Naked singularity**) :** वह दिक्-काल विलक्षणता जो किसी कृष्ण विवर द्वारा आवृत न हो।

अपवर्जन सिद्धान्त (Exclusion principle**) :** यह अवधारणा कि 1/2 प्रचक्रण या स्पिन वाले दो समान कणों की (अनिश्चितता के सिद्धान्त द्वारा निर्धारित सीमाओं के अन्तर्गत) एक समान स्थिति तथा उनका एक समान वेग नहीं हो सकता।

अभिरक्त-विस्थापन (Red shift**) :** जब कोई तारा या अन्य स्रोत प्रेक्षक से परे गतिशील होता है, तो उससे उत्सर्जित प्रकाश की तरंगें, डॉप्लर प्रभाव के कारण, लाल रंग की तरफ खिसक जाती हैं, अर्थात् तरंग-दैर्घ्य बढ़ जाता है तथा आवृत्ति घट जाती है। इसे अभिरक्त-विस्थापन कहते हैं।

आइंस्टाइन-रोज़ेन सेतु (Einstein-Rosen bridge**) :** दो कृष्ण विवरों को जोड़नेवाली दिक्-काल की एक अत्यन्त पतली नलिका। कृमि-छिद्र या वर्म होल भी देखें।

आकाश-काल या दिक्-काल (Space-time**) :** ब्रह्माण्ड में निहित चार विमाओं (लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई तथा काल या समय) वाला आकाश-काल, घटनाएँ जिसके बिन्दुओं द्वारा परिभाषित होती हैं।

आकाशीय विमा (Spatial dimension**) :** तीन विमाओं वाले (लम्बाई, चौड़ाई तथा ऊँचाई से युक्त) आकाश में कोई भी एक विमा—अर्थात् समय की विमा को छोड़कर, कोई एक विमा।

आद्य कृष्ण विवर (Primordial black hole**) :** वे कृष्ण विवर जो ब्रह्माण्ड की बहुत ही प्रारम्भिक अवस्था में उत्पन्न हुए थे।

डोर सिद्धान्त (String theory**) :** भौतिकी का एक सिद्धान्त जिसमें कणों को डोरों पर तरंगों के रूप में वर्णित किया जाता है। एक विमा वाले इन डोरों में केवल लम्बाई होती है।

अनिश्चितता का सिद्धान्त (Uncertainty principle**) :** हाइजेनबर्ग द्वारा प्रतिपादित इस सिद्धान्त के अनुसार कोई भी, कण की स्थिति या वेग दोनों को एक साथ पूर्ण परिशुद्धता से नहीं जान सकता। जितनी अधिक परिशुद्धता से आप एक राशि को जान पाते हैं, उतनी ही कम परिशुद्धता से आप दूसरी राशि को जान पाएँगे।

आवृत्ति (Frequency**) :** किसी तरंग के लिए, प्रति सेकिण्ड पूर्ण आवर्तनों (cycles) की संख्या।

इलेक्ट्रोन (Electron) : एक ऋणावेशित कण जो परमाणु (एटम) के नाभिक (न्यूक्लियस) के चारों ओर विभिन्न कक्षाओं में घूमता रहता है।

ऊर्जा संरक्षण (Conservation of energy) : विज्ञान का वह नियम जो यह बताता है कि ऊर्जा (या इसके समतुल्य द्रव्यराशि) न उत्पन्न की जा सकती है और न नष्ट की जा सकती है।

एटम (Atom) : सामान्य पदार्थ की वह मूल इकाई, जिसके मध्य में प्रोटोनों तथा न्यूट्रोनों से निर्मित एक नन्हा-सा नाभिक होता है तथा नाभिक के चारों ओर इलेक्ट्रोन चक्कर लगाते रहते हैं।

कण त्वरित्र (Particle accelerator) : विद्युत चुम्बकों का प्रयोग करके गतिशील आवेशित कणों को अत्यधिक ऊर्जाओं तक त्वरित करनेवाला कोई यन्त्र।

कृष्ण विवर (Black hole) : दिक्-काल का वह क्षेत्र जिसमें अत्यन्त प्रबल गुरुत्व-बल होता है इसीलिए इसमें से कुछ भी यहाँ तक कि प्रकाश-किरण भी बाहर नहीं जा सकती।

कृष्ण पदार्थ (Dark matter) : मन्दाकिनियों, उनके गुच्छों तथा सम्भवतः गुच्छों के मध्य का वह पदार्थ जिसका प्रत्यक्ष रूप से प्रेक्षण करना सम्भव नहीं है, परन्तु इसके गुरुत्वीय प्रभाव द्वारा इसका पता लगाया जा सकता है। ब्रह्माण्ड का लगभग 90 प्रतिशत द्रव्यमान कृष्ण या अदीप्त पदार्थ के रूप में हो सकता है।

कृमि-छिद्र (Worm hole)या सुरगं : ब्रह्माण्ड के दूरस्थ क्षेत्रों को जोड़नेवाली दिक्-काल की एक पतली नलिका। कृमि-छिद्र सम्भवतः समान्तर अथवा नवोदित शिशु ब्रह्माण्डों को भी जोड़ सकते हैं और काल यात्रा की सम्भावना साकार कर सकते हैं।

काल्पनिक काल (Imaginary time) : काल्पनिक संख्याओं के प्रयोग द्वारा मापित काल।

आभासी कण (Virtual particles) : क्वाण्टम यान्त्रिकी में, वे कण जिनका प्रत्यक्ष रूप से कभी भी पता नहीं लगाया जा सकता। किसी भी प्रेक्षण यन्त्र की परिधि में आने से पूर्व ही वे कण-प्रतिकण टकराकर नष्ट हो जाते हैं तथा ऊर्जा में बदल जाते हैं। चाहे इनका अस्तित्व अल्पकालिक हो, परन्तु इनके प्रभाव का अनुमापन किया जा सकता है। इस तरह इनके अस्तित्व की पुष्टि हो चुकी है।

केसीमिर प्रभाव (Casimir effect) : वह आकर्षी दबाव (attractive pressure) जो निर्वात में बहुत पास-पास रखी दो सपाट एवं समांतर धातु की प्लेटों के मध्य होता है। इन प्लेटों के बीच आभासी कणों की सामान्य संख्या में गिरावट के कारण ही यह दाब उत्पन्न होता है।

क्वाण्टम (Quantum) : वह अविभाज्य इकाई जिसमें तरंगें उत्सर्जित या अवशोषित की जा सकती हैं।

क्वाण्टम क्रोमोडायनामिक्स (Quantum chromodynamics; QCD) : वह सिद्धान्त जो क्वार्कों या ग्लुओनों की अन्योन्य क्रियाओं का वर्णन करता है।

क्वाण्टम-यान्त्रिकी (Quantum mechanics) : प्लांक के क्वाण्टम सिद्धान्त तथा हाइजेनबर्ग के अनिश्चितता के सिद्धान्त से विकसित एक सिद्धान्त।

क्वार्क (Quark) : एक (आवेशित) मौलिक कण जिस पर दृढ़ नाभिकीय बल कार्य करता है। प्रोटोन तथा न्यूट्रोन में दोनों की रचना ही तीन क्वार्कों से होती है।

गामा किरणें (Gamma Rays) : बहुत ही कम तरंग दैर्घ्य की विद्युत-चुम्बकीय तरंगें जो रेडियोधर्मी क्षय (radioactive decay) या मूल कणों के आपसी संघट्टों (collisions) द्वारा उत्पन्न होती हैं।

घटना (Event**) :** दिक्-काल में एक बिन्दु जिसकी स्थिति इसके समय व स्थान द्वारा स्पष्ट की जाती है।

घटना क्षितिज (Event horizon**) :** कृष्ण विवर की परिसीमा।

चन्द्रशेखर सीमा (Chandrashekher limit**) :** किसी स्थायी अतप्त (cold) तारे की अधिकतम सम्भावित द्रव्यराशि। इस सीमा से अधिक द्रव्यराशि होने पर गुरुत्वीय निपात द्वारा तारा एक कृष्ण विवर में परिवर्तित हो जाएगा।

चुम्बकीय क्षेत्र (Magnetic field**) :** चुम्बकीय बलों के लिए उत्तरदायी क्षेत्र, अब विद्युत क्षेत्र के साथ विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र में समाविष्ट।

तरंग-दैर्घ्य (Wavelength**) :** किसी तरंग में दो क्रमिक शीर्षों या गर्तों (द्रोणिकाओं) के बीच की दूरी।

तरंग/कण द्वैतता (Wave/particle duality**) :** क्वाण्टम यान्त्रिकी में यह अवधारणा कि तरंगों तथा कणों के मध्य कोई अन्तर नहीं है। कभी कण तरंगों की तरह तो कभी तरंगें कणों की तरह व्यवहार कर सकती हैं।

त्वरण (Acceleration**) :** किसी वस्तु की गति में परिवर्तन की दर।

कला (Phase**) :** किसी तरंग के लिए, निर्दिष्ट समय पर इसके आवर्तन (cycle) में, शीर्ष, गर्त या दोनों के मध्य की कोई स्थिति।

द्वैतता (Duality**) :** स्पष्ट रूप से भिन्न उन सिद्धान्तों के मध्य समानता जिनके भौतिक परिणाम एक समान होते हैं।

द्रव्यमान (Mass**) :** किसी पिण्ड में पदार्थ का परिमाण; इसका जड़त्व या पदार्थ द्वारा अपनी विरामावस्था में एक समान गति को प्रभावित करनेवाले किसी भी बल का प्रतिरोध।

दुर्बल या क्षीण नाभिकीय बल (Weak force**) :** चारों मौलिक बलों में यह दूसरा सबसे दुर्बल बल है। इसका प्रभाव क्षेत्र बहुत छोटा होता है। यह बल-वाहक कणों को छोड़कर सभी पदार्थ-कणों को प्रभावित करता है।

नाभिक (Nucleus**) :** परमाणु के केन्द्रीय भाग को नाभिक कहते हैं। इसमें प्रोटोन तथा न्यूट्रोन होते हैं जिनको दृढ़ नाभिकीय बलों द्वारा असाधारण स्थिरता प्रदान की जाती है।

नाभिकीय संलयन (Nuclear fusion**) :** एक ताप-नाभिकीय अभिक्रिया जिसमें नाभिक अत्यन्त उच्च ताप व दाब के अन्तर्गत एकीकृत होकर अपेक्षाकृत अधिक परमाणु भार के नाभिक उत्पन्न करते हैं।

न्यूट्रोन तारा (Neutron star**) :** एक अतप्त (cold) तारा जिसमें अपवर्जन सिद्धान्त के अनुसार न्यूट्रोनों के मध्य लगनेवाले प्रतिकर्षण बलों के मान अधिक होते हैं।

न्यूट्रोन (Neutron**) :** अनावेशित कण जो प्रोटोन के अनुरूप ही होते हैं। एक परमाणु नाभिक में, मोटे तौर पर, इन कणों की संख्या आधी होती है।

न्यूट्रिनो (Neutrino**) :** यह अत्यन्त ही हल्के (सम्भवतः द्रव्यमानरहित) कण हैं जो केवल दुर्बल नाभिकीय बल तथा गुरुत्व बल से प्रभावित होते हैं।

निर्देशांक (Coordinates**) :** दिक् और काल में किसी बिन्दु की स्थिति को स्पष्ट करने वाली संख्याएँ।

क्षीण-वैद्युत एकीकरण ऊर्जा (Electroweak unification energy**) :** लगभग

100 GeV की वह ऊर्जा जिसके ऊपर विद्युत चुम्बकीय बल तथा क्षीण बल के मध्य अन्तर समाप्त हो जाता है।

परम शून्य (Absolute zero**) :** निम्नतम सम्भावित तापमान जिस पर पदार्थ में कोई ऊष्मीय ऊर्जा नहीं बचती।

प्रचक्रण या स्पिन (Spin**) :** मूल कणों का एक आन्तरिक गुणधर्म, जो प्रचक्रण की दिन-प्रतिदिन की सामान्य धारणा से सम्बन्धित तो है, परन्तु समरूप नहीं है।

प्रकाश-शंकु (Light cone**) :** दिक्-काल में वह पृष्ठ-तल जो किसी प्रदत्त घटना से होकर गुजरनेवाली प्रकाश किरणों के लिए सम्भावित दिशाएँ सीमांकित करता है।

प्रकाश सेकिण्ड (प्रकाश वर्ष) (Light Second**) (**Light Year**) :** खगोल भौतिकी में प्रयोग किया जानेवाला दूरी का वह माप जो प्रकाश द्वारा एक सेकिण्ड (वर्ष) में तय की हुई दूरी के बराबर है।

प्रतिकण (Antiparticle**) :** प्रत्येक पदार्थ कण का द्रव्यमान, प्रचक्रण व आयु में तो उसके ही समान, परन्तु विद्युत चुम्बकीय व अन्य गुणधर्मों में ठीक उसके विपरीत गुण वाला कण। जब कोई कण अपने प्रतिकण से टकराता है, तो वे एक-दूसरे का पूर्ण विनाश कर देते हैं तथा ऊर्जा में बदल जाते हैं।

पोजिट्रोन (Positron**) :** पोजिट्रोन इलेक्ट्रोन का प्रतिकण है। यह धनावेशित कण है जिसके द्रव्यमान और आवेश इलेक्ट्रोन के द्रव्यमान तथा आवेश के बराबर होते हैं।

प्लांक का क्वाण्टम सिद्धान्त (Planck's quantum principle**) :** यह अवधारणा कि प्रकाश (या अन्य क्लासिकल तरंगें) केवल पृथक क्वाण्टा में ही उत्सर्जित या अवशोषित की जा सकती हैं, इनकी ऊर्जा इनके तरंग-दैर्घ्य के समानुपाती होती है।

प्रोटोन (Proton**) :** प्रोटोन धनावेशित कण है। ये न्यूट्रोन के अनुरूप होते हैं। अधिकांश परमाणुओं के नाभिकों में, मोटे तौर पर, इन कणों की संख्या आधी होती है।

फोटोन (Photon**) :** प्रकाश (विद्युत चुम्बकीय विकिरण) का एक क्वाण्टम।

ब्रह्माण्डिकी या ब्रह्माण्ड विज्ञान (Cosmology**) :** ब्रह्माण्ड की संरचना, विकास आदि का सम्पूर्ण अध्ययन।

ब्रह्माण्डिकीय स्थिरांक (Cosmological constant**) :** दिक्-काल को विस्तृत होने की एक सन्निहित प्रवृत्ति प्रदान करने के लिए आइंस्टाइन द्वारा प्रयुक्त एक गणितीय युक्ति।

भार (Weight**) :** गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र द्वारा किसी वस्तु पर लगनेवाला बल। यह वस्तु की द्रव्यराशि के समानुपाती होता है (परन्तु उसके समान नहीं होता)।

जियोडेसिक (Geodesic**) :** दो बिन्दुओं के मध्य सबसे छोटा (या सबसे बड़ा) मार्ग।

महाविस्फोट या महानाद (Big bang**) :** ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के समय सिंगुलैरिटी या लगभग असीमित घनत्व व ताप वाली विलक्षणता की स्थिति।

महासम्पीडन या दाब (Big crunch**) :** ब्रह्माण्ड की समाप्ति के समय सिंगुलैरिटी या असीमित घनत्व व ताप वाली विलक्षणता की स्थिति।

महाएकीकरण ऊर्जा (Grand unification energy**) :** वह ऊर्जा जिसके ऊपर यह विश्वास किया जाता है कि विद्युत चुम्बकीय बल, दृढ़ नाभिकीय बल तथा क्षीण नाभिकीय बल एक-दूसरे से अविभेद्य हो जाते हैं।

महाएकीकृत सिद्धान्त (Grand unified theory; GUT) : वह सिद्धान्त जो विद्युत चुम्बकीय, दृढ़ नाभिकीय तथा क्षीण नाभिकीय बलों का एकीकरण करता है।

मानवीय या नृ-सिद्धान्त (Anthropic principle) : हम ब्रह्माण्ड को इस स्वरूप में केवल इसलिए देखते हैं क्योंकि यदि यह भिन्न होता, तो इसका प्रेक्षण करने के लिए हम यहाँ नहीं होते।

मूल कण (Elementary particle) : ऐसा कण, जिसके बारे में यह विश्वास किया जाता है कि इसको आगे विभाजित नहीं किया जा सकता।

राडार (Radar) : स्पन्दों के रूप में रेडियो तरंगों का प्रयोग करनेवाली एक प्रणाली जिसका उपयोग वस्तुओं की स्थिति का पता लगाने के लिए किया जाता है। इसमें वस्तु तक रेडियो स्पन्दों के पहुँचने और उससे टकराकर वापस लौटने का समय मापा जाता है।

रेडियोधर्मिता (Radioactivity) : नाभिक का स्वतः विघटन जिसमें विकिरण निकलता है। इस प्रक्रम में एक प्रकार का परमाणु नाभिक दूसरे प्रकार के परमाणु नाभिक में परिवर्तित हो जाता है।

वर्णक्रम (Spectrum) : आवृत्तियों का विस्तृत परिसर जिसमें तरंगों का कोई विशिष्ट सर्वसामान्य अभिलक्षण पाया जाता है। सूर्य के वर्णक्रम का दृश्य भाग इन्द्रधनुष में देखा जा सकता है।

विलक्षणता या सिंगुलैरिटी (Singularity) : दिक्-काल में एक ऐसा बिन्दु जिस पर दिक्-काल की वक्रता असीमित हो जाती है।

विद्युत आवेश (Electric charge) : किसी कण का वह गुणधर्म जिसके द्वारा वह उसी (या विपरीत) आवेश वाले दूसरे कणों को प्रतिकर्षित (या आकर्षित) कर सकता है।

विद्युत चुम्बकीय बल (Electromagnetic force) : विद्युत आवेश वाले कणों के मध्य उत्पन्न होनेवाला बल; चारों मूल बलों में दूसरा सबसे शक्तिशाली बल।

विशिष्ट आपेक्षिकता (Special relativity) : आइंस्टाइन का सिद्धान्त जो इस अवधारणा पर आधारित है कि गुरुत्वीय प्रभावों की अनुपस्थिति में विज्ञान के नियम सभी प्रेक्षकों के लिए समान होते हैं चाहे वे कैसे भी गतिशील हों।

श्वेत वामन (White dwarf) : यह स्थायी ठण्डा तारा होता है। यह अपवर्जन सिद्धान्त के अनुसार इलेक्ट्रोनों के मध्य प्रतिकर्षण पर अवलम्बित होता है।

सबल या दृढ़ बल (Strong force) : चारों मूल बलों में यह सर्वाधिक शक्तिशाली बल है, परन्तु इसका प्रभाव क्षेत्र सबसे छोटा होता है। यह केवल नाभिकीय दूरी तक प्रभावी होता है। यह बल प्रोटोनों तथा न्यूट्रोनों में क्वार्कों को संगठित रखता है तथा परमाणु को एक आकार प्रदान करने के लिए प्रोटोनों तथा न्यूट्रोनों को संगठित रखता है।

समानुपातिक (Proportional) : 'X, Y के समानुपातिक है' इसका तात्पर्य यह है कि जब Y को किसी संख्या से गुणा किया जाता है तो X को भी उसी संख्या से गुणा किया जाता है। 'X, Y के व्युत्क्रमानुपातिक है' इसका तात्पर्य यह है कि जब Y को किसी संख्या से गुणा किया जाता है, तो X को उसी संख्या से भाग दिया जाता है।

साधारण या सामान्य आपेक्षिकता (General relativity) : इस अवधारणा पर आधारित आइंस्टाइन का सिद्धान्त कि विज्ञान के नियम सभी प्रेक्षकों के लिए समान होने चाहिए, चाहे वे कैसे भी गतिशील हों। चार विमाओं वाले दिक्-काल की वक्रता के रूप में यह सिद्धान्त गुरुत्व-बल की व्याख्या करता है।

सिंगुलैरिटी थ्योरम या विलक्षणता प्रमेय (Singularity theorem**) :** वह प्रमेय जो यह सिद्ध करता है कि कुछ निश्चित परिस्थितियों में एक बार निश्चित रूप से विलक्षणता की स्थिति उत्पन्न होनी चाहिए—विशेष रूप से यह कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति ऐसी ही किसी विलक्षणता से हुई थी।

सीमाविहीन अवस्था (No boundary condition**) :** यह अवधारणा कि ब्रह्माण्ड सीमाबद्ध है परन्तु (काल्पनिक समय में) इसकी कोई परिसीमा नहीं है।

स्थिर अवस्था (Stationary state**) :** एक ऐसी अवस्था जो समय के साथ परिवर्तनशील न हो। समान दर से प्रचक्रण करता हुआ एक गोला इसलिए दिखाई देता है क्योंकि किसी भी दिए हुए क्षण पर वह एक समान लगता है।

स्पन्दक (Pulsar**) :** एक घूर्णनशील न्यूट्रोन तारा जो रेडियो तरंगों के नियमित स्पन्दों का उत्सर्जन करता है।

क्षेत्र (Field**) :** आकाश का वह प्रदेश जिसमें विद्युत अथवा चुम्बकीय बल रेखाएँ या दोनों होती हैं। यह सम्पूर्ण आकाश और काल में अस्तित्ववान होता है, इसकी स्थिति किसी कण के विपरीत होती है, जिसका अस्तित्व एक समय पर केवल एक बिन्दु पर ही होता है।

●●●

जीवन्त और विचारोत्तेजक...स्टीफेन हॉकिंग निःसन्देह एक जन्मजात अध्यापक के तमाम गुणों से सम्पन्न हैं–वे सरल हैं, चुटीली भाषा में बात करते हैं और रोज़मर्रा के जीवन से जोड़ते हुए जटिल-से-जटिल अवधारणा को चुटकियों में समझा देने की क्षमता रखते हैं।

–द न्यूयॉर्क टाइम्स

आकर्षक और दीप्त...धूप-सी चटख बुद्धिमत्ता (से भरी पुस्तक)।

–द न्यूयॉर्कर

एक बच्चे की हैरानी और एक 'जीनियस' की बुद्धि, इस पुस्तक में दोनों एकमेक हो जाती हैं। हॉकिंग के ब्रह्माण्ड की यात्रा हम उनके मस्तिष्क से चमत्कृत होते हुए करते हैं।

–द संडे टाइम्स (लंदन)

वह (हॉकिंग) ब्रह्माण्डिकीय भौतिकी की जटिलताओं को स्पष्टता और बुद्धि-कौशल के साथ समझाते हैं... वह एक असाधारण मस्तिष्क के स्वामी हैं।

–द न्यूयॉर्क रिव्यू ऑफ बुक्स

राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली पटना इलाहाबाद कोलकाता

आवरण परिकल्पना : राजकमल स्टूडियो